एम.ए.हिन्दी

सत्र - III (CBCS)

हिन्दी प्रशनपत्र क्र.१०

आधुनिक काव्य

(MODERN POETRY)

विषय कोड : 99492

© UNIVERSITY OF MUMBAI

प्राध्यापक सुहास पेडणेकर
कुलगुरू,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

प्राध्यापक रविंद्र द. कुलकर्णी
प्र-कुलगुरु,
मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

प्राध्यापक प्रकाश महानवार
संचालक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

अभ्यासक्रम समन्वयक : **श्री. अनिल आर. बनकर**
सहयोगी प्राध्यापक इतिहास एवं कला शाखा प्रमुख,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ, मुंबई

अभ्यास समन्वयक : **डॉ. संध्या शिवराम गर्जे**
सहायक प्राध्यापक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ,
सांताक्रुझ (पू), मुंबई - ४०० ०९८

संपादक : **प्रा. अनिल गो. चौधरी**
सहायक प्राध्यापक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ,
सांताक्रुझ (पू), मुंबई - ४०० ०९८

लेखक : **डॉ. श्याम सुन्दर पाण्डेय**
सहयोगी प्राध्यापक,
बी.के.बिरला कला, विज्ञान,वाणिज्य महाविद्यालय,
कल्याण (वेस्ट)

: **डॉ. संध्या शिवराम गर्जे**
सहायक प्राध्यापक,
दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ,
सांताक्रुझ (पू), मुंबई - ४०० ०९८

एप्रिल २०२२, मुद्रण - १

प्रकाशक : संचालक, दूर व मुक्त अध्ययन संस्था, मुंबई विद्यापीठ,
विद्यानगरी, मुंबई -४०० ०९८.

अक्षर जुळणी व मुद्रण : मुंबई विद्यापीठ मुद्रणालय,
विद्यानगरी, सांताक्रुझ (पू), मुंबई

अनुक्रमणिका

क्रमांक	अध्याय	पृष्ठ क्रमांक
१.	कामायनी की कथावस्तु (जयशंकर प्रसाद कृत कामायनी)	१
२.	कामायनी में रूपक तत्व, भाषाशैली और सौंदर्यानुभूति व प्रकृति चित्रण	१८
३.	कामायनी के प्रमुख पात्र	२९
४.	कामायनी का महाकाव्यत्व	४२
५.	अज्ञेय जीवन परिचय और बना दे चितेरे कविता	५१
६.	चिड़िया ने ही कहा और अन्त : सलिला	५९
७.	असाध्यवीणा	६७
८.	असाध्यवीणा कविता का भावबोध, असाध्यवीणा में नवरहस्यवाद, असाध्यवीणा मे काव्यशिल्प	८४
९.	प्रतिनिधी कविताएँ मुक्तिबोध	९३
१०.	मुक्तिबोध की काव्य भाषा और मुक्तिबोध के काव्य में फैंटेसी	१११
११.	मुक्तिबोध के काव्य में बिम्ब योजना और प्रतीक विधान	११९
१२.	मुक्तिबोध के काव्य में मूल संवेदना	१२७

❖❖❖❖

Semester - III (तृतीय सत्र)

Course Code : PAHIN 110

प्रश्न पत्र - १०

आधुनिक काव्य

(Modern Poetry)

कुल श्रेयांक**(Credit) = 6**

पाठ्य पुस्तकें :

इकाई एक और दो **श्रेयांक - २**

१. कामायनी - जयशंकर प्रसाद

लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

(चिंता, श्रद्धा और इड़ा)

इकाई तीन **श्रेयांक - २**

२. आँगन के पार द्वार - अज्ञेय

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली

(बना दे चितेरे, चिड़िया ने, अंतःसलिला, असाध्यवीणा)

इकाई चार **श्रेयांक - २**

३. प्रतिनिधि कविताएँ - मुक्तिबोध - सं. अशोक वाजपेयी

राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

(भूल ग़लती, अंधेरे में, ब्रह्मराक्षस)

संदर्भ ग्रंथ : (प्रश्न पत्र - १०)

१. कामायनी का पुनर्मूल्यांकन - डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
२. कामायनी एक पुनर्विचार - मुक्तिबोध
३. कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ - डॉ. नगेंद्र
४. कामायनी मूल्यांकन और मूल्यांकन - डॉ. इंद्रनाथ मदान
५. आधुनिक कविता का पुनर्पाठ - डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय
६. अज्ञेय की कविता एक मूल्यांकन - डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर
७. अज्ञेय की काव्यतितीर्षा - डॉ. नंदकिशोर आचार्य
८. अज्ञेय की कविता परंपरा और प्रयोग - रमेश ऋषिकल्प
९. प्रसाद निराला अज्ञेय - डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
१०. मुक्तिबोध की काव्यदृष्टि - डॉ. सुरेश रितुपर्ण
११. निराला और मुक्तिबोध : चार लंबी कविताएँ - नंदकिशोर नवल
१२. मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना - डॉ. नंदकिशोर नवल
१३. मुक्तिबोध की कविताएँ - डॉ. अशोक चक्रधर
१४. अज्ञेय, चिंतन और साहित्य - प्रेमधन
१५. आधुनिक हिंदी प्रबंध काव्य में मिथक और नारी - डॉ. शीला आहूजा

१

कामायनी की कथावस्तु
जयशंकर प्रसाद कृत कामायनी

इकाई : 04 श्रेयांक : 02

इकाई की रूपरेखा :

१.० उद्देश्य

१.१ प्रस्तावना

१.२ जयशंकर प्रसाद जीवन परिषद

१.३ कामायनी : संक्षिप्त कथानक

१.३.१ प्रथम सर्ग (चिंता)

१.३.२ द्वितीय सर्ग (आशा)

१.३.३ तृतीय सर्ग (श्रद्धा)

१.३.४ चतुर्थ सर्ग (काम)

१.३.५ पाँचवा सर्ग (वासना)

१.३.६ छठवाँ सर्ग (लज्जा)

१.३.७ सातवाँ सर्ग (कर्म)

१.३.८ आठवाँ सर्ग (ईर्ष्या)

१.३.९ नौवां सर्ग (इड़ा)

१.३.१० दसवाँ सर्ग (स्वप्न)

१.१.११ ग्यारहवाँ सर्ग (संघर्ष)

१.३.१२ बारहवाँ सर्ग (निर्वेद)

१.३.१३ तेरहवाँ सर्ग (दर्शन)

१.३.१४ चौदहवाँ सर्ग (रहस्य)

१.३.१५ पंद्रहवाँ सर्ग (आनन्द)

१.४ सारांश

१.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१.६ लघुत्तरी प्रश्न

१.७ संदर्भ पुस्तके

१.० उद्देश्य

इस इकाई का मूल उद्देश्य छायावाद के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद के जीवन और उनकी प्रसिद्ध रचना 'कामायनी' की कथावस्तु से परिचित हो सकेंगे | कामायनी में कुल पंद्रह सर्ग हैं – चिंता, आशा, श्रद्धा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, इड़ा, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य और आनंद यहाँ उन सभी सर्गों की संक्षिप्त कथावस्तु प्रस्तुत की गई हैं | इसके अध्ययन के बाद छात्र कामायनी के कथानक को अच्छी तरह समझ सकेंगे |

१.१ प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी साहित्य में जयशंकर प्रसाद का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं | कविता, नाटक, कहानी, निबन्ध और उपन्यास आदि इन सभी महत्त्वपूर्ण विधाओं को अपनी लेखनी का पावन स्पर्श देकर उन्होंने हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया | इस इकाई के अंतर्गत छायावाद के प्रवर्तक कवियों में प्रमुख जयशंकर प्रसाद के जीवन परिचय और उनकी प्रमुख कृति कामायनी की कथावस्तु के सम्बन्ध में चर्चा की जायेगी | इस इकाई के अंतर्गत विद्यार्थी प्रसाद जी के महाकाव्य की कथावस्तु से परिचित हो सकेंगे |

१.२ जीवन परिचय

जयशंकर प्रसाद का जन्म ३० जनवरी,सन १८८९ में काशी के प्रसिद्ध वैश्य परिवार में हुआ था | इनके पिता का नाम श्री देवीप्रसाद और माता का नाम श्रीमती मुन्नी देवी था | इनका घराना काशी में सुंघनी साहू के नाम से प्रसिद्ध था | माता-पिता, पत्नी और भाई सहित परिवार में अनेक सदस्यों की एक के बाद एक मृत्यु से प्रसाद जी बहुत दुखी हो उठे थे | बहुत कम उम्र में ही उनको परिवार की जिम्मेदारियां संभालनी पडीं | जीवन के अंत में प्रसाद जी को आर्थिक संकटों से भी गुजरना पडा फिर भी उन्होंने अपना लेखन कार्य निरंतर जारी रखा | बहुत कम उम्र में ही १५ नवम्बर, सन १९३७ को हिन्दी साहित्य का यह देदीप्यमान नक्षत्र सदा-सदा के लिए हमारे बीच से अस्त हो गया |

प्रमुख रचनाएं : प्रसाद जी ने हिन्दी की सभी महत्त्वपूर्ण विधाओं में लेखन कार्य किया | उनकी कुछ प्रमुख रचनाएं निम्नवत हैं :

नाटक: राज्यश्री, विशाख, अजातशत्रु, जन्मेजय का नागयज्ञ, कामना, स्कंदगुप्त, चन्द्रगुप्त, और ध्रुवस्वामिनी|

कहानीसंग्रह: छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आंधी, और इंद्रजाल

काव्यसंग्रह: प्रेमराज्य, कानन कुसुम, प्रेमपथिक, महाराणा का महत्त्व, झरना, आंसू, लहर और कामायनी | इनके अतिरिक्त उपन्यास और निबंध आदि विधाओं में भी उनकी रचनाएं देखी जा सकती हैं |

१.३ कामायनी: संक्षिप्त कथानक

प्रसाद जी कामायनी महाकाव्य कुल पंद्रह सर्गों में विभक्त हैं | यहाँ पर उन सभी सर्गों की संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत की गई हैं :

१.३.१ प्रथम सर्ग (चिंता)

कामायनी का प्रथम सर्ग 'चिंता' हैं| प्रारंभ में हिमालय की एक बहुत ऊँची चोटी पर किसी चट्टान की छाया में बैठा एक व्यक्ति चुपचाप प्रलय की जलधारा को देख रहा था, उसका शरीर सुदृढ़ था, भुजाओं और पैरों की धमनियां और नसें फूली हुई दिखाई दे रही थीं, पास में दो-चार देवदारु के वृक्ष खड़े थे जो कि बर्फ के जमने से श्वेत हो रहे थे | कुछ दूरी पर एक बहुत बड़ा बड़ का पेड़ था जिसमें वह नावबंधी हुई थी जिससे उन्होंने आत्मरक्षा की थी। बाढ़ का पानी अब उतर चुका था। चारों ओर सुनसान था। वह व्यक्ति प्रलय की उस भीषण घटना को स्मरण कर रहा था कि ऊपर से वर्षा हो रही थी, चारों ओर अंधेरा था। जिस नौका का सहारा लिया था, वह पानी में डोल रही थी। उसमें डांड की पतवार भी न थी जिससे कि उसको नियंत्रित किया जा सकता। सब ओर पानी ही पानी था। कहीं भी किनारा नहीं दिखाई देता था। सहसा एक बड़े मछली से नाव टकराई, लगा कि नौका अभी उलटेगी, पर उस झटकेने नाव को हिमालय की उस चोटी पर पहुँचा दिया था।

उस उच्च शिला पर बैठा वह व्यक्ति स्मरण कर रहा था कि प्रलय से पूर्व उसकी जाति के देव लोग अपार वैभव और विलासिता में डूबे थे। उन्हें अमर होने और अपार शक्तियां अपने पास होने का अभिमान था परन्तु उस प्रलय ने सहसा उनका नामों- निशान मिटा दिया। उस देव जाति का एक मात्र अवशेष वही बचा हुआ था। वह समझ रहा था कि वास्तव में देवताओं का अभिमान दम्भ मात्र था। नियति सर्वोपरि हैं। उसके प्रभाव से कोई नहीं बच सकता। यहाँ भी नियति के समक्ष सभी लाचार हो उठे थे |

१.३.२ द्वितीय सर्ग (आशा)

कुछ समय पश्चात वह भंयकर प्रलय की रात कट गई। प्रलय कालीन वर्षा के मेघ भी छंट गये। आकाश में पुनः अरुणोदय हुआ। शरद् ऋतु का सा आगमन हो गया। वृक्ष लता आदि पानी से निकलकर फिर से लहलहाने लगे थे। प्रकृति का रम्य वातावरण पुनः छा गया, भूमि पानी से बाहर निकल तो आई थी पर उसकी सीमा कुछ संकुचित सी लग रही थी। वह एकांकी व्यक्ति और कोई नहीं, स्वयं वैवस्वत मनु थे जो कि अकेले उस प्रलय प्रवाह में बच गये थे। उन्होंने ध्यान से चारों ओर देखा तो प्रकृति मानो मुस्करा रही थी। तृण, तरु, लता हरे-भरे हवा में झूम रहे थे। हिमालय का वह शिखर जहाँ पर मनु पहुँचे थे, सुनसान था। उस निस्तब्ध वातावरण में मनु के हृदय में पुनः जीवन की आशा जागी। वहाँ एक सुन्दर सी गुफा देख मनु ने उसमें अपने निवास की व्यवस्था की। यहाँ याज्ञिक संस्कृति के पुराने संस्कार जागे, जो अग्नि नौका में साथ ले आये थे, उसे फिर से प्रज्वलित किया और पहले

की भाँति अग्निहोत्र (होम)करने लगे, और कुछ विकल्प न देखकर उन्होंने अपना जीवन तप में लगा दिया। इस प्रकार कर्मकाण्ड में प्रवृत्त हो गये। जब कुछ दिन में उनका मन आश्वस्त हो गया तो उन्होंने पाक यज्ञ करने का निश्चय किया | जिसके निमित्त धान की बालें बीनी, पेड़ों की सूखी डालियों से समिधा का काम लिया। धान की बालें कूटकर चावल निकाले। उनका भात बनाकर अग्नि में होम किया। उसकी सुगन्ध सारे वन में फैल गई। यज्ञ शेष कुछ खाने के काम आता और कुछ बलि के रूप में अपनी गुफा से कुछ दूरी पर इस उद्देश्य से रख आते थे कि यदि कोई और व्यक्ति उनकी ही भांति प्रलय में शेष रह गया हो तो वह इसे खाकर अपनी क्षुधा शान्त कर लेगा। प्रलय काल में सर्वनाश के कारण जो कष्ट उन्होंने अनुभव किया था, उससे अब उनके हृदय में दूसरों के प्रति भी सम्वेदना जाग उठी थी। इस प्रकार उनका एकाकी जीवन बीतने लगा। दिन और रात क्रम से आते और बीत जाते थे। एक दिन चाँदनी रात को उन्होंने प्रकृति का मादक दृश्य देखा तो मुग्ध हो उठे। उनके हृदय में सुप्त वासना जाग उठी। तपस्या के कारण उन्होंने जो संयम संचित किया था, अब डिगने लगा। अपना एकाकी जीवन उन्हें खलने लगा। सोचने लगे कि इस प्रकार अकेले कब तक जीवन बिताना पड़ेगा।

१.३.२ तृतीय सर्ग (श्रद्धा)

इसी बीच उधर एक सुन्दर युवती आ गई। उसने शरीर पर गान्धार देश की नीले रंग की भेड़ों की खाल का वस्त्र पहना हुआ था। शरीर लम्बा और छरहरा था। कंधों तक काले घुँघराले बाल लटक रहे थे। उसके मुख पर मन्द-मन्द निर्मल मुस्कान थी। उसने मनु से उनका परिचय पूछा कि - वे कौन हैं और सृष्टि से दूर एकांत में निवास क्यों कर रहे हैं? मनु ने अपने विषादभरे स्वर में कहा कि - मैं अपना परिचय क्या दूँ, मैं इस जगत में अकेला, असहाय भटकने वाला एक क्षुद्र जीव हूँ। अपने सुखमय पिछले जीवन को भुलाने का प्रयत्न करता हुआ किसी प्रकार निराशा भरा जीवन बिता रहा हूँ। परन्तु, तुम भी अपना परिचय दो- आप कौन हो और यहाँ कैसे पहुँची हो।

उस युवती ने बताया कि - मैं गन्धर्व देश की रहने वाली हूँ और अपने पिता की लाड़ली बेटी हूँ। संगीत, नृत्य आदि ललित कलाओं को सीखने की चाव और पर्यटन की आदत होने से हिमालय के विषय में कुतूहल होने पर उसे देखने घर से निकल पड़ी। सहसा एक दिन समुद्र उमड़ पड़ा। चारों ओर पानी ही पानी होने से सृष्टि डूब गई। उस दिन से मैं बेसहारा अकेली भटकती रही। इधर आई और बलि का अन्न रखा देखकर अनुमान किया कोई व्यक्ति जीवित अवस्था में यहाँ पर हैं। इसी का अंदाजा लगाती हुई इधर आ गई हूँ|

इस प्रकार अपना परिचय देकर श्रद्धा ने मनु को समझाया कि वह इतना निराश और खिन्न क्यों हैं। लगता हैं कि उनके मन में अब जीने की कामना ही नहीं रही हैं। असफलता, दुख और मृत्यु के भय से वह आगे कुछ कर्म ही नहीं करना चाहते। भला भविष्य को किसने देखा हैं, उसके डर से वर्तमान को भी गंवाना क्या बुद्धिमानी हैं? इस विराट विश्व में व्यापक महा चेतना जाग्रत हुई सी अपना विलास दिखा रही हैं। उसके परिणामस्वरूप इस सुन्दर विराट विश्व का उदय हुआ हैं उसमें काम कल्याण का मार्ग हैं उस चित्त की इच्छा शक्ति का फल ही यह सृष्टि हैं | इसको ठुकराने से यह संसार ही असफल-व्यर्थ हो जायगा । काम सृष्टि के विकास में सहायक होता हैं। दुख के अन्त में सुख का उदय होता हैं। संसार में दुख को

अभिशाप नहीं समझना चाहिये | उसी से सुख का जन्म होता हैं। इस प्रकार दुख और सुख जीवन के दो पहलू हैं इन दोनों में एक सा रहना चाहिए। तुम जो यज्ञ सदृश कर्म कर रहे हो उसे अकेले सम्पन्न नहीं कर सकते। तुम्हें सहारे की आवश्यकता हैं। मैं तुम्हारा साथी बनकर सहायक बनने को तैयार हूँ। मैं आज से अपने आपको तुम्हें सौंपती हूँ। मेरी करुणा, मोह और ममता तुम्हारी भेंट हैं। तुम कर्म करो जिससे यह सृष्टि पुनः प्रसार और विकास करे। देवताओं की असफलता की नींव पर मानवी संस्कृति पुनः जीवित हो उठे।

१.३.४ चतुर्थ सर्ग (काम)

उस दिन से श्रद्धा मनु के साथ रहने लगी। परन्तु दोनों में कोई सम्बन्ध न था। श्रद्धा अतिथि के रूप में ही रहती थी। परन्तु एक सुन्दरी तरुणी पुरुष के साथ रहे, प्रकृति के नियम के अनुसार परस्पर आकर्षण होना ही था। मनु पहले ही अपने एकांकी जीवन से तंग आ गये थे। संयम उनके लिए भार होने लगा था। हृदय में जीवनसाथी की अभिलाषा जाग उठी थी। संयोगवश उनके साथ अब श्रद्धा रह रही थी इसलिए उनके मन में वासना जोर मारने लगी थी। एक दिन रात्रि को जब मनु प्रकृति के रमणीय दृश्य को देख रहे थे, सहसा अतीत की स्मृति उनके मस्तिक में कौंध गयी। उधर श्रद्धा का असाधरण सौन्दर्य उन्हें लालायित कर रहा था। अपने मन में वे उधेड़बुन में लगे हुए थे तभी सोचते-सोचते उन्हें नींद आ गई | उन्हें लगा जैसे उनसे कोई कह रहा हो मैं काम हूँ | इस प्रलय से पूर्व मैं देवों की विलास लीला में साथी रहता था। मेरी प्रिया रति जो कि अनादि वासना का रूप थी आकर्षण का काम करती थी। इस प्रकार हम दोनों के सहयोग से ही इस सृष्टि का प्रसार होता हैं। प्रलय के जल प्लावन से देव समाज तो लुप्त हो गया परन्तु मेरी प्यास नहीं बुझी हैं। पिछले सर्ग में हम दोनों ही आकांक्षा और तृप्ति के रूप में देवों और देवांगनाओं के हृदयों में वास करते थे। मैं उनमें विलास लालसा जगाता था और रति देवांगनाओं की साथी बनकर उन्हें तृप्ति देती थी। हम दोनों के मेल से प्रेम कला का जन्म हुआ जो कि जीवन में वासना की आग जगाने पर शीतलता और शान्ति पाने के लिए यदि उस प्रेमकला को पाना चाहते हो तो पहले पात्र बनो। यह कहकर ध्वनि आनी बन्द हो गयी। मनु सहसा बोल उठे कि उस प्रेमकला तक पहुँचने का मार्ग तो बताइये। परन्तु वक्ता अब अदृश्य हो चुका था। मनु का सपना टूटा और वे नित्य क्रियाकर्म में लग गए |

१.३.५ पाँचवाँ सर्ग (वासना)

अब तक मनु और श्रद्धा उस गुफा में दो साथियों की भाँति रह रहे थे। एक घर का स्वामी था दूसरा अतिथि था। दोनों के मन एक-दूसरे की ओर आकर्षित हो रहे थे परन्तु उनमें से कोई भी अपने मनकी बात खुलकर नहीं कह पा रहा था। प्रकृति अब दोनों को मिलाना चाहती थी। श्रद्धा ने प्रथम मिलन वाले दिन ही अपने आपको मनु को समर्पित कर दिया था परन्तु उन्होंने विधिवत उसे अपनाया नहीं था। पास रहते हुए भी अभी दोनों में कुछ दूरी थी। मनु को जो काम का सन्देश मिला था वे उसी पर विचार कर रहे थे। साँझ हो गयी थी। सूर्य भी अस्त हो गया था। चन्द्रोदय होने लगा था। मनु ध्यान में ही बैठे थे।

अब मनु के गृहपति होने के साथ-साथ घर में गृहस्थी का सारा सामान जुट गया था। अन्न, धन, तृण और पशु सभी का संचय हो गया था। अतिथि का इशारा जिस वस्तु के लिए होता वही घर में उपस्थित हो जाती थी। सारी व्यवस्था चल रही थी तभी अपनी अग्निशाला से

मनु ने देखा कि श्रद्धा एक पशु के साथ आ रही हैं। वह पशु की पीठ पर प्यार से हाथ फेर रही थी और बदले में पशु ने भी अपनी गर्दन लम्बी की हुई थी, पूँछ ऊपर उठाई हुई थी, मानो श्रद्धा के ऊपर चंवर कर रहा हो। मनु के मन में यह देखकर ईष्या का भाव जागा। सोचने लगे, ये दोनों कितने कृतघ्न हैं। मेरी ही कमाई खा रहे हैं और मेरी ही उपेक्षा करते हैं जैसे मैं कुछ हूँ ही नहीं। अपने आप में मस्त हैं। इन्हें तो अपना सारा स्नेह मुझपर लुटाना चाहिए इस प्रकार ही मेरे उपकारों का बदला चुका सकते हैं।

वे ये सब सोच ही रहे थे कि श्रद्धा पास आ गयी और पूछने लगी कि क्या कारण हैं जो अभी तक आसन पर बैठे ही हो। तुम्हारा मन कहीं हैं, देख कहीं रहे हो। क्या बात हैं ? यह कहकर प्यार से अपना हाथ मनु के शरीर पर फेरने लगी। उसके ऐसा करने से मनु के मन की ईर्ष्या बुझ गयी। वे श्रद्धा से पूछने लगे कि आज तुम अब तक इतनी देर कहाँ रही हो। यह पशु भी तुमसे पुरानी पहचान जता रहा हैं। तुम सचमुच बताओ कि तुम कौन हो और मुझे अपनी ओर क्यों खींचती हो और स्वयं दूर भी हो जाती हो। श्रद्धा ने हँसकर उत्तर दिया कि मैं अतिथि हूँ यही परिचय पर्याप्त हैं। यह जानने के लिए इतने बेचैन हो | उठो, बाहर चलकर देखो, कैसी सुहावनी चाँदनी रात हैं। यह कहकर मनु का हाथ पकड़कर बाहर ले चली। बाहर चारों ओर चाँदनी छिटकी हुई थी। विकसित कुसुमों का पराग चारों ओर उड़ रहा था। वहाँ के वृक्ष लताकुञ्ज और गुहा आदि सभी स्थल चाँदनी में नहा रहे थे। माधवी लता की भीनी-भीनी गंध आ रही थी। सारा वातावरण नीरव था। मन में भीतर ही भीतर एक मधुर भावधारा जोर मार रही थी। तभी मनु ने कहा, “आज तुम बहुत अधिक सुन्दर दिख रही हो और मेरा मन तुम्हें पहचान सा रहा हैं। आज तक मैं नहीं पहचान पाया था। यह पूर्वजन्म की या पिछले सुखमय दिनों की बात हैं मेरी जीवन सहचरी, जो काम की पुत्री थी और उसका नाम श्रद्धा था, अब तुम मेरे इस प्रणय को स्वीकार कर लो। 'श्रद्धा मनु के इन प्रेम भरे वचनों को सुनकर लज्जा से झुक गयी।अन्दर से वह प्रसन्न थी। धीरे से उसने कहा कि आपका यह हृदय समर्पण क्या सदा के लिए मेरे हृदय को बाँधे रखेगा ?

१.३.६ छठवाँ सर्ग (लज्जा)

पुरुष का प्रेममय व्यवहार पाकर श्रद्धा ने अपने-आपको मनु के प्रति समर्पित तो कर दिया पर उसके हृदय में एक हलचल मच रही थी। वह पुरुष की तुलना में अपने-आपको दुर्बल पा रही थी। वह मन में संभलने का साहस जुटाती पर सामने जाते ही कुछ कहने-सुनने में असमर्थ पाती थी। वह सोचती थी कि क्या पुरुष को अपने-आपको सौंपकर मेरा पृथक् अस्तित्त्व बना रहेगा ? इस अर्पण के बदले मुझे पुरुष से क्या मिल सकता हैं ? तभी उसे एक छाया प्रतिमा अपनी ओर आती दिखाई दी। श्रद्धा ने उसे देखकर कौतूहल से उसका परिचय पूछा तो उसने कहा कि मुझे देखकर इतनी न चौंको। मैं देवी जगत की रानी रति अपने स्वामी काम से ठगी जाकर आकर्षण शक्ति का रूप धारण कर उसी की प्रतिमा लज्जा हूँ। मैं नारी को शिष्टता की सीख देती हूँ। मैं नारी के कपोलों पर लालिमा के रूप में दिखाई देती हूँ। आंखों में सुरमे की भाँति प्रतीत होती हूँ। मैं नारी के सौन्दर्य की रक्षा करती हूँ।

श्रद्धा ने यह सुनकर कहा यह तो ठीक हैं कि तुम नारी की सुन्दरता की रक्षा करती हो और शील की शिक्षा देती हो। परन्तु इस द्वन्द्वमयी स्थिति में मेरा मार्गदर्शन करो। मैंने नारीत्व की दुर्बलता को समझ लिया हैं। शरीर की सुकुमारता के साथ मेरा मन भी दुर्बल क्यों होता हैं।

पुरुष पर विश्वास करके जो मैंने अपने-आपको सौंपा हैं, बदले में उससे कुछ पाने का साहस नहीं होता। क्या नारीत्व इसी का नाम हैं कि दो और बदले में कुछ न लो।

लज्जा ने उत्तर दिया कि तुमने प्रेमाश्रुजल से संकल्प करके अपनी सारी अभिलाषा और कामनाएँ आत्मसमर्पण के साथ पुरुष को सौंप दी हैं । अब तुम्हें कुछ लेने या पाने की लालसा नहीं रखनी चाहिए । तुम नारी हो । जिस विश्वास को लेकर तुमने आत्मसमर्पण किया हैं, उस पर आस्था रखो और पुरुष के जीवन में अमृत-रस का संचार करो। जीवन में सुख-दुख सब कुछ आते हैं । अच्छाई और बुराई जो भी सामने आयें, उनको हंसते हुए अपनाती जाओ। इस प्रकार की परिस्थितियों से समझौता करना ही पड़ेगा।

१.३.७ सातवाँ सर्ग (कर्म)

मनु प्रलय से पूर्व याज्ञिक संस्कृति के वातावरण में रहे थे। यज्ञों में सोमपान किया जाता था। कुछ में पशु बलि भी होती थी। यह कर्म बन्धन देव संस्कृति को बाँधे हुए था। प्रलय में सर्वनाश होने पर मनु एक बार उन यज्ञों की असारता को मन ही मन मान चुके थे। परन्तु अब श्रद्धा के साथ दाम्पत्य सूत्र में बंधने के साथ-साथ उनकी सोम पान की ललक फिर से जाग उठी | काम ने और श्रद्धा ने मनु को जो प्रेरणा दी थी, उन्होंने उसका गलत अर्थ लगाया। कर्म का अर्थ उन्होंने याज्ञिक कर्मकाण्ड समझा और उसमें प्रवृत्त हो गये। उधर आकुलि और किलात नामक दो असुर पुरोहित किसी प्रकार प्रलय से बच गये थे, वे इधर-उधर भटकते हुए संयोगवश उधर आ निकले। बहुत दिन से वे दोनों फलमूल और कन्द आदि खाकर निर्वाह कर रहे थे। आमिष भोजी होने के कारण उनसे उनकी तृप्ति नहीं होती थी। उनकी दृष्टि मनु के पशु पर पड़ी और मुँह में पानी आ गया। उसे खाने के लिए उन्होंने एक षड्यन्त्र रचा। मनु अपने मन में मैत्रा वरुण यज्ञ करने की सोच रहे थे पर यज्ञ कराने वाला पुरोहित कोई नहीं मिल रहा था। मनु श्रद्धा से कह ही रहे थे कि मैं यज्ञ करके पुण्य का अर्जन करना चाहता हूँ परन्तु इसके लिए पुरोहित की आवश्यकता हैं। उसका स्थान कौन लेगा ? ये शब्द सुनते ही झट असुर पुरोहित मनु की यज्ञ शाला के द्वार पर पहुँच गये और बोले, 'जिन देवताओं को प्रसन्न करने के लिए तुम यज्ञ करना चाहते हो हम दोनों को उन्हीं ने भेजा हैं। मनु प्रसन्न हो गये। मित्र और वरुण को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ करने लगे। पशु की बलि दी गयी। सोम पान भी करना था। परन्तु यज्ञ तो बिना पत्नी के साहचर्य के नहीं होता। श्रद्धा रूठकर गुफा में चली गयी थी। वह मनु की स्वार्थी वृत्ति से दुखी थीं। उन्होंने श्रद्धा की भावना को ठुकराया था, उसकी इच्छा के विरुद्ध पशु की बलि दी थी। वह सोच रही थी कितनी वंचना हुई हैं। किस व्यक्ति को उसने अपना हृदय दिया। तभी मनु सोमपात्र लेकर उसे खोजते हुए आ पहुँचे। उसे मनाते हुए बोले कि रूठकर इस प्रकार मेरे सुखमय संसार को दुखमय न बनाओ। इस यज्ञशेष का पान करो और जीवन का आनंद लो। श्रद्धा ने मान भरे स्वर में कहा कि इस समय तुम प्रेम की बातें कर रहे हो पर उस समय क्या हुआ था जब उन साथियों के कहने से तुमने मेरी उपेक्षा करके यज्ञ का प्रपंच रचा और प्यार से पाले उस पशु की जान ले ली। भविष्य में पुनः साथी मिल जायगा, फिर वही बातें होंगी। तुम्हारा क्या भरोसा ? मनु ने उत्तर दिया कि अपने सुख की उपेक्षा दूसरों के हित के लिए करना बुद्धिमत्ता नहीं हैं। यदि हम दोनों ही इस क्षणिक जीवन में सुखी नहीं हुए तो फिर इतने परिश्रम का क्या लाभ ? श्रद्धा ने इसके उत्तर में कहा कि प्रकृति ने प्रलय का खेल दिखाकर यह सदबुद्धि दी हैं कि आत्मसुख परायणता का परिणाम अच्छा नहीं होता। व्यक्ति

सिर्फ अपने सुख में सीमित रहकर संसार की प्रगति कैसे देख सकता हैं। दूसरों को सुखी करके ही मनुष्य को वास्तविक सुख प्राप्त होता हैं। संसार एक यज्ञ हैं। उसमें हमारा भाग दूसरों की सेवा करना हैं। दूसरों को समाप्त करके एकाकी कोई सुखी नहीं हो सकता वह उसका स्वार्थ भाव हैं।

मनु ने कहा, तुम जो कहती हो, वही सत्य हैं तो मैं वैसा ही करूँगा। क्यों अकेले का सुख, सुख नहीं होता। 'इस सोमरस को पी लो', यह कहकर छलमयी वाणी से अपना प्रणय दिखाकर श्रद्धा को मना लिया और उसके मुख का चुम्बन लिया जिससे उसका रोष शान्त हो गया।

१.३.८ आठवाँ सर्ग (ईर्ष्या)

इसके पश्चात मनु शिकार खेलने में मग्न रहने लगे, इनके अतिरिक्त श्रद्धा के प्रति भी उनका आकर्षण समाप्त हो गया था। अब उन्हें मन लगाने के लिए और किसी आश्रय की आवश्यकता थी। क्योंकि श्रद्धा के प्रेम में अब पहले वाली ऊष्णता नहीं थी। या तो धान चुनने में लगी रहती या बीज एकत्रित करती और खाली समय में उन्हे कातने लगती थी। मनु को लगा, श्रद्धा की दृष्टि में उनका अब कोई अस्तित्व नहीं रहा हैं। एक दिन शिकार खेलकर वे द्वार पर पहुँचे पर भीतर जाने को मन न किया। मारा हुआ मृग वहीं डाल दिया स्वयं भी थके-मांदे वहीं बैठ गये।

श्रद्धा अन्दर प्रतीक्षा कर रही थी। वह गर्भवती थी। सोच रही थी कि साँझ गयी हैं पर वे शिकार से अभी तक क्यों नहीं लौटे। वह ऊन की पट्टी बुन रही थी। कमर में उसने नीलावस्त्र कसकर बाधा हुआ था। गर्भ की हल्की-हल्की पीड़ा हो रही थी। मुँह पीला पड़ गया था।मनु ने श्रद्धा को उस स्थिति में देखा, उसकी आँखों में अपनी इच्छा का विरोध दिखाई दिया। श्रद्धा को देखकर भी उन्होंने कुछ नहीं कहा चुपचाप रहा। श्रद्धा उनका मनोभाव समझ गयी। मुसकराकर प्रेम से बोली, 'कि सारे दिन तुम कहाँ –कहाँ घूमते रहे, मैं प्रतीक्षा करती थक गयी। पक्षी अपने-अपने घोंसलों में आ गये हैं पर तुम नहीं लौटे। तुम्हें किस वस्तु की कमी लग रही हैं जो इधर-उधर जाते हो।'

मनु ने कहा कि भले ही तुम्हें कुछ नहीं दिखता पर मुझे तो खटकता हैं। तुम अब पहले की भांति प्रेम से बात भी नहीं करती हो। रात-दिन तकली चलाने में लगी रहती हो। जब वस्त्रों के लिए मैं मृग-चर्म लाने वाला हूं तो इस श्रम की क्या आवश्यकता हैं ? मैं शिकार करके लाता ही हूँ तो बीज बीनने की मेहनत क्यों करती हो? तुम्हारी आकृति पीली क्यों पड़ गयी हैं? ये तैयारी किसके लिए कर रही हो ? श्रद्धा ने कहा कि मुझे हिंसा वृत्ति पसन्द नहीं। आत्मरक्षा के लिए भले ही शस्त्र चलाओ पर काम आने वाले जीवों का शिकार करना क्या उचित हैं? उनकी ऊन से वस्त्र का प्रयोजन सिद्ध हो सकता हैं। उनके हृष्ट-पुष्ट रहने से हमें दूध की प्राप्ति हो सकती हैं। तब उन्हें क्यों मारा जाए ?

मनु ने उत्तर दिया कि मैं अपने सुख को नहीं छोड़ सकता क्योंकि ये न मालूम कब छिन जाये। इसलिए जितना इन्हें भोगा जा सके, भोग लिया जाय। दूसरे, तुम अपना यह प्रेम मुझे छोड़कर दूसरे को देना चाहती हो, यह मुझे सहन नहीं हैं। मेरा प्यार मुझे लौटा दो, मैं चाहता हूँ तुम केवल मेरी चिन्ता करो बस। श्रद्धा ने यह सुनकर भी उनकी बात का उत्तर नहीं दिया

और उनका हाथ पकड़कर भावी बच्चे के लिए जो झूला बनाया था, वह दिखाने ले गई। गुफा के पास पुआलों का छप्पर डालकर एक छोटी सी कुटिया बनाई थी, पतली-पतली डालियों से कुंज सा बन गया था। चारों ओर पत्तों की दीवार थी, बीच में झरोखे भी थे कि हवा आये और सीधी चली जाय। उसके बीच बेंत का झूला डाला हुआ था। भूमि पर फूलों का पराग बिखरा था। यह सब सुरुचि पूर्ण व्यवस्था मनु ने विस्मय से देखी पर प्रसन्न होने के स्थान पर उन्हें ईर्ष्या ही हुई। वह कुछ बोले नहीं। श्रद्धा ने फिर कहा-यह तो बन गयी हैं पर उसमें रहने वाला मेहमान अभी नहीं आया हैं। तुम्हारी अनुपस्थिति में मैं तकली कातकर उसके वस्त्रों के लिए ऊन कातती हूँ ताकि वह नंगा न रहे और उसके आने से मेरा एकाकीपन समाप्त हो जायगा। इस पर कुढ़कर मनु ने कहा कि उस बच्चे के आने पर तुम तो प्रसन्न होकर उसके लालन-पालन में मस्त रहोगी और मैं उपेक्षित सा इधर-उधर भटकूँगा। यह मुझे सहन नहीं होगा। इसलिए यदि इसी में सुख समझती हो तो ठीक हैं तुम सुखी रहो। मैं जाता हूँ जहाँ मुझे सुख-शान्ति मिलेगी। यह कहकर वे चल दिये। श्रद्धा-"अरे निमोही, ठहर एक बात तो सुन", यह कहती हुई वहीं रह गई।

१.३.९ नौवां सर्ग (इड़ा)

वहाँ से निकलकर मनु इधर-उधर अशान्त स्थिति में भटकते रहे। वे अपने मन में सोचते थे कि संसार में जीवन कितना संघर्षपूर्ण हैं। इसमें उन्मुक्तता ही परम सुख हैं। मैं उसी की खोज में घूम रहा हूँ। इस जीवन में कहीं शान्ति और विश्राम नहीं हैं। चलते-चलते वे सरस्वती नदी के तट पर बसे सारस्वत प्रदेश में पहुँचे। वह स्थान सुनसान और उजड़ा हुआ पड़ा था। कभी देवराज इन्द्र ने वहीं वृत्तासुर का वध किया था। मनु अब देवासुर संग्राम के सम्बन्ध में सोचने लगे। देव और असुर इन दो जातियों में संघर्ष का क्या कारण था? असुर जाति अपने शरीर को पूजती थी। किसी अन्य को अपने भक्ष्य में से देना न जानती थी। अन्न को ही ब्रह्म मानकर अपनी उपलब्धि में दूसरे का भाग न मानकर स्वयं को ही पुष्ट करती थी। दूसरी ओर देव थे जो अपने-आपको सर्वोपरि समझ बैठे थे | इसलिए अपने-अपने पक्ष की पुष्टि के लिए दोनों पक्षों ने शस्त्रों का आश्रय लिया। मैं भी देव जाति से ही सम्बद्ध हूँ पर प्रलय काल में आत्मरक्षा में प्रवृत्त हुआ | मुझमें अपने प्रति ममता हैं तथा औरों के प्रति निरंकुशता हैं। आसुरी और देवी वृत्ति का पारस्परिक द्वन्द्व मुझमें छा गया हैं, इससे मैं दुखी हो गया हूँ। मैं सत्य ही आस्था से रहित हो गया हूँ। मनु ऐसा सोच रहे थे तभी उन्हें काम के शब्द सुनाई पड़े-

"हे मनु तुम भूल गये। निष्ठा स्वरूप उस नारी को तुमने तुच्छ समझा। जीवन को अनित्य मानकर जितना हो सके उतना सुख भोगना और वासना-तृप्ति ही तुमने अपना लक्ष्य समझा पुरुष होने के अहं के वश में तुमने नारी का महत्व स्वीकार नहीं किया, उसके देह को केवल भोग की सामग्री समझा। वस्तुतः अधिकार और अधिकारी के बीच समरसता होती हैं, इस सत्य की तुमने उपेक्षा की।"

ये वचन मनु के हृदय में चुभ गये। उन्होंने उत्तर दिया कि श्रद्धा को पाने की प्रेरणा तुमने दी, वैसा ही मैंने किया। उसने भी मुझे प्रेमपूर्ण हृदय दिया। परन्तु इससे मेरी तृप्ति न हुई। मुझे क्या मिला ? काम ने कहा कि उस बेचारी ने तो अपना प्रेम भरा हृदय तुम्हें दिया। पर तुमने उस प्रेम का मूल्य क्या समझा? तुम उसके शरीर को ही महत्व देते थे। केवल उसे भोग्य

समझा। विवाह से जो वास्तविक लाभ होता हैं, दो हृदयों और प्राणों का ऐक्य उसको तुमने न होने दिया। तुम उन्मुक्त और स्वेच्छाचारी बनने के लिए सारा दोष दूसरे पर डालकर अपनी व्यवस्था अलग चलाना चाहते हो। केवल वासना को महत्व देते हो। इसलिए मैं तुम्हें शाप देता हूँ, कि तुम्हारा जो आगे प्रजा का शासन चले वह अभिशाप बन जाय। उसमें नित्य भेदभाव रहे, नये-नये वर्ण, वर्ग जाति आदि बनते रहें, परस्पर झगड़े बढ़ें, नयी-नयी समस्यायें उनके सामने आयें, सदा असन्तोष मन में भरा रहे। मन में सदा लालसाएं भरी रहें जो कभी पूरी न हों। सब परस्पर सशंक और भयभीत रहें। दृष्टि संकुचित हो। सदा संघर्ष करते रहें पर शान्ति प्राप्त न हो। तुमने श्रद्धा से छल किया हैं। इसके फलस्वरूप तुम वर्तमान से असंतुष्ट रहकर भविष्य के लिए ही जूझते रहोगे। तुम्हारी सन्तान श्रद्धा से विहीन होकर यह न जान पाये कि यही लोक कल्याणमय हैं। वह स्वर्ग आदि के लिए भटकती रहे। अभिशाप का यह स्वर जब लुप्त हुआ हो मनु एक बार फिर अशान्त हो गये कि मेरा भविष्य अब सदा के लिए संकटमय हो गया हैं। वे सरस्वती नदी के तीर पर बैठे सोच रहे थे। रात बीती और प्रातःकाल होने पर एक सुन्दरी के दर्शन हुए। जिसका नाम इड़ा था। उसने मनु को अपना नाम बताया और उनका परिचय पूछा। मनु ने बताया कि मेरा नाम मनु हैं। मैं संसार भर में इधर-उधर भटक रहा हूँ। अनेक प्रकार के कष्ट सहता आ रहा हूँ। इड़ा ने स्वागत करते हुए उस उजड़े सारस्वत प्रदेश को बसाने और व्यवस्थित करने के लिए आमन्त्रित किया। मनु ने प्रसन्नतापूर्वक इस उत्तरदायित्व को स्वीकार किया।

१.३.१० दसवाँ सर्ग (स्वप्न)

श्रद्धा ने मनु से बिछड़ने के पश्चात नियति का खेल समझते हुए सामने आयी परिस्थति को स्वीकार किया और अकेली रहने लगी। इसी बीच उसने एक पुत्र को जन्म दिया। उसके लालन-पालन में उसका समय बीतने लगा। परन्तु रह-रहकर बीते दिनों की याद आ जाती थी। एक रात उसे स्वप्न आया कि इड़ा नामक एक सुन्दरी मनु का प्रेरणा-स्रोत बनकर उन्हें प्रगति के मार्ग पर ले जा रही हैं। मनु का एक समृद्ध नगर बसा हैं। जिसके चारों ओर पर कोट हैं, ऊँचे-ऊँचे भवन बने हुए हैं। नगर में भूषण और भाँति-भाँति के अस्त्र-शस्त्र, विलास की सामग्री बनती हैं। समाज में नयी-नयी श्रेणियाँ बनी थीं जो परिश्रम करती थीं और नगर की समृद्धि बढ़ रही थी। पुनः एक बड़े प्रासाद में उसने प्रवेश किया, वहाँ ऊँचें –ऊंचे भवन और सुन्दर उद्यान थे। बीच में एक मण्डप के मध्य सिंहासन रखा था। आसपास अनेक मोढ़े रखे थे। सिंहासन पर मनु बैठे थे। उनके हाथ में प्याला था। इड़ा उसमें मद्य डाल रही थी और मनु पी रहे थे। तदनन्तर मनु ने अपनी अतृप्ति प्रकट करते हुए इड़ा से अपना प्रणय स्वीकार करने को कहा। इड़ा के न मानने पर उन्होंने बलपूर्वक उसका आलिंगन कर लिया। ऐसा करने पर वह भय के मारे चीख उठी। उससे मानो पृथ्वी काँप गई। उस नारी पर अत्याचार होने से अन्तरिक्ष में रुद्र का क्रोधमय स्वर गूँजा कि प्रजा तो अपनी सन्तान होती हैं, उससे ऐसा व्यवहार ! आकाश में दैवी शक्तियाँ क्रुद्ध थीं। शंकर का तीसरा नेत्र खुल गया था, उन्होंने ताण्डव नृत्य करना आरम्भ कर दिया। प्रलय की संभावना से सब जीव भयभीत थे। इड़ा क्रोध और लज्जा से बाहर आयी। प्रजा और प्रहरी क्रुद्ध होकर विद्रोह के लिए उद्यत थे। मनु महल के द्वार बन्द करवाकर छिपकर बैठे सोच रहे थे। उन्होंने प्रहरियों को आदेश दिया कि प्रासाद के द्वार बन्द कर दो और किसी को भीतर न आने दो। मैं सोने जा रहा हूँ। यह कहकर वे मन में त्रस्त होकर शयन कक्ष में चले गये।

श्रद्धा यह स्वप्न देखकर काँप उठी। उसकी नींद खुल गई। सोचने लगी कि मनु ऐसी विपरीत वृत्ति के कैसे हो गये। डर के मारे मनु के प्रति मन आशंकाओं से भर गया|

१.३.११ ग्यारहवाँ सर्ग (संघर्ष)

यद्यपि श्रद्धा ने स्वप्न भाव देखा था परन्तु वह सच्चा था। सारस्वत प्रदेश में सचमुच ही स्थिति अशान्त थी। मनु वहाँ प्रजापति क्या बने कि उनकी उच्छृखलता और बढ़ गई। वे निरंकुश हो गये थे। यद्यपि उन्होंने अपनी योग्यता और शासन-निपुणता से उस प्रदेश की काया पलट दी थी। जनता सब प्रकार से समृद्ध हो गई थी। अनेक कल-कारखानों के खुलने से विविध प्रकार की भौतिक उपभोग सामग्री और शस्त्रास्त्रों का निर्माण हो रहा था। अन्न आदि की न्यूनता नहीं थी। इड़ा जनता की प्रतिनिधि और नेत्री थी। समाज में अशान्ति और विप्लव के कारण जनता राजप्रासाद के सिंहद्वार पर मनु से रक्षा की प्रार्थना करने के लिए खड़ी थी और भीतर जाने की अनुमति की प्रतीक्षा में भी। इड़ा उनकी ओर से प्रजापति के पास गई थी परन्तु अपमानित होकर लौटी थी। मनु उसे भी अपनी वासना का शिकार बनाना चाहते थे। जनता उसकी दशा देखकर भड़क उठी थी। द्वारपालों ने प्रासाद के फाटक बन्द किये थे। बाहर प्राकृतिक उत्पात हो रहे थे। मनु अपने बिस्तर पर लेटे सोच रहे थे कि मैंने इन लोगों को उन्नति का मार्ग दिखाकर सुखी बनाया परन्तु बदले में मुझे क्या मिला जो विधान सबके लिए बनाया ये लोग मुझे भी उसी में बाँधना चाहते हैं। इड़ा इस प्रकार मुझे नियमों के अधीन करना चाहती हैं। परन्तु मैं सदा स्वतन्त्र और निरंकुश रहूँगा। तभी वहाँ पर इड़ा खड़ी देखी वो कह रही थी कि नियम सभी के लिए होते हैं। नियम बनाने वाले को स्वयं उनके अनुसार चलना चाहिए अन्यथा सारी व्यवस्था नष्ट हो जाती हैं। किसी का भी निरंकुश पर अधिकार नहीं होता हैं। मनु ने कहा कि यदि प्रजापति होने का अर्थ यही हैं कि उसकी लालसा भी अपूर्ण रहे तो लाभ क्या हुआ। मुझे शासन या आधिकार कुछ नहीं चाहिए। मैं केवल तुम्हें पाना चाहता हूँ। इड़ा ने बहुत कुछ समझाने की चेष्टा की कि द्वार पर प्रजा क्षुब्ध खड़ी हैं और तुमसे रक्षा पाने की आशा में हैं। मैंने तुमको इस प्रदेश का स्वामी बनाकर सारी सत्ता सौंपी। पर यह मेरा अपराध बन गया। अब भी चेतो और प्रजा की पुकार सुनो। यह कहकर वह द्वार की ओर बढ़ी। तभी मनु ने बांहें फैला दी और उसको आलिंगन में भर लिया कि तुम यों नहीं जा सकती हो। इड़ा की चीख सुनकर जनता ने क्रोध में भड़ककर सिंह द्वार तोड़ दिया और भीतर घुस आयी। मनु ने उन्हें देखा तो क्रोध में भरकर अपना राजदण्ड उठा लिया और कहा कि मैंने तुम लोगों को प्रगति का मार्ग दिखाकर सुख के साधन बताये। समाज को विभिन्न वर्गों में बाँटकर अलग-अलग कर्म बाँटे। पहले लोग प्राकृतिक विपत्तियों को चुपचाप सहते थे पर अब उनका उपाय करते हैं। अब सब सभ्य बन गये हैं पर मेरे उपकारों का यही बदला हैं क्या? इस पर जनता ने भड़ककर कहा कि तूने हमें आवश्यकता से अधिक संचय करना सिखाकर लालच दिया। यन्त्रों का आविष्कार करके हमारी कर्म करने की स्वाभाविक शक्ति छीन ली। ऊपर से हमारी रानी इड़ा पर ये अत्याचार किया हैं। अब तुम्हारे हाथों से नहीं बच सकता। यह सुनकर मनु ने भी कहा, तो अच्छा तुम सब एक ओर हो, एक तरफ मैं हूँ। यह कहकर वे राजदण्ड लेकर जनता पर टूट पड़े। उधर से धनुष-बाण चल रहे थे। उनके नेता आकुलि और किलात असुर पुरोहित थे। मनु के प्रहार से वे दोनों मारे गये। जनता में असीम रोष था। इड़ा इस युद्ध को रोकने को कह रही थी। पर वहाँ उसकी कौन सुनता था! इसी बीच दैवी शक्तियाँ अन्तरिक्ष में गरज उठीं। रुद्र

का बाण जिसमें अग्नि थी, छूटा। अन्य दैवी शस्त्र भी चले और सब मनु पर गिर गये। मनु घायल होकर भूमि पर गिर पड़े। अब चारों ओर रुधिर बह रहा था।

१.३.१२ बारहवाँ सर्ग (निर्वेद)

यह युद्ध स्थल रक्त की धारा, मृत व्यक्तियों की देहों आदि से चारो तरफ वीभत्स दृश्य उत्पन्न हो गया था | नगर शान्त और क्षुब्ध था। घायलों की सिसकियों के अतिरिक्त कुछ सुनाई न देता था। चारों ओर अन्धकार था। घनी रात थी। इड़ा अकेली मण्डप में बैठी थी और क्षोभ तथा चिन्ता से भरी थी, उसके मन में एक ओर मन के प्रति घृणा थी। दूसरी ओर मोह-ममता भी सता रही थी। वह मन में सोच रही थी कि किस प्रकार मनु एक परदेशी के रूप में यहाँ असहाय आया था पर वही बाद में यहाँ का शासक बन गया। जो इतना साहसी और मानी था, आज अधमरा होकर पड़ा हैं। उसने मुझसे प्रेम किया पर मर्यादा से बाहर जाने के कारण वही प्रेम अपराध बन गया। उसने मेरे साथ अपराध भी किया पर उपकार भी बहुत किया था। इस प्रकार भलाई और बुराई दोनों कीं। कहाँ तो उस अपराध के लिए दण्ड देना था पर आज मैं इसकी इस दशा में देखभाल कर रही हूँ।

वह ऐसा सोच रही थी तभी उसके कानों में एक करुण पुकार पड़ी। किसी नारी का स्वर था जो कह रही थी कि कोई दया करके यह बता दो कि मेरा प्रवासी कहाँ हैं। वह मुझसे रूठकर चला आया था।

यह सुनकर इड़ा ने अन्धकार पूर्ण राजपथ की ओर गौर से देखा कि किसी आती हुई नारी की धुंधली छाया दिखाई दी। साथ में एक किशोर अवस्था का बालक था। उसका शरीर थकान से ढीला हो रहा था। कपड़े अस्त-व्यस्त थे। चोटी खुली हुई थी। वे दोनों घायल मनु को खोज रहे थे। इड़ा को उन्हें देखकर दया आ गई। जाकर उन्हें पूछने लगी कि तुम किसे खोज रही हो? इस रात में कहाँ जाओगी? यहीं ठहरो। यह सुनकर श्रद्धा रुक गयी। बालक भी थका हुआ था। वह इड़ा के साथ मण्डप में उस वेदी के पास आयी जहाँ आग जल रही थी। उनके आने पर सहसा वेदी की आग धधक उठी। उसके प्रकाश में नीचे पड़े घायल मनु दिखाई दे गये।श्रद्धा चौंककर बोल उठी हैं, क्या मेरा सपना सच्चा था। और रोती हुई मनु के पास बैठ गई और उसका शरीर सहलाने लगी। इड़ा चुपचाप यह सब देख रही थी। वह हैंरान हो गई। श्रद्धा के स्पर्श से मनु की मूर्छा टूट गई। उन्होंने श्रद्धा को देखकर पहचान लिया, दोनों की आंखों में आँसू भर आये। श्रद्धा ने कुमार को पुकारकर कहा कि आकर देख, ये तेरे पिताजी घायल पड़े हैं। वह भी पुलकित होकर "पिता जी, मैं आ गया" यह कहकर वहाँ पहुँच गया। देखकर माता से बोला-माँ, इनको प्यास लगी होगी कुछ पानी पिला। इस बात को सुनकर वहाँ एक पारिवारिक वातावरण सा बन गया और बरबस श्रद्धा के मुख से एक गीत निकल पड़ा। धीरे-धीरे रात खुल गयी। मनु ने आँखें खोलीं। श्रद्धा ने सहारा देकर उन्हें ऊपर उठाया। उन्होंने प्यार से कहा-"श्रद्धा, तू आ गयी? क्या मैं इसी स्थान पर पड़ा था?" अरे यह तो वही सभा भवन, खम्भे और चबूतरा हैं। इड़ा को देखकर उन्होंने घृणापूर्वक कहा कि दूर हो, मुझे न छूना। फिर श्रद्धा को कहा कि तुम मेरे पास आओ। कुछ पानी पीकर उन्हें कुछ आराम मिला। आश्वस्त होकर श्रद्धा से कहने लगे, कि मुझे कहीं दूर ले चल, यहाँ मैं एक क्षण भी नहीं ठहरना चाहता। इस पर श्रद्धा ने कहा कि ठहरो, शरीर में कुछ शक्ति आने दो, तब चलेंगे। इतनी देर ठहरने से हमें कोई नहीं रोकेगा।

इड़ा यह सुनकर कुछ न बोली। उसने कोई विरोध नहीं किया। मनु पिछले समय को स्मरण करके अपने दुर्व्यवहार के लिए पश्चात्ताप करने लगे और कहा कि मुझे छोड़ दो। मैं तुम्हारा अपराधी हूँ। इसी प्रकार की बातें करते दिन बीत गया। रात आ गई। श्रद्धा और कुमार लेटे हुए थे। मनु चुपचाप सोच रहे थे कि श्रद्धा को मुख कैसे दिखाऊँ। बाकी इड़ा आदि तो कृतघ्न हैं। ये मेरे शत्रु हैं। इसलिए यहाँ रहना ठीक नहीं हैं। यह सोचकर जब सबको सोता देखा तो चुपचाप वहाँ से चले गये।

सुबह जब सब लोग सोकर उठे तो वहाँ मनु न थे। पिता जी कहाँ हैं, यह कहता हुआ बालक उन्हें खोज रहा था। इड़ा अपने-आपको अपराधी मान रही थी। श्रद्धा चुपचाप सोच रही थी कि अब क्या करूँ|

१.३.१३ तेरहवाँ सर्ग (दर्शन)

अन्ततः वह कुमार को लेकर पुनः मनु को खोजने चली। रात्रि का समय था, दोनों सरस्वती के तट पर खड़े थे। कुमार श्रद्धा को कह रहा था, कि अब कहाँ जा रही हैं, चल, लौटकर घर चलें। श्रद्धा ने कहा, “बेटा, मेरा घर तो यह खुला संसार हैं जो नित्य परिवर्तनशील हैं। इसमें बारी-बारी से सुख और दुख आते रहते हैं।" उसकी यह बात सुनकर इड़ा ने कहा किमाता, यदि ऐसी बात हैं तो तुम्हें मुझसे घृणा क्यों हो गई, तुम यहाँ से जाने लगीं | श्रद्धा ने उसकी ओर मुड़कर देखा और कहा कि भला तुमसे मुझे घृणा कैसे हो सकती हैं। तुमने मेरे रूठे हुए प्रियतम को अपने पास सहारा दिया था। भला इस उपकार को मैं कैसे भूल सकती हूँ। एक दिन वह तेरा सुन्दर चेहरा देखकर तुझ पर मुग्ध हो गया था। तू माया और ममता की प्रतिमा नारी हैं। उसने तुम्हारे साथ अपराध किया था, इसलिए मैं इसके लिए तुझसे क्षमा माँगती हूँ|

इड़ा ने सुनकर कहा कि भला वे ही अपराधी कैसे हैं। मेरा भी अपराध कम नहीं हैं।मैंने समाज में श्रम का विभाजन करने के लिए वर्ग बनाये थे। उद्देश्य यह था कि सब लोगों के कर्म विभक्त हो जायेंगे तो उनमें किसी प्रकार का संघर्ष नहीं होगा। सब अपना-अपना काम करेंगे। परन्तु बात उल्टी हो गई पर अब लोगों में फूट पड़ रही हैं। जिन्हें श्रम का भाग मिल गया वे अभिमानी हो गये। अधिकार पाकर नियमों का उल्लंघन करने लगे। सबकी लिप्सा बहुत बढ़ी हुई हैं। मैं इस देश के लिए कल्याणमय समझी जाती थी पर आज अवनति के कारण निन्दनीय बन गयी हूँ। मेरे किये हुए विभाग अब टूट रहे हैं। नये-नये नियम और कानून बन रहे हैं जो कि विपत्ति के कारण बन रहे हैं। मैं शायद भ्रम में थी। जिस कर्म मार्ग को व श्रम को समाज का सुख साधन समझ रही थी, वही विनाश का कारण बन गया हैं। मेरा अन्य अपराध यह हैं कि मैंने तुम्हारा सौभाग्य सुख छीना हैं इस अपराध के लिए मुझे क्षमा कर दो, मुझसे रूठो नहीं। श्रद्धा ने कहा कि तेरा अपराध इतना ही हैं कि तू सबके ऊपर रहकर शासन तो चलाती रही परन्तु माया, ममता की भावना तुझमें नहीं थी। अब दुखी होने का नाटक रच रही हैं, यह व्यर्थ हैं। जीवन एक नदी की धारा के तुल्य हैं जिसे स्वच्छन्द बहने देना चाहिए। जीवन में बारी-बारी से सुख-दुख आते ही रहते हैं। तू क्षमा न करके बदले में कुछ चाहती हैं। लगता हैं, तेरी प्रतिशोधकी भावना शान्त नहीं हुई हैं। मैं भला क्या दे सकती हूँ। मेरा सर्वस्व खजाना यह बालक ही हैं। मैं इसको तुझे सौंपती हूँ। इसे यहाँ छोड़कर अपना मार्ग पकड़ती हूँ। यह कहकर उसने बालक को कहा-बेटा, तू यहीं

इनके पास रह । उत्तम कार्य करके इस प्रदेश को सुखी और सुन्दर बनाना । तुम दोनों मिलकर राष्ट्र-व्यवस्था का मार्ग संचालन करो पर देखना, तुम्हारा शासन प्रजा के लिए मंगलकारी हो, दुखदायी न बन जाये । मैं अपने प्रिय को खोजने के लिए जाती हूँ । बालक मेरा जीवन-वृत्त बन जायेगा । तू मुझको यदि यहाँ छोड़कर जा रही हैं तो ने कहा-"माँ मुझसे न रूठ और मुझे छोड़कर न जा । मैं सदा तेरी आज्ञा का पालन करूँगा |' श्रद्धा ने कहा, "इड़ा से तुझे जो स्नेह मिलेगा, उससे तेरा मुझसे बिछुड़ने का दुख दूर हो जायेगा । यह तर्क प्रधान हैं, तू श्रद्धा विश्वास प्रधान हैं । दोनों का संयोग लोक कल्याणकारी होगा । तू उत्तम कर्म करके इसकी व्यथा को हर लेना । मानवता के भाग्य जागें । सर्वत्र समरसता का प्रचार करना ।" इस पर इड़ा ने श्रद्धा के पैरों की धूल सिर पर लगाई और कहा कि माता, आपकी ये बातें मुझे सदा स्मरण रहें । आपका प्रेम सदा हमारा सहारा बनकर कल्याणकारी हो । यह कहकर उसने कुमार का हाथ पकड़ा और दोनों नगर की ओर चल दिये । श्रद्धा अपने मार्ग पर चल दी।

अंधेरी रात थी, सब ओर सुनसान था । श्रद्धा सरस्वती के तट पर आयी । उसने चारों ओर घूमकर देखा तो पास में एक गुफा थी जिसका द्वार लताओं से ढका था । उसमें दो आँखें खुली चमक रही थीं । लगा कि यहाँ कोई जीवित व्यक्ति विद्यमान हैं । वह पास पहुँची, मनुने श्रद्धा को पहचाना कि वह कितनी ममता पूर्ण हैं । वे उसका त्याग देखकर विस्मित हो गये । कहने लगे कि तु कितनी उदार हैं । मैं तुझे छोड़कर यहाँ चला आया । यहाँ भी जिनसे घबराकर भाग आया था, तूने उनको भी अपना पुत्र सा सर्वस्व दे दिया । इड़ा ने तुझे अब भी ठग लिया । श्रद्धा ने कहा कि आप किसी प्रकार की शंका न करें । तुमने जो अपराध किया था, वह अब इड़ा के लिए बन्धन बन गया, तुम्हारी मुक्ति हो गई । तब मनु ने कहा, कि मुझे तुम्हारे साथ किये व्यवहार के लिए बहुत पश्चात्ताप हैं । मैं ग्लानिवश वहाँ से चला आया, कितने दिन भूख-प्यास सहता रहा । अब तुम मुझे क्षमा कर दो । श्रद्धा ने कहा, यह सुनसान रात उस रात का स्मरण करा रही हैं जिस दिन मैंने अपने-आपको तुम्हें सौंपा था । इसके बीतने पर हम प्रातःकाल वहाँ के लिए चलेंगे जहाँ पूर्णतः शान्ति रहती हैं ।

उस समय घोर अन्धकार था जिसके कारण किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं दिख रहा था। सहसा सारी सृष्टि में एक स्पन्दन का सा अनुभव हुआ । चारों ओर चाँदनी का प्रकाश फैल गया । हृदय पर पड़े अज्ञान के पर्दे खुल गये । चारों ओर प्रकाश छा गया । चाँदी के समान शुभ्र वर्ण का प्रकाशमय एक पुरुष प्रकट हुआ जो कि कल्याणमय चेतन था । अन्धकार उसका केशपाश बन गया था, चित्त शक्ति उस शून्य को चीरकर प्रकट हुई थी । वह आलोक पुरुष और कोई नहीं स्वयं नटराज शिव आनन्द में नृत्य कर रहे थे । सातों स्वर लय बनकर ताल दे रहे थे । उस समय देश और काल का ज्ञान नहीं हो रहा था चारों ओर चेतना की प्रकाश राशि बिखर रही थी । चित शक्ति की वह लीला आनन्दमयी थी । ताण्डव करते समय नटराज के स्वेद बिन्दु गिरकर तारे, चन्द्र, सूर्य बनते थे । उनके पाँवों के भूमि पर पड़ने में संहार और सृष्टि थी । नटराज के उस नृत्य को देखकर मनु विस्मित हो गए | वे पुकार उठे श्रद्धा, मुझे उन चरणों तक अपना सहारा देकर पहुँचा दो जहाँ पहुँचने पर पाप और पुण्य सब भस्म हो जाते हैं । केवल समरसता अखण्ड आनन्द के रूप में रह जाती हैं ।

१.३.१४ चौदहवाँ सर्ग (रहस्य)

श्रद्धा और मनु उसी दिशा में बढ़े चले जा रहे थे। पर्वतराज की ऊँचाई बहुत थी। चारों ओर बर्फ जमी हुई थी। ऊपर चढ़ते-चढ़ते थक गये थे। आगे-आगे श्रद्धा जा रही थी, पीछे-पीछे मनु थे। वहाँ हवा बड़ी तेज चल रही थी। उस ऊँचाई में भी बीच-बीच में गड्ढे और खाइयाँ थीं। चलते-चलते मनु थक गये। श्रद्धा से कहने लगे कि मैं अब आगे चल नहीं सकता इसलिए लौट चलो।

श्रद्धा ने मुसकराकर मनु को सहारा देकर आगे बढ़ाया कि हम बहुत दूर आ गये हैं। अब लौटना भी आसान नहीं हैं। उसने कहा कि हम इस समय जहाँ पर हैं यहाँ देश काल की सीमा प्रतीत नहीं हो रही हैं। पैरों के नीचे पर्वत भी नहीं लग रहा हैं। हम निराधार हैं। आज हम यहीं टिकेंगे। यह समतल भूमि आ गई हैं। मनु ने वहाँ कुछ गर्मी का अनुभव किया। वहाँ पर ग्रह, तारे नक्षत्र आदि कुछ नहीं दिख रहे थे। वहाँ ऋतुओं का भी ज्ञान नहीं हो रहा था, न भूमंडल की रेखा दिखती थी। वहाँ नयी सी चेतना का अनुभव हो रहा था। संसार तीन दिशाओं में बंटा लगता था, वहाँ तीन प्रकाश बिन्दु भी दिखाई दिये। जो अलग-अलग दिख रहे थे और तीन लोकों के प्रतिनिधि थे। मनु ने श्रद्धा से पूछा कि ये कौन से नये ग्रह दिखाई दे रहे हैं, हम किस लोक में पहुँच गये हैं। श्रद्धा ने उत्तर दिया कि इस त्रिकोण के बीच में ये जो तीन बिन्दु दिखाई दे रहे हैं, ये इच्छा, ज्ञान और क्रिया रूप हैं। इनकी शक्ति अपार हैं। उनमें जो लाल वर्ण का हैं, वह इच्छा लोक हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध की पुतलियाँ इसके चारों ओर नाच रही हैं। यह जीवन की मध्य भूमि हैं। यह भावचक्र को चलाती हैं, यहाँ लालसाओं की लहरें उठती हैं। पाप और पुण्य की भावनाएं इसी लोक की वस्तु हैं। सुख और दुख, अमृत और विष परस्पर जुड़े हुए हैं।

दूसरा बिन्दु श्याम वर्ण का कर्म लोक का प्रतिनिधि हैं वह क्रिया हैं। यह नियति की प्रेरणा से निरन्तर घूमता रहता हैं। यह श्रम मय और कोलाहल से भरा हैं। यहाँ कभी विश्राम नहीं हैं, पञ्चभूत की उपासना होती हैं। निरन्तर आकांक्षा बढ़ती हैं। सन्तोष का अभाव हैं। सदा संघर्ष चलता हैं और कोलाहल रहता हैं।

मनु ने कहा, यह कर्मलोक तो भयंकर हैं। पर यह तीसरा प्रकाशमय लोक कौन-सा हैं। श्रद्धा ने बताया कि यह ज्ञानलोक हैं ; यहाँ सुख-दुख की चिन्ता करके केवल बुद्धिचक्र चलता हैं। यहाँ केवल न्याय का शासन हैं। यहां केवल अभिलषित वस्तु तो मिलती हैं परन्तु सन्तोष नहीं होता। यहां धर्म के आधार पर अधिकारों की व्याख्या होती हैं। यहाँ सामञ्जस्य करने के नाम पर वैषम्य फैलाते हैं। इस प्रकार तीनों पृथक्-पृथक् होने से समरसता नहीं ला सकते। ज्ञान और क्रिया में परस्पर मेल होने से मन की इच्छा कभी पूरी नहीं होती। इच्छा, ज्ञान और क्रिया ये ही त्रिपुर कहलाते हैं। इन तीनों का मेल हो जाने पर ही जीवन की सफलता होती हैं।

ऐसा कहते-कहते श्रद्धा की मुस्कान की रेखा प्रकाश पुञ्ज सी उन तीनों में संचरित हुई। जिससे वे तीनों एक साथ मिल गये। उनमें एक लौ सी प्रकट हुई। उस समय जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति की अवस्था भस्म हो गई। इच्छा, क्रिया और ज्ञान मिलकर एक हो गये थे।

१.३.१५ पंद्रहवाँ सर्ग (आनन्द)

पहाड़ी मार्ग से कुछ यात्री धीरे-धीरे जा रहे थे। ये इड़ा और कुमार थे। साथ में सोम लता से छका सफेद रंग का सांड था जो धर्म का प्रतीक था। उसके गले में घंटा बंधा हुआ था। मानव के बायें हाथ में बैल की नाथ थी और दायें हाथ में त्रिशूल था, दूसरी ओर गेरुए कपड़े पहने इड़ा भी चुपचाप चल रही थी। साथ में कुछ और यात्री भी थे जिनमें माताएं और बच्चे थे। स्त्रियाँ मंगल गीत गा रही थीं। बालक ने माता से पूछा कि अभी कितनी दूर चलना हैं ? माता ने उत्तर दिया कि आगे देवदारु के जंगल वाला मैदान पार करके वह तीर्थ आ जायेगा। इड़ा ने बालक के कहने पर कथा सुनाई कि कोई मनस्वी संसार के सन्तप्त उस तपोवन में आया था। उसके संताप से पर्वत में आग लग गई थी। तब उसकी पत्नी उसे खोजती हुई वहाँ आई। उसके आँसुओं से वह आग बुझ गई। उसने कहा कि हम सारस्वत नगर के वासी यहाँ तीर्थ यात्रा करने आये हैं। इस वृष का वहां उत्सर्ग कर देंगे ताकि यह वहां स्वतन्त्रता से विचरण कर सकेगा।

वे बातें करते-करते आगे बढ़े तो ढलान आ गया | वहाँ समतल भूमि थी। चारों ओर हरियाली थी। सामने कैलाश पर्वत था। वहाँ पर सुन्दर मानसरोवर था। उसके किनारे मनु ध्यान लगाये बैठे थे, पास में हाथों में फूल लिये श्रद्धा खड़ी थी। यात्रियों ने दोनों को पहचाना और उन्हें प्रणाम किया। बालक श्रद्धा की गोद में बैठ गया। इड़ा ने श्रद्धा के चरणों में सिर झुकाकर कहा कि ममता ने हमें खींचा हैं। उस समय मुझे कुछ भी ज्ञान न था। हम एक परिवार के रूप में इस तीर्थ की यात्रा करने आये हैं। ताकि हमारे पाप दूर हो जायें। मनु ने मुसकराकर कैलाश की ओर संकेत किया। कहा कि यहाँ कोई पराया नहीं हैं न कुटुम्बी हैं हम सब एक हैं। यहाँ कोई पापी या अभिशप्त नहीं हैं। जीवन समरस हैं। यहाँ एकमात्र चिति समुद्र की भाँति फैली हैं जिसमें व्यक्ति बुलबुले की भाँति कुछ समय के लिए अलग दिखाई देते हैं। यह सारा विश्वमहासत्ता चित्त का शरीर ही हैं। यहाँ सबको अपने से अभिन्न समझकर उनकी सेवा करने में ही सुख हैं। मानव सारे भेद भुलाकर यदि यह कह दे कि यह मैं ही हूँ, दूसरा कोई नहीं तो सारे जगत में एकता स्थापित हो जाये।

मनु के इन ज्ञान भरे वचनों को सुनकर श्रद्धा के होठों पर मुस्कान छा गई। जिस समरसता पर वह जोर दिया करती थी, मनु उसी की प्रतिष्ठा कर रहे थे। इस प्रकार उस समरसता की भावना से एक अखण्ड आनन्द की अनुभूति हो रही थी।

१.४ सारांश

कामायनी महाकाव्य एक काव्य रूप हैं जो पंद्रह सर्ग में विभाजित हैं | कामायनी महाकाव्य में कवि ने विशाल जलाकाय पृथ्वी पर मनुष्य जीवन का आरंभ और प्रेम की उत्पत्ति से लेकर तीन प्रमुख पात्रों द्वारा चिन्ता, आशा, काम, वासना, लज्जा, कर्म, ईर्ष्या, स्वप्न, संघर्ष, निर्वेद, दर्शन, रहस्य. आनन्द आदिभावनाओं को विचार और कार्य में सम्मिलित कर इस काव्य को पूर्णता दी हैं, विद्यार्थी सभी सर्ग के अध्ययन से कथानक को समझ गये होंगे |

१.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) सर्गानुसार कामायनी अपने शब्दों में लिखिए |

२) कामायनी की कथावस्तु का वर्णन कीजिए |

१.६ लघुत्तरी प्रश्न

१) कामायनी महाकाव्य में कुल कितने सर्ग हैं?

उत्तर - पंद्रह सर्ग

२) कामायनी की प्रथा का प्रारंभ किस सर्ग से होता हैं?

उत्तर - चिंता सर्ग

३) कामायनी का अंतिम सर्ग कौन सा हैं?

उत्तर - आनंद

४) इड़ा का आगमन किस सर्ग में होता हैं?

उत्तर - नौवां सर्ग (इड़ा)

५) मनु प्रलय के पूर्व कौन से वातावरण में रह रहे थे?

उत्तर - याज्ञिक संस्कृती के वातावरण में

१.७ संदर्भ पुस्तकें

१) कवि प्रसाद – डॉ. आचार्य दुर्गाशंकर मिश्र, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ

२) कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, चतुर्थ संस्करण – 1971

३) कामायनी की काव्य – प्रवृत्ति – डॉ. कामेश्वर सिंह, पुस्तक संस्थान, कानपुर, वर्ष- 1973

४) प्रसाद का काव्य - डॉ. प्रेमशंकर, भारती भण्डार, इलाहाबाद, वर्ष- 1970

५) कामायनी प्रेरणा और परिपाक – डॉ. रमाशंकर तिवारी, ग्रन्थम, कानपुर, प्रथम संस्करण – 1973

६) कामायनी एक विवेचन- डॉ.देशराज सिंह एवं सुरेश अग्रवाल, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संकरण – 2015

७) हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ. शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2021 – 2022

८) आधुनिक हिन्दी कविता में काव्य चिंतन, डॉ. करुणाशंकर पाण्डेय, क्वालिटी बुक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर

९) हमारे प्रिय कवि और लेखक, डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी एवं राकेश, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ

❖❖❖❖

२

कामायनी में रूपक तत्व, भाषाशैली और सौंदर्यानुभूति व प्रकृति चित्रण

इकाई की रूपरेखा

२.० उद्देश्य

२.१ प्रस्तावना

२.२ कामायनी में रूपक तत्व

२.३ कामायनी में सौंदर्यानुभूति और प्रकृति-चित्रण

२.४ कामायनी की भाषा – शैली

२.५ सारांश

२.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

२.७ लघुत्तरीय प्रश्न

२.८ संदर्भ पुस्तके

२.० उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत छायावाद के प्रवर्तक कवियों में प्रमुख जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध काव्य संग्रह कामायनी के रूपक तत्वों पर विचार-विमर्श किया जाएगा | कामायनी में रूपक तत्वों का विशेष महत्त्व हैं | इस इकाई के अंतर्गत विद्यार्थीप्रसाद जी के महाकाव्य कामायनी के रूपक तत्त्वों, उसके प्रकृति चित्रण और सौन्दर्यानुभूति से परिचित हो सकेंगे |

२.१ प्रस्तावना

कामायनी में रूपक तत्त्वों का विशेष महत्त्व हैं | यह मनुष्यता का एक मनोवैज्ञानिक इतिहास हैं आधुनिक हिन्दी साहित्य में जयशंकर प्रसादके काव्य में रूपक तत्वों की अपनी विशिष्ट पहचान हैं |

२.२ कामायनी में रूपक तत्व

साहित्यालोचकों द्वारा साहित्यशास्त्र में रूपक के मुख्य तीन अर्थ स्वीकार किये जाते हैं-(१) दृश्य काव्य या नाटक के रूप में (२) अलंकार विशेष के रूप में और (३) पश्चिम के एलीगरी (allegory) के रूप में । इनमें से एलिगरी ही अपेक्षाकृत अधुनातन हैं और एलिगरी उस प्रकार की रचना को कहते हैं जो द्विअर्थक होती हैं और जिसका एक अर्थ प्रत्यक्ष तथा दूसरा गूढ़ होता हैं । डॉ.नगेन्द्र का मानना हैं कि 'इस विशिष्ट अर्थ में रूपक से तात्पर्य एक ऐसी

द्विअर्थक कथा से हैं, जिसमें किसी सैद्धांतिक अप्रस्तुतार्थ अथवा ध्वन्यार्थ का प्रस्तुत अर्थ पर अभेद आरोप रहता हैं।' कहने का अभिप्राय यह हैं कि कथा स्पष्ट और सामान्य अर्थ के अतिरिक्त एक और सांकेतिक अर्थ अवश्य होना चाहिए तथा रूपक लय से हमारा अभिप्राय यहाँ इसी अर्थ से हैं।

इस सम्बन्ध में जयशंकर प्रसाद जी ने 'कामायनी' के आमुख में लिखा हैं कि' यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक हैं, तो भी बड़ा भावमय और श्लाघ्य हैं। यह मनुष्यता का मनो वैज्ञानिक इतिहास बनाने में समर्थ हैं। यह आख्यान इतना प्राचीन हैं कि इतिहास में रूपक का अद्भुत मिश्रण हो गया हैं। इसलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मनु अर्थात मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता हैं'। इस प्रकार कामायनी कार ने ही यह मान लिया हैं कि कामायनी में रूपक तत्व भी विद्यमान हैं | यह बात इस तथ्य से भी सिद्ध हो जाती हैं कि यदि कामायनी के पात्र प्रतीक मय सांकेतिक व्यक्तित्व से युक्त हैं तो उसकी प्रमुख घटनाओं का श्लेषभित गूढार्थ भी हैं।

इस बात पर एक बार विचार किया जाए तो स्पष्ट हैं कि 'कामायनी' की सम्पूर्ण कथा द्विअर्थक हैं, क्योंकि इसमें एक ओर तो श्रद्धा और मनु के संयोग से मानवता के विकास का वर्णन हैं और दूसरी ओर मन, बुद्धि और हृदय का क्रमिक विकास प्रस्तुत करके जीव का चिरंतन और अखण्ड आनन्द की प्राप्ति के लिए अहंकार की श्लेषमयी स्थिति से समरसता की आनन्दमयी स्थिति तक पहुँचने का प्रयास वर्णित हैं। सामान्यतया 'कामायनी' की कथा पर विचार करते समय हमारे समक्ष सर्वप्रथम 'देव' आते हैं, जिनकी सीमाहीन विलासिता के कारण जलप्रलय हुआ | अतः हम देवों को इन्द्रियों का प्रतीक कह सकते हैं और निर्बाध आत्म-तुष्टि के कारण इन्द्रियों का पतन होना स्वाभाविक हैं। यों तो जल-प्लावन का हमारे धर्म ग्रंथों में भी सांकेतिक या प्रतीकात्मक प्रयोग मिलता हैं पर 'कामायनी' में इसका प्रतीकात्मक अर्थ हैं, मन, मनुष्य या चेतना का सांसारिकता के जल में पूर्णतः डूब जाना और 'कामायनी' में जलप्लावन के प्रसंग में जो वर्णन हैं उसमें अव्यवस्था का स्पष्ट रूप से चित्रण किया गया हैं। इसी प्रकार 'कामायनी' के प्रमुख पात्र मनु, श्रद्धा और इड़ा क्रमशः मन, हृदय और बुद्धि के प्रतीक हैं तथा स्वयं प्रसाद ने मनु को मन का-मनोमय कोश स्थित जीव का-प्रतीक कहा हैं। मन का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ हैं जिसके द्वारा मनन किया जाय' और उसका प्रमुख लक्षण 'अहंकार' माना गया हैं | यहाँ कामायनी के मनु प्रारम्भ से ही अहंकार की भावना से अभिभूत जान पड़ते हैं-

मैं हूँ यह वरदान सदृश क्यों लगा गूँजनेकानों में,
मैं भी कहने लगा, मैं रहूँ शाश्वत नभ के गानों में।

कामायनी का दूसरा प्रधान पात्र हैं श्रद्धा और वह हृदय की रागात्मक भावनाओं से युक्त होने के कारण हृदय की प्रतीक हैं | आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उसे 'विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति' कहा हैं। कवि के अपने शब्दों में श्रद्धा का स्वरूप यह हैं **'हृदय की अनुवृत्ति बाह्य उदार, एक लम्बी काया उन्मुक्त'**और स्वयं श्रद्धा मनु से कहती हैं-

दया, माया, ममता लो आज मधुरिमा लो अगाध विश्वास,
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ, तुम्हारे लिये खुला हैं पास

इस प्रकार यहाँ उल्लिखित दया, माया, ममता, मधुरिमा और अगाध विश्वास आदि हृदय की ही प्रवृत्तियाँ हैं तथा हृदय से सम्बन्ध रखती हैं | साथ ही इड़ा के सांकेतिक अर्थ में तो कोई संदेह ही नहीं हैं और वह बुद्धिवाद की अति को जन्म देने वाली तर्कमयी बुद्धि का प्रतीक हैं तथा **'बिखरी अलकें ज्यों तर्कजाल--|'** में कवि ने उसके प्रतीकात्मक स्वरूप का चित्र अंकित भी किया हैं । स्वयं इड़ा मनु से कहती हैं **'जो बुद्धि कहे, उसको न मानकर फिर किसकीनर शरण जाय'** और मनु भी उसकी ओर से सारस्वत प्रदेश की पुनर्व्यवस्था को स्वीकार कर कहते हैं--

अवलम्ब छोड़कर औरों का जब बुद्धिवाद को अपनाया,
मैं बढ़ा सहज, तो स्वयं बुद्धि को मानो आज यहाँ पाया।

उक्त प्रमुख पात्रों के साथ-साथ गौण पात्रों और घटनाओं में भी प्रतीकात्मकता हैं | यहाँ मनु पुत्र मानव नवीन मानवता का प्रतीक हैं और आकुलित किलात आसुरी वृत्तियों के प्रतीक हैं। श्रद्धा का पशु अत्यंत निरीह व शोषित प्राणी हैं और वृषभ को धर्म का प्रतिनिधि कहा गया हैं, पर भोग की प्रतीक सोमलता से युक्त होने के कारण वृषभ को भोग युक्त धर्म का प्रतिनिधि मानना चाहिए । सारस्वत नगर प्राणमय कोप का प्रतीक हैं और सारस्वत नगर निवासी मनु के अतिचार पर उनका विरोध करते हैं | अतः उन्हें मन की सहकारी अन्य इन्द्रियों का प्रतीक समझना चाहिए । पशु यज्ञ में कपट पूर्ण व्यवहार होने के कारण वह 'पाप' का प्रतीक हैं और त्रिलोक या त्रिपुर का प्रतीकार्थ भाव लोक, कर्म लोकतथा ज्ञान लोक अर्थात चेतना की तीन प्रवृत्तियों-भाववृत्ति, कर्म वृत्ति और ज्ञानवृत्ति से हैं । कामायनीकार ने यह भी स्पष्ट कर दिया हैं कि जब तक ये तीनों अलग-अलग हैं, अर्थात् मनुष्य की इच्छाएँ कहीं हैं, ज्ञान कहीं और कर्म कहीं तब तक वह असफल और दुखी रहता हैं-

ज्ञान दूर कुछक्रिया भिन्न हैं, इच्छा क्यों हो पूरी मन की
एक दूसरे से न मिल सके, यह विडम्बना हैं जीवन की

अन्त में जिस कैलाश का उल्लेख हैं, उसे समरसता और उससे सम्बद्ध उच्च भावों का प्रतीक माना जा सकता हैं। मनु का कहना हैं-

शापित न यहाँ हैं कोई, तापित पापी न यहाँ हैं ।
जीवन वसुधा समतल हैं, समरस हैं जो कि जहाँ हैं ।

इस भावभूमि की प्राप्ति के बाद मनुष्य पूर्ण हो जाता हैं और अखंड आनन्द की प्राप्ति होने पर मन भी संतुष्ट हो जाता हैं । प्रसाद जी इस सम्बन्ध में लिखते हैं कि-

स्वप्न स्वाय जागरण भस्म हो,
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे।
दिव्य अनाहत पर निनाद में,
श्रद्धायुक्त मनु बस तन्मय थे ।

उक्त विश्लेषण के पश्चात् हम कामायनी की कथा संक्षेप में इस प्रकार दे सकते हैं- 'अबाध संतुष्टि से इन्द्रियाँ सांसारिकता के पंक में डूब जाती हैं । पतन के बाद मन को कुछ होश आता हैं, फिर हृदय (श्रद्धा) के संयोग से उसमें उत्साह, विश्वास आदि आता हैं, पर उसकी

आसुरी वृत्तियाँ उसे फिर गिराने की ताक में रहती हैं। यदि उनके सामने वह झुका तो अंततः हृदय के उच्च भावों के मूल्य को वह पहचान नहीं पाता और उन्हें छोड़कर बुद्धि का सहारा लेता हैं। यहाँ उसका और भी पतन होता हैं और जिन आसुरी भावों ने उसको पतित बनाने में प्रोत्साहित किया था, वे उसके सर्वनाश के लिए प्रस्तुत होकर सामने आते हैं।वह बहुत दुःखी होता हैं, पर हृदय के उच्चभाव फिर उसकी सहायता करते हैं और अन्त में आसुरी प्रवृत्तियों एवं सांसारिकता में लिप्त बुद्धि आदि से दूर हटकर हृदय (श्रद्धा) के सहारे वह जीवन के यथार्थ रहस्य को समझता हैं और समरसता की उच्च भावभूमि पर पहुँचकर आनन्द की प्राप्ति करता हैं.... कवि कुमार के रूप में यह भी कहना चाहता हैं कि मनन शीलता, हृदय और बुद्धि के सामंजस्य से मनुष्य पूर्ण हो सकता हैं। अर्थात् प्रसाद जी की दृष्टि में कुमार पूर्ण और आदर्श मानव हैं।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट हैं कि प्रसादजी ने भारतीय दृष्टिकोण से आज के संतप्त मानव के लिए इस रूप में रामबाण औषधि प्रदान की हैं। आज का मनोविज्ञान भी लगभग इसी निष्कर्ष पर पहुँचता दिखाई पड़ रहा हैं। उसके अनुसार आज का मानव 'स्वरति' के रोग से पीड़ित हैं। उसे केवल व्यष्टि का ध्यान हैं। स्वार्थ अपनी सीमा को पार कर रहा हैं। ऐसी स्थिति में जब तक उससे 'स्व'के भाव निकलेंगे नहीं और जब तक वह अपना मनोवैज्ञानिक विस्तार करके 'पर' की ओर आकृष्ट न होंगे, उसे मानसिक शांति न मिलेगी।

२.३ कामायनी में सौन्दर्यानुभूति और प्रकृति-चित्रण

विद्वानों ने सौन्दर्य को कविता का प्रधान अंग माना हैं | और, सत्य कहा जाय तो कविता सौन्दर्य का ही मूर्तिमान रूप हैं। कला का प्रधान गुण सौन्दर्य ही माना जाता हैं और वह नूतन सौन्दर्य की सृष्टि भी करती हैं। सौन्दर्य बाह्य जगत और आभ्यंतरिक जगत दोनों में पाया जाता हैं। बाह्य जगत वह जगत हैं, जो नेत्र आदि बाहरी इन्द्रियों के द्वारा जाना जा सकता हैं। विचारपूर्वक देखा जाय तो बाह्य जगत का अनुभूत ज्ञान ही कवि के अंतर्जगत का मूल आधार हैं। कवि जहाँ नारी के अंग-प्रत्यंग का बाह्य सौन्दर्य वर्णन करते हैं, वहाँ उसके मानस की प्रेम एवं करुणा आदि आभ्यंतरिक भावनाओं का भी वर्णन करते हैं। एकमात्र बाह्य सौन्दर्य का ही वर्णन करने वाले भी कवि कहे जाते हैं, परन्तु वे कवि जो कि मनुष्य के मानसिक सौन्दर्य का भी वर्णन करते हैं, उनसे कहीं अधिक श्रेष्ठ महाकवि माने जाते हैं।

वास्तव में मानसिक सौन्दर्य भाव जगत का ही विषय हैं और 'कामायनी' का भाव पक्ष निर्विवाद रूप से पुष्ट हैं। इस प्रकार बाह्य जगत का सौन्दर्य वर्णन करते समय मुख्य तया रूप सौन्दर्य को ही विशेष महत्व दिया जाता हैं | रूपसौन्दर्य को भी दो वर्गों में विभक्त किया जाता हैं—१-मानवीय रूप सौन्दर्य और २-प्राकृतिक रूप सौन्दर्य | इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रसाद जी ने 'कामायनी' में नारी और पुरुष दोनों के रूप सौन्दर्य का अंकन किया हैं पर, नारी के रूप सौन्दर्य के चित्रण में उन्हें विशेष सफलता प्राप्त हुई हैं। हम यहाँ यह भी देख सकते हैं कि प्रसाद जी ने रूप सौन्दर्य का चित्रण करते समय सर्वथा नवीन उपमानों को अपनाया हैं। यही कारण हैं कि उनके रूप चित्रण में हमें नवीनता के ही दर्शन होते हैं:

उदाहरणार्थ -

बिखरी अलकें ज्यों तर्कजाल
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशि खंड सदृश था स्पष्ट भाल
दो पद्य पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान
वक्षःस्थल पर एकत्रधरे संसृति के सब विज्ञान- ज्ञान
था एक हाथ में कर्म-कलश वसुधा जीवन रस सारलिए
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभयअवलम्ब दिए
त्रिबली थी त्रिगुण तरंगमयो, आलोक वसन लिपटा अराल
चरणों में धी गति भरी ताल

इस सम्बन्ध में डॉ. रामशंकर रसाल ने लिखा हैं कि 'काव्य का सम्बन्ध यदि रह सकता हैं और हो सकता हैं तो प्रकृति से। काव्य में या तो बाह्य प्रकृति का चित्रण रहेगा अथवा मानव प्रकृति का ।' अतःप्रत्येक प्रबंधकार से यह आशा की जाती हैं कि वह न केवल अपनी अंतर्दृष्टि की सूक्ष्मता का परिचय देता हुआ प्रबन्धगत पात्रों की शील व्यंजना व उनकी अंतः प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन कराए अपितु उसे प्रकृति के विविध रूपों के साथ मानव हृदय के रागात्मक सम्बन्धों का भी विस्तृत विवरण देना चाहिए।

प्रसाद जी की 'कामायनी' में भी प्रकृति चित्रों की बहुलता एवं भव्यता हैं और हम देखते हैं कि कामायनी की कथा का अधिकांश व्यापार प्रकृति प्रांगण में घटित दृष्टिगोचर होता हैं तथा कामायनी के पात्रो का अधिकांश जीवन प्रकृति की गोद में ही विकसित हुआ हैं। यहाँ हम देखते हैं कि 'कामायनी' में प्रकृति चित्रण की विभिन्न प्रणालियों जैसे - आलंबन,उद्दीपन, अलंकार, रहस्य भावना की अभिव्यक्ति, मानवीकरण, नीति और उपदेश का माध्यम तथा प्रतीक आदि का सफल प्रयोग भी हुआ हैं | पर, इन परम्परागत प्रणालियों को अपनाते हुए भी प्रसाद जी के प्रकृति चित्रण में नवीनता के दर्शन होते हैं। उदाहरणार्थ, यहाँ प्रकृति के उद्दीपन रूप का यह चित्र दर्शनीय हैं -

मधुमय बसंत जीवन के वह अंतरिक्ष की लहरों में
कब आये थे तुम चुपके से, रजनी के पिछले पहरों में
जब लिखते थे तुम सरस हँसी, अपनी फूलों के अंचल में
अपना कलकंठ मिलाते थे, झरनों के कोमल कलकल में
निश्चित आह ! वह था कितना उल्लास कली के स्वर में
आनन्द प्रतिध्वनि गूँजरही, जीवन दिगन्त के अम्बर में
लतिका घूँघटसे चितवन की वह कुसुम दुग्ध सी मधु धारा
प्लावित करती अजिर रही, था तुच्छ विश्व वैभव सारा ।।

उक्त प्रसंग में प्रसाद जी की उक्तियों में कहीं भी ऊहात्मकता नहीं हैं। साथ ही कामायनी के प्रकृति चित्रण में व्यापकता भी हैं और कामायनीकार ने प्रकृति के दुहरे स्वरूप का भी चित्रण किया हैं। इस प्रकार कामायनी में एक ओर तो प्रकृति के सुन्दर, वैभवशाली और प्रेरक चित्र हैं तो दूसरी ओर प्रकृति के महाविनाशकारी भयंकर रूप का भी दर्शन हमें होता हैं पर दोनों ही रूपों में स्वाभाविकता हैं। उदाहरणार्थ ; निम्नलिखित पंक्तियाँ हमारे समक्ष प्रकृति का प्रलंयकारी स्वरूप उपस्थित करती हैं --

हाहाकार हुआ क्रन्दनमय, कठिन कुलिश होते थे चूर
हुये दिगंत वधिर भीषण रव, बार-बार होता था क्रूर
दिग्दाहों से धूम उठे या जलधर उठे क्षितिज तट के
सघन गगन में भीम प्रकम्पन, झंझा के चलते झटके
पंचभूत का भैरव मिश्रण, शंपाओं के शकल निपात
उल्का लेकर अमर शक्तियां, खोज रही ज्यों सोया प्रात
उधर गरजती सिन्धु लहरियाँ, कुटिल काल के जालों सी
चली आ रही फेन उगलती, फन फैलाये ब्यालों सी
धंसती धरा धधकती ज्वाला, ज्वालामुखियों के निश्वास
और संकुचित क्रमशः उसके अवयव का होता था ह्रास
सबल तरंगाघातों से उस, क्रुद्ध सिन्धु के विचलित सी
व्यस्त महाकच्छप सी धरणी, ऊभ चूभ थी विकसित सी

दूसरी ओर 'कामायनी' में प्रकृति हमारे समक्ष जीवन की अमिट मुस्कान का भी दृश्य उपस्थित हुआ हैं | प्रकृति के इस सुन्दर रूप को देख कर पाठक का मन मुग्ध हो उठता हैं-

ऊषा सुनहले तीरबरसती, जय लक्ष्मी सी उदित हुई
उधर पराजित काल रात्रि भी, जल में अन्तनिहित हुई
वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का, आज लगा हँसने फिर से
वर्षा बीती हुआ सृष्टि में शरद विकास नये सिर से
नव कोमल आलोक बिखरता, हिम संसृति पर भर अनुराग
सित सरोज पर क्रीड़ाकरता, जैसे मधुमय पिंग पराग
धीरे-धीरे हिम आच्छादन, हटने लगा धरातलसे
जगींवनस्पतियाँ अलसाई मुख धोती शीतल जल से
नेत्र निमीलन करतीमानो प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने
जलधि लहरियों की अंगड़ाई, बार बार जाती सोने

इससे स्पष्ट हैं कि कामायनी में प्रकृति के प्रलयंकारी और हृदयग्राही दोनों ही रूपों का सफल चित्रण हुआ हैं | सच्चाई तो यह हैं कि कामायनी का प्रकृति वर्णन सभी दृष्टियों से पूर्ण सफल हैं । उसमें प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूपों के अतिरिक्त प्रसाद जी की कुछ विशिष्ट विचारधाराओं के दर्शन भी होते हैं जिनके कारण ही उसमें इतनी सजीवता हैं, इतना आकर्षण हैं । यहाँ प्रकृति विश्व सुन्दरी के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होकर अपने हाव-भाव प्रकट करती हुई अपने सौन्दर्य से हमें मोहित करती हैं पर उस सौन्दर्य में कहीं भी भौतिकता की गन्ध नहीं हैं वरन् उसमें हमें उसके महानता के दर्शन होते हैं | प्रकृति के नाना रूपों का ऐसा भव्य चित्रण, उसके प्रलयंकारी दृश्यों का इतना सजीव वर्णन शायद अन्यत्र दुर्लभ हैं |

२.४ कामायनी की भाषा-शैली

कामायनी निर्विवाद रूप से कवि प्रसाद की प्रौढ़तम और सर्वश्रेष्ठ रचना हैं तथा उसमें कवि की कला का चरमोत्कर्ष हैं । आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी का मानना हैं कि 'प्रसादजी की काव्य शैली में नवीनता और उनकी भाषा प्रयोगों में पर्याप्त व्यंजकता और काव्यानुरूपता हैं |

प्रथम बार काव्योपयुक्त पदावली का प्रयोग कामायनी में किया गया हैं ।' इस प्रकार भाव पक्ष की भाँति कामायनी का कलापक्ष भी यथेष्ट समृद्ध, उदात्त, गरिमामय और प्रभावशाली हैं |

कामायनी की भाषा सरस, भावपूर्ण एवं प्रांजल हैं । वह भाव-भार-वाहिनी हैं । कामायनी को काव्य की सर्वोत्कृष्ट सीमा तक ले जाने में समर्थ हैं । भाव चित्रण के लिए कवि ने भावानुरूप यही शब्द चयन किया हैं । ऐसे शब्दों के चयन में प्रसादजी ने प्रौढ़ता का परिचय देकर सुसंगठित शब्द योजना का विधान किया हैं । लज्जा सर्ग तो इसका उत्कृष्ट उदाहरण हैं । इसमें कामायनीकार ने भावानुकूल सरस, सरल एवं सशक्त शब्दों का प्रयोग किया हैं, इन शब्दों में भावों को मूर्तिमान करने की अपूर्व क्षमता हैं -

कोमल किसलय के अंचल में नन्हीं कलिका ज्यों छिपती सी
गोधूली के धूमिल पट में दीपक के स्वर में दिपती सी।
मंजुल स्वप्नों को विस्मृति में मन का उन्माद निखरता ज्यों
सुरभित लहरों की छाया में बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों
वैसी ही माया लिपटी अधरों पर उंगली धरे हुए।
माधव के सरस कुतूहल का आँखों में पानी भरे हुए ।

'कामायनी' का शब्द विधान भी उल्लेखनीय हैं और उसमें शब्दों का संग्रह तत्सम, तद्भव और देशज-तीनों ही स्तर पर किया गया हैं पर संख्या तत्सम शब्दों की ही अधिक हैं । यह तत्सम शब्दावली भी तीन प्रकार की हैं | प्रथम हैं, दार्शनिक तथा समरस, चिति, चेतन, आनन्द, लीला, कला, उन्मीलन, काम, इच्छा, श्रेय, विषमता, व्यस्त, स्पंदित, भूमा, नियति, नित्य, काल, नटराज वनिपुर आदि ऐसे ही शब्द हैं। द्वितीय प्रकार के शब्दों में विष्कंभक, अभिनय, अंक, अघम पात्र, रंगस्थल, दृश्य, दर्शक, विदूषक आदि साहित्य शास्त्रीय शब्द हैं जो कामायनी में प्रयुक्त हुए हैं । इसी प्रकार कामायनी में तृतीय प्रकार के वे तत्सम शब्द हैं जो हिन्दी में अप्रचलित हैं और तिमिगलो, ज्योतिरिगंगों, व्रज्या, श्वापद, आवर्जनाएवम् अलम्बुषा आदि ऐसे ही शब्द हैं । इस प्रकार के तत्सम शब्द कहीं-कही क्लिष्ट भी जान पड़ते हैं पर इनकी संख्या बहुत कम हैं और प्रसाद जी ने प्रायः ऐसे ही तत्सम शब्दों का प्रयोग किया हैं जो सर्वप्रचलित हैं ।

कामायानी में तद्भव शब्दों का भी बहुत अधिक प्रयोग हुआ हैं । जैसे-निबल (निर्बल), सपना (स्वप्न), नखत (नक्षत्र), रात(रात्रि), तीखा(तीक्ष्ण), पीर (पीड़ा), प्रान (प्राण) परस (स्पर्श), सांझ (संध्या) आदि । साथ ही 'कामायनी' में पेंग, ठिठोली, बुल्ला, डीह, गेल, झिटका, ढोकर, मचल, सुआ, पुआल, अटकाव, झीमना, बकना, बयार, दाँव, हिचकी, बावला आदि देशज शब्दों का प्रयोग भी हुआ हैं और मधुर, मधु, महा, चिर, चिति आदि शब्दों को अन्य शब्दों के आगे पीछे जोड़कर कामायनीकार ने प्रचुर मात्रा में नये शब्द युग्मों का निर्माण भी किया हैं । इतना अवश्य हैं कि कामायनी में 'अपरूप' जैसा एकाध शब्द बंगला और दाग, घायल आदि कुछ इने गिने शब्द अरबी-फारसी के मिल जाते हैं पर कामायनी में विदेशी प्रभाव नहीं के समान हैं । यहाँ यह स्मरणीय हैं कि पूर्ण एवम् अपूर्ण पुनरुक्त शब्दों की योजना भी कामायनी की भाषा को गतिशील एवम् प्रभावी बनाने में सक्षम सिद्ध हुई हैं और 'कामायनी' में कहते-कहते, दूर-दूर, धीरे-धीरे, क्षण-क्षण, हरी-भरी, ऊभचूभ, आस-पास, नोंक-झोंक, चहल-पहल आदि शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ हैं । इसी प्रकार कामायनी

की भाषा को सरस जीवंत और संवेदनशील बनाने में लोकोक्तियों तथा मुहावरों का भी बहुत अधिक योग हैं।

सच्चाई तो यह कि 'कामायनी छायावाद का सर्वप्रथम महाकाव्य हैं और उसमें छायावादी काव्य की समस्त विशेषतायें विद्यमान हैं। सामान्य तया छायावादी कविता में लाक्षणिकता, चित्रमयता, ध्वन्यात्मकता और प्रतीकात्मकता आदि विशेषतायें आवश्यक मानी जाती हैं तथा ये सभी कामायनी में दर्शनीय हैं। चित्रमयता तो कामायनी की भाषा में स्थान-स्थान पर झलक उठती हैं और शब्द चित्रों तथा भावचित्रों के सुन्दर उदाहरणों से भरी पड़ी हैं | उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियों को देख सकते हैं :

वोचिन्ता की पहली रेखा, अरी विश्व बन की व्याली
ज्वाला मुखी स्फोट के भीषण प्रथम कम्प सी मतवाली
हे अभाव की चपल बालिके री ललाट कीखललेखा
हरी भरी सी दौड़ धूप और जल साया कीचल रेखा
इस ग्रह कक्षा की हलचल री तरल गरल की लघु लहरी
जरा अमर जीवन की और न, कुछ सुनने वाली बहरी

कामायनी में नाद प्रधान या ध्वन्यात्मक शब्दों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ हैं और कामायनी की ध्वन्यात्मकता ने उसके भाषा सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया हैं। इसी प्रकार कामायनी की भाषा मे सांकेतिकता अर्थात लाक्षणिकता भी हैं और सम्पूर्ण लज्जा सर्ग कामायनी की भाषा की लाक्षणिकता का परिचायक हैं; उदाहरणार्थ-

नीरव निशीथ में लतिका सी, तुम कौन आ रही हो बढ़ती
कोमल बाहें फैलाये सी आलिंगन का जादू पढ़ती।
किन इन्द्रजाल के फूलों से लेकर सुहाग कण राग भरे
सिर नीचा कर हो गूंथ रही, माला जिससे मधुधार ढरे

कामायनी की भाषा में प्रतीकात्मकता भी हैं और कवि प्रसाद ने प्रतीकों की सहायता से कई स्थलों पर सजीव चित्र प्रस्तुत किए हैं। उदाहरणार्थ; कामसर्ग की आरम्भिक पंक्तियों में वसन्त यौवन का, रजनी का पिछला पहर कै शौर्य का, मतवाली कोयल सौन्दर्य का और कलियाँ प्रेम का प्रतीक बन कर आये हैं। साथ ही 'चिन्ता' सर्ग में आये हुए कुछ शब्द और प्रेमालिंगनों का विलीन होना अर्थात् कुंजों का प्रेमीजनों से शून्य हो जाना, मूर्छिततानों का मौन होना अर्थात गायकों के साथ-साथ संगीत ध्वनि का समाप्त हो जाना आदि लक्ष्यार्थ की प्रतीति कराते हैं। इसी प्रकार कामायनी' में अनेक ऐसे शब्द मिलते हैं जो कि एक दूसरे के प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुए हैं, जैसे यौवन के विकास के विकास के लिए उषा की लाली, प्रेमी के लिए मधुप, विरह व्यथित कृशगात के लिए पतझड़ की सूनी डाली और आपत्तियों के लिए अंधकार की आँधी आदि। साथ ही कामायनी भाषा में मादकता, रमणीयता और रागात्मकता नामक गुण भी हैं तथा अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना नामक तीन शब्द शक्तियों में से लक्षणा एवं व्यंजना की प्रधानता होते हुए भी कही-कहीं अभिधा का सुन्दर प्रयोग होने से उक्ति में सरलता और सुबोधता के दर्शन होते हैं ; जैसे-

और सोचकर अपने मन में जैसे हम हैं बचे हुए,
क्या आश्चर्य और कोई हो जीवन लीला रचे हुए
अग्निहोत्र अवशिष्ट अन्न कुछ कहीं दूर रख आते थे
होगा इससे तृप्त अपरिचित समझ सहज सुख पाते थे

भाषा के तीन प्रधान गुण की अधिकता सी हैं पर कतिपय स्थानों में ओज की भी सत्ता हैं। अतः कामायनी की भाषा अत्यन्त कोमल एवं सुन्दर ही जान पड़ती हैं। 'उसमें कहीं भी श्रुति कट शब्दों का प्रयोग नहीं हैं। सर्वत्र एक मधुरिमा सी छाई रहती हैं। कहीं तो वह चपल नर्तकी की भाँति थिरकती हुई आगे बढ़ती हैं, तो कहीं बालक की तुतले बोल की मधुरता लिये दृष्टिगोचर होता हैं। इसी प्रकार कामायानी में सहज रीति से अलंकारों का भी प्रयोग हुआ हैं और कवि प्रसाद ने अनुप्रास, यमक, श्लेप, वीप्सा, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, संदेह, विरोधाभास, समासोक्ति, उल्लेख, अर्थान्तरन्यास और दृष्टान्त आदि विविध अलंकारों की समुति योजना के द्वारा कामायनी के काव्य सौन्दर्य को समृद्धिशाली बना दिया यहाँ यह स्मरणीय हैं कि कामायनी में अलंकार केवल बाह्य सौन्दर्य की ही वृद्धि नहीं करते बल्कि भावाभिव्यक्ति में भी सहायक हुए हैं और कवि ने उनके द्वारा अनेक सूक्ष्म एवं भावपूर्ण चित्रों को प्रस्तुत किया हैं। इस प्रकार प्रकार एक ओर तो उन्होंने मूर्त के लिए अमूर्त उपमानों का प्रयोग किया हैं -

नव कोमल अवलंब साथ मॅ वय किशोर उंगली पकड़े

चला आ रहा मौन धैर्य सा अपनी माता को जकड़े

तो दूसरी ओर अमूर्त के लिए मूर्त सादृश्य का चयन किया हैं -

मधुर चाँदनी सी तन्द्रा जब फैली मूच्छित मानस पर

तब अभिन्न प्रेमास्पद उसमें अपना चित्र बना जाता

यद्यपि कामायनी में अप्रतीतत्व, च्युत संस्कृति, ग्राम्यत्व, शब्द वाच्यत्व, व्यर्थ पदत्व, कथितपदत्व, अक्रमत्व और समाप्त पुनरान्त दोष आदि कुछ दोषों के भी दर्शन होते हैं पर समवेत रूप से विचार करने पर हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'कामायनी' की भाषा अपने पूर्ण उत्कर्ष रूप में ही दिख पड़ती हैं। इस प्रकार कामायनी की भाषा अत्यन्त प्रौढ़ और सजग हैं तथा एक महाकाव्य के उपयुक्त जिस प्रकार की भाषा की अपेक्षा हैं, कामायनी की भाषा उसी प्रकार की हैं।

विषयवस्तु के अनुरूप कामायनी में अनेक प्रकार की शैलियों का भी प्रयोग हुआ हैं; और वर्णनात्मक, स्वगत कथन या आत्म आत्मसंल्पानमक नाटकीय या संवादात्मक, भावात्मक, पदात्मक, विचारात्मक, प्रतीकात्मक एवं आलंकारिक आदि शैलियों का शोभन रूप 'कामायनी' में देखा जा सकता हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि ये सभी शैलियाँ पात्रों की मनःस्थितियाँ, चारित्रिक गरिमा और वातावरण की समस्त विशेषताओं से संयुक्त हैं। यहाँ यह भी ध्यान में रखना होगा कि 'कामायनी' में प्रबन्ध शैली और गीत शैली का भी सफल एवं सुन्दर समन्वय भी दिख पड़ता हैं और 'कामायनी' का छन्द विधान भी सराहनीय हैं। इस प्रकार कामायनी में एक ओर तो ताटंक, वीर, पादाकुलक, श्रृंगार, रूपमाला, रोला, सार और सरस आदि परम्परागत छन्दों का सफल प्रयोग हुआ हैं, तो दूसरी ओर कवि प्रसाद ने इड़ा, ताटंक और आनन्द या आँसू आदि स्वनिर्मित छन्दों का भी प्रयोग किया हैं। साथ ही

कामायनीकार ने कुछ शास्त्र सम्मत छन्दों के चरणों को परस्पर मिलाकर नये छन्दों का भी निर्माण किया हैं और इन्हें मिश्रित छन्द कहा जा सकता हैं। उदाहरणार्थ, ईर्ष्या सर्ग में पादाकुलक और पद्धति छन्दों का सम्मिश्रित रूप विद्यमान हैं तथा दर्शन सर्ग में पद्धति छन्दों का सम्मिश्रण हैं। उक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में यहाँ यह कहा जा सकता हैं कि भाषा शैली की दृष्टि से कामायनी निर्विवाद रूप से उत्कृष्ट काव्यकृति हैं और विचारक उसके सम्बन्ध में यही मत व्यक्त करते हैं। 'कामायनी' में कलापक्ष के अन्तर्गत अनेक प्रकार की सफल शैलियों का प्रयोग किया गया हैं, शब्द विधान का सार समकालीन अन्य सभी काव्य कृतियों से कहीं ऊँचा हैं, औदात्य मंडित हैं, प्रतीक पद्धति की एक तार योजना इसमें की गई हैं, हृदयग्राही बिम्बों का अतुलकोष इसमें छिपा पड़ा हैं, भाषा का समंजित रूप में गरिमामय सौन्दर्य उद्घाटित किया गया हैं और मनोविज्ञान एवं दर्शन के सहयोग से एक महान वास्तु शिल्प प्रस्तुत किया गया हैं |

२.५ सारांश

कामायनी महाकाव्य हैं और महाकाव्य में रूपक तत्व विशिष्ट होते हैं वहीं सौंदर्यानुभूति और प्रकृति चित्रण का वर्णन कर पाठकों की रुचि को सर्वांगीण रूप से बढाना कवि का कर्तव्य बन जाता हैं | जयशंकर प्रसाद भाषा के महारथी थे उनके काव्य में भाषा सुसंगठीत, सरल और सशक्त शब्दों के साथ गुँथी गई हैं जो भाषा मुर्तिमान बनाते हैं, इन सभी विशेषताओं को विद्यार्थी आसानी से इस इकाई के अध्ययन से समझ सकेंगे|

२.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) कामायनी में रूपक तत्व का कुशल वर्णन हुआ हैं सिद्ध कीजिए |

२) कामायनी की भाषा शैली पार अपने विचार प्रस्तुत कीजिए |

३) कामायनी की सौंदर्याभूति और प्रकृति चित्रण पर अपने विचार लिखिए |

२.७ लघुत्तरी प्रश्न

१) कामायनी महाकाव्य में बुद्धी का प्रतीक कौन हैं?

उत्तर – इड़ा

२) कामायनी में सांड किसका प्रतीक हैं|

उत्तर - धर्म

३) साहित्य शास्त्र में रूपक के कितने अर्थ स्वीकार किये गये हैं?

उत्तर - तीन अर्थ

४) श्रद्धा हृदय की रागात्मक भावनाओं से युक्त होने के कारण किसका प्रतीक मनी गयी हैं?

उत्तर - हृदय का

५) कामायनी में रूप सौंदर्य को कितने भागो में विभक्त किया गया हैं?

उत्तर - दो-एक मानवीय रूप सौंदर्य, दो-प्राकृतिक रूप सौंदर्य

२.८ संदर्भ पुस्तके

१) कवि प्रसाद – डॉ. आचार्य दुर्गाशंकर मिश्र, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ

२) कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, चतुर्थ संस्करण – 1971

३) कामायनी की काव्य – प्रवृत्ति – डॉ. कामेश्वर सिंह, पुस्तक संस्थान, कानपुर, वर्ष- 1973

४) प्रसाद का काव्य - डॉ. प्रेमशंकर, भारती भण्डार, इलाहाबाद, वर्ष- 1970

५) कामायनी प्रेरणा और परिपाक – डॉ. रमाशंकर तिवारी, ग्रन्थम, कानपुर, प्रथम संस्करण – 1973

६) कामायनी एक विवेचन- डॉ.देशराज सिंह एवं सुरेश अग्रवाल, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संकरण – 2015

७) हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ. शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2021 – 2022

८) आधुनिक हिन्दी कविता में काव्य चिंतन, डॉ. करुणाशंकर पाण्डेय, क्वालिटी बुक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर

९) हमारे प्रिय कवि और लेखक, डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी एवं राकेश, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ

❖❖❖❖

३

'कामायनी' के प्रमुख पात्र

इकाई की रूपरेखा :

३.० उद्देश्य
३.१ प्रस्तावना
३.२ कामायनी के प्रमुख पात्र
    ३.२.१ मनु
    ३.२.२ श्रद्धा
    ३.२.३ इड़ा
    ३.२.४ मानव
३.३ सारांश
३.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न
३.५ लघुत्तरीय प्रश्न
३.६ संदर्भ पुस्तकें

३.० उद्देश्य

इस इकाई का मूल उद्देश्य छायावाद के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद के महाकाव्य के प्रमुख पात्रों के चरित्र से छात्रों को अवगत कराना हैं | इस इकाई के अंतर्गत छात्र कामायनी के प्रमुख पात्रों मनु, श्रद्धा, इडा. और मानव के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे |

३.१ प्रस्तावना

कामायनी के चरित्र चित्रण में प्रसाद जी ने इतिहास,दर्शन और मनोविज्ञान का सहारा लिया हैं | इस महाकाव्य में अपने पात्रों को एक व्यापक धरातल पर रख कर उन्होंने उनमे अपने चिंतन को समाहित कर दिया | किसी भी रचना के पात्र किसी आदर्श तक जाने के लिए एक माध्यम का कार्य करते हैं | यहाँ हम कामायनी के प्रमुख पात्रों मनु, श्रद्धा, इड़ा और मानव के चरित्र का संक्षिप्त अध्ययन करेंगे |

३.२ कामायनी के प्रमुख पात्र

इस इकाई के अंतर्गत छायावाद कवियों में प्रमुख कवी जयशंकर प्रसाद के महाकाव्य कामायनी के प्रमुख पात्रों के चरित्र और उनके मनोविज्ञानिक पक्षों पर प्रकाश डाला गया हैं | इन पात्रों में मनु, श्रद्धा, इडा, और मानव प्रमुख हैं |

३.२.१ मनु

'कामायनी' की समस्त कथा मनु के चारों ओर घूमती दिखाई देती हैं। वे इस महाकाव्य के केन्द्र विन्दु प्रतीत होते हैं। काव्य का आरम्भ और अन्त उन्हीं के द्वारा होता हैं। मनु की चरित्र-सृष्टि में प्रसाद ने यथार्थ को अधिक अपनाया हैं| मनु एक साधारण मानव हैं, जो जीवन के समस्त संघर्षों को झेलता हुआ अन्त में आनन्द तक पहुँच जाता हैं। वह वासना, ईर्ष्या की स्वाभाविक दुर्बलताओं से ग्रसित हैं, किन्तु आगे बढ़ने की उसकी आकांक्षा कभी नहीं मरती। काव्य में नायक के चरित्र-चित्रण की चली आती हुई परम्परा में प्रायः आदर्श और महानता का ही ग्रहण अधिक हुआ हैं। संस्कृत के आचार्यों ने नायक को विशेष महत्त्व दिया हैं। आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्य-दर्पण' में नायक के लिए किसी सुर, कुलीन क्षत्रिय का होना अनिवार्य माना, जिसमें धीरोदात्त के समस्त गुण हों। नायक को अधिकाधिक आदर्श और महानरूप में चित्रित करने वाली इस प्रणाली को 'कामायनी' में नहीं स्वीकार किया गया।

कामायनी' का मनु साहित्य में बढ़ती हुई मानवीय भावना से अनुप्राणित हैं। छायावादी कवियों ने पृथ्वी और मानव के स्वाभाविक रूप को अपने काव्य में स्थान दिया जिसमें अच्छी, बुरी सभी भावनाओं का समावेश हैं। जीवन के सम्पूर्ण सत्य का ग्रहण उसने किया जो बदलते हुए युग के अनुरूप हैं, और जिसमें स्वाभाविक उत्थान-पतन समाविष्ट हैं। **कामायनी में मानवता का प्रतीक मनु आधुनिक संघर्षशील व्यक्ति का प्रतीक हैं। अपनी आन्तरिक भावनाओं से लेकर जीवन की भौतिक समस्याओं तक से वह युद्ध करता हैं।** मानव जीवन के लगभग सभी प्रश्न उसके सामने आते हैं प्रत्येक प्रश्न उसके सम्मुख आता हैं। एक ओर यदि मन में काम, वासना और ईर्ष्या के भाव उठते हैं, तो साथ ही वह जीवन की पहेली को भी सुलझाने में प्रयत्नशील हैं। मानव की सम्पूर्ण जिज्ञासा से वह रहस्यमय संसार को देखता हैं। आन्तरिक दुर्बलताओं को लेकर भी वह ऊपर उठना चाहता हैं। मनोवैज्ञानिक आधार पर चित्रित मनु का मानसिक द्वन्द्व जीवन का शाश्वत सत्य हैं। इस दृष्टि से मनु अपने ऐतिहासिक कलेवर में भी नितान्त आधुनिक और नवीन हैं। एक दृष्टि से मनु को काव्य का नितान्त उच्छृंखल नायक कहा जा सकता हैं, किन्तु प्रसाद ने मानवीयकरण के साथ ही उसका उदात्तीकरण भी कर लिया हैं। संस्कृत के प्रबन्धकाव्यों में वाह्य जगत में देव दानव संघर्ष का चित्रण किया जाता था। देवों की विजय और दानवों की पराजय दिखाकर आदर्श की स्थापना सभी काव्यों में की गयी हैं। संस्कृत का यह वाह्य स्वरूप 'कामायनी' के कवि ने अन्तर्मुखी कर दिया हैं। देव-दानव संघर्ष स्वयम् मनु के अन्तरप्रदेश में चल रहा हैं।

मनु के मन में एक द्वन्द्व चलता रहता हैं और अन्त में श्रद्धा के द्वारा उसका समन्वय ही आनन्द का सृजन करता हैं। मानव का पूर्ण प्रतिरूप होने के कारण उसमें एक सामान्य व्यक्ति की समस्त प्रवृत्तियाँ निहित हैं। 'चिन्ता' से निराश मनु से लेकर आनन्द के अन्तिम उद्देश्य तक पहुँचने वाले मनु का क्रिया व्यापार मानव के अनुरूप हैं। जीवन के प्रथम चरण में प्रलय को देखकर नायक मनु को भारी निराशा होती हैं। वे अतीत की स्मृतियों में उलझते हैं। धीरे-धीरे जीवन की कामना प्रबल होती हैं। नारी का प्रवेश काम, वासना का उदय करता हैं। ईर्ष्या, संघर्ष आदि की भावनाएँ भी स्वाभाविक हैं। अन्त में वह मानव के चरम लक्ष्य आनन्द को पाता हैं। मानव-मन में उठने वाले भावों और विचारों का अंकन मनु की चरित्र सृष्टि द्वारा प्रसाद ने किया हैं। अपने प्रेमी रूप में वह सौन्दर्यवादी हैं। श्रद्धा की

रूपराशि पर वह प्रथम बार ही आकर्षित हो गया था। उसने उसी क्षण अपना हृदय खोलकर रख दिया। निराश व्यक्ति को साधारण स्नेह सम्बल मिलते ही नवजीवन होता हैं। केवल वासना और तृप्ति तक सीमित रह जाने वाला मनु सुख और शान्ति की खोज में भागता हैं। किन्तु वास्तविक शान्ति पलायन में नहीं, संघर्ष में हैं। इड़ा के रूप पर आकृष्ट हो जानेवाला सौन्दर्यवादी मनु अपनी तृप्ति चाहता हैं। पराजय उसे वास्तविकता का बोध कराती हैं। फिर वह श्रद्धा का अनन्य उपासक बन जाता हैं। अपनी दुर्बलता का ज्ञान उसे रहता हैं। यह आत्मबोध और पश्चात्ताप उसे उच्च भाव-भूमि पर ले जाने में सहायक होते हैं। इड़ा से वह कहता हैं :

देश बसाया पर उजड़ा हैं सूना मानस देश यहाँ

नियामक रूप में मनु एक क्षण के लिए अपना उत्तरदायित्व भूल जाते हैं। उनकी उच्छृंखलता और भौतिक प्रवृत्ति के फलस्वरूप संघर्ष होता हैं। पौरुष के मद और अहंकार से वे पराजित होते हैं। आरम्भ से ही उनकी आकांक्षाएँ ऊपर उठने को प्रतीत होती हैं, किन्तु परिस्थितियाँ मार्ग में व्यवधान बनकर आती हैं। कामायनी का मनु स्वर्ग की कामना नहीं करता, वह पृथ्वी पर ही समरसता और आनन्द को प्राप्त करता हैं। देवत्व की अपूर्णता को जान लेने वाला व्यक्ति अब उस भोगविलास की कामना नहीं करता। उसके हृदय में जीवन के प्रति आरम्भ से ही जिज्ञासा की भावना थी।

श्रद्धा से प्रथम मिलन के समय वह अत्यधिक निराश था, क्योंकि उसे अपने प्रश्नों का उत्तर न मिला था। उसकी जड़ता के मूल में प्रहेलिकाएँ थीं। 'जीवन' ही उसके सम्मुख प्रश्न था। श्रद्धा से जीवन का सत्य जानकर मनु कर्म में प्रवृत्त हुए। ईर्ष्या के कारण उन्होंने उसका परित्याग किया। इस अवसर पर भी 'सुख नभ' में विचरने की उनकी कामना बनी हुई थी। इड़ा से भी उन्होंने **'जीवन' का मोल** पूछा था। जीवन की प्रहेलिका को सुलझाने में वे सदा प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। अपने इस प्रयास में उन्हें अनेक कष्ट हुए और अन्त में उन्होंने समरसता का महामन्त्र भावी मानवता को बताया। प्राणों में रहने वाली अतृप्ति मनु को बड़ी दूर तक ले गयी। जीवन के जिस महान सत्य को उन्होंने कठिन साधना के पश्चात् प्राप्त किया, उसे मानवता के कल्याण में नियोजित कर दिया। नायक की महानता इसी में निहित हैं कि अन्त में सम्पूर्ण सारस्वत प्रदेश उनके दर्शनार्थ कैलास की घाटी में पहुँचता हैं, और केवल दर्शनमात्र से ही आनन्दित हो उठता हैं। उनका अन्तिम स्वरूप भारतीय ऋषि तथा धीरोदात्त नायक की भाँति हैं।

मनु की चरित्र-सृष्टि में उनके ऐतिहासिक और पौराणिक स्वरूप का भी ध्यान रखा गया। वेद-पुराण के मनु ऋषि, यज्ञकर्ता, प्रथम मानव के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वे देवता तुल्य माने गये हैं। 'कामायनी' में मनु के ऐतिहासिक स्वरूप की भी रक्षा हुई हैं। किंचित कल्पना के अतिरिक्त कवि ने उनके समस्त रूप को ग्रहण कर लिया। मनु के मन का विश्लेषण तथा उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का निरूपण प्रसाद जी की कल्पना हैं जिससे उनका रूप अधिक मानवीय हो गया। 'कामायनी' के मनु आदर्श की अपेक्षा उदात्त अधिक हैं। उनका नायकत्व मानवीय हैं। उनके अन्तरतम की भावना, कामना और वासना प्रत्येक मानव में उठती हैं। उनका अन्तिम लक्ष्य आनन्द भी अधिकांश का उद्देश्य होता हैं। प्रसाद ने मनु का उदात्तीकरण किया हैं। श्रेय, प्रेय; आदर्श यथार्थ के समन्वय से उनकी चरित्र सृष्टि हुई। कामायनी मनु में क्रिया-शक्ति हैं जो उन्हें गतिमान करती रहती हैं। यह शक्ति कभी-कभी

अनुचित कार्य में लग जाती हैं, किन्तु अन्त में समीकरण उचित दिशा में होता हैं। उनकी इधर-उधर बिखरी हुई शक्तियाँ आनन्द में नियोजित हो जाती हैं। मनु के चरित्र-निर्माण में प्रसाद की दृष्टि बहुमुखी थी।

कामायनी में मनु के रूप का अंकन करने में प्रसाद जी की दृष्टि व्यापक रही हैं। भारतीय परम्परा में प्रकृतिरूपा नारी पुरुष के पीछे भागती हैं। किन्तु 'कामायनी' का मनु एक सच्चे मानव की भाँति श्रद्धा के प्रति अपनी सम्पूर्ण कृतज्ञता प्रकट करता हैं। देवि, मंगलमयि आदि अनेक सम्बोधन उसके लिए प्रयुक्त करता हैं और एक बार उसे पाकर पुनः भयावने अन्धकार में खो नहीं देना चाहता। मनु के चरित्र में प्रसाद अनेक स्वरूपों को सन्निहित कर दिया हैं भावुक, जिज्ञासु, अहेरी, यज्ञकर्ता, प्रणयी, विलासी, ईर्ष्यालु, नियामक, योद्धा आदि अनेक रूपों में कामायनी के मनु आते हैं। सम्पूर्ण मानव का चित्रण उनके द्वारा करना 'कामायनी' का लक्ष्य हैं। मनु की आरम्भिक कामनाओं से ही स्वाभाविकता का आभास मिलने लगता। चारों ओर बिखरी हुई जलराशि देखकर उसका मन चिन्ता और शोक से भर जाता हैं। अभी-अभी वह देवत्व का विनाश देख चुका हैं, उसकी भी याद आ जाती हैं। जीवन के प्रति मोह होते ही किसी साथी की इच्छा जागृत हो जाती हैं

कब तक और अकेले? कह दो
हे मेरे जीवन बोलो?
किसे सुनाऊँ कथा? कहो मत,
अपनी निधि न व्यर्थ खोलो।

मनु की समस्याओं में आधुनिकता हैं। अनेक सामयिक प्रश्नों का समाहार उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया। अपने एकाकी जीवन से लेकर पत्नी, कुटुम्ब, राज्य, सृष्टि तक के रूप मनु के सम्मुख क्रमशः आते हैं। एक नेता की भाँति वे सार्वभौमिकता का संदेश अन्त में समस्त सारस्वत निवासियों को देते हैं। स्वाभाविक दुर्बलताओं के साथ ही प्रसाद ने उनमें पौरुष और शक्ति को सन्निहित कर दिया, जिससे वे आकर्षण का केन्द्र बन जाते हैं। श्रद्धा ने प्रथम परिचय के समय उन्हें **'तरंगों से फेंकी मणि'** कहकर सम्बोधित किया था | वह आजीवन उन्हें निकट रखने का प्रयत्न करती रही। इड़ा अपनी बुद्धिवादी प्रवृत्तियों के होते हुए भी मनु पर स्नेह रखती हैं। आकर्षक व्यक्तित्व के अतिरिक्त मनु की महानता का परिचायक हैं, उनका। यह पश्चात्ताप ही उन्हें सतत उत्कर्ष की ओर ले जाने में सहायक हुआ। 'कामायनी' के पृष्ठ मनु के चरित्र को पग-पग पर खोलते रहते हैं। सर्वत्र उनकी छाया डोलती रहती हैं। मनु के व्यक्तित्व का निर्माण करने में प्रसाद ने एक व्यापक आधार को ग्रहण किया। उनका चित्रांकन अनेक रेखाओं से हुआ हैं। मनु के व्यक्तित्व में समष्टि, सामान्य का निरूपण किया गया। मनु मानव जीवन की सम्पूर्ण इकाई बनकर 'कामायनी' में प्रस्तुत होते हैं। शक्ति-समन्वित होने के कारण ही जब वह अपने मत का प्रतिपादन करने लगते हैं तब उनके लिए सत्य की अवहेलना करना कठिन हो जाता हैं। ईर्ष्या के उदय होने पर वह श्रद्धा से कहते हैं :

देखा क्या तुमने कभी नहीं
स्वर्गीय सुखों पर प्रलय नृत्य?
फिर नाश और चिरनिद्रा हैं
तब इतना क्यों विश्वास सत्य?

मनु की दुर्बलताएँ भी उन्हें निम्न श्रेणी में नहीं पहुँचातीं हैं बल्कि उन्हीं सीढ़ियों पर चढ़ कर वे आगे बढ़ते हैं | वस्तुतः कामायनी के मनु आधुनिक मानव हैं |

३.२.२ श्रद्धा

कामायनी में श्रद्धा की चरित्र-सृष्टि नारी के सर्वोत्कृष्ट स्वरूप में की गयी हैं। ऐतिहासिक एवं पौराणिक दृष्टि से भारतीय ग्रन्थों में भी श्रद्धा अत्यन्त भव्य और कल्याणकारी रूप प्राप्त होता हैं। काम की पुत्री होने के कारण वह कामायनी नाम से अभिहित हैं। उसने मनु को जो अपना परिचय दिया, उसी से ज्ञात होता हैं कि वह गन्धर्व देश की निवासिनी हैं और उसे ललित कलाओं में रुचि हैं। इसी अवसर पर **'हृदय सत्ता के सुन्दर, सत्य'** को खोजने का उसका कुतूहल भी प्रकट हो जाता हैं। कामायनी को प्रसाद जी ने समस्त आन्तरिक गुणों से विभूषित कर दिया। वह उनकी सर्वोत्तम नारी कल्पना हैं। इसका एक उदाहरण वहाँ भी देख सकते हैं जब आत्मसमर्पण के समय श्रद्धा मनु से कहती हैं :

दया, माया, समता लो आज
मधुरिमा लो, अगाध विश्वास
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिये खुला हैं पास।

एक साथ इतने मानवीय गुणों से समन्वित नारी आदि से अन्त तक मनु का पथ प्रदर्शन करती हैं। दया और ममता के कारण ही उसने स्वयं को मनु के समक्ष समर्पित किया था। इस समर्पण में व्यक्तिगत प्रेम की अपेक्षा एक लोक मंगल, सार्वभौमिक कल्याण की भावना थी। सृष्टि से विकास की भावना से प्रेरित होकर कामायनी ने मनु को वरण किया। इसके बाद मानवता के प्रतीक मनु की समस्त जड़ता और निराशा को वह हर लेती हैं। जीवन के जिस जागृत आशावाद और कर्म का सन्देश उसने उन्हें दिया वह गीता के कर्मवाद की भाँति प्रतीत होता हैं। श्रद्धा अपना सर्वस्व समर्पित कर मनु से कहती हैं –

और यह क्या तुम सुनते नहीं
विधाता का मंगल वरदान
शक्तिशाली हो विजयी बनो
विश्व में गूंज रहा जय गान।

सृष्टि और जीवन का रहस्योद्घाटन करते हुए उसने कहा : "केवल तप ही जीवन का सत्य नहीं, वह तो एक करुण, क्षीण, दीन अवसाद मात्र हैं। नूतनता में ही आनन्द हैं। प्रकृति के वैभव से परिपूर्ण समस्त भूखंड भोग के लिए हैं।"

प्रसाद जी द्वारा रचित 'कामायनी' की श्रद्धा एक महान् चेतना तथा शक्तिरूप हैं। सम्पूर्ण कथानक को वही गतिमान करती हैं, तथा समस्त सुख और आनन्द का सृजन उसी के द्वारा हुआ हैं | आरम्भ में वह मनु को कर्म में नियोजित करके काम के अवसर पर उनकी हिंसात्मक प्रवृत्तियों को रोकने का भरसक प्रयत्न करती हैं। मानवता के आदिपुरुष को सदा उच्च आदर्श की ओर ले जाना उसका लक्ष्य हैं। अन्त में अपनी पवित्रता और निष्ठा के कारण वह विजय भी प्राप्त करती हैं। इस सफलता के मूल में निष्काम कर्म तथा त्याग की भावना निहित हैं। केवल अपने सुख और तृप्ति के लिए नहीं, वरन् दया और करुणा से प्रेरित होकर वह कार्य करती हैं। वह संसृति की बेलि को विकसित, पल्लवित और पुष्पित करने

की कामना रखती हैं। उसके प्रेम में व्यापकत्व अधिक हैं। पशु-पक्षी तक को वह किसी प्रकार का कष्ट नहीं देना चाहती। मनु के मन में इसी कारण ईर्ष्या का उदय होता हैं कि कामायनी के प्रेम पर उनका एकाधिपत्य नहीं रहा। श्रद्धा सदा अपने व्यक्तित्व का विकास करती चली जाती हैं। अन्तमें सारस्वत नगर के निवासी उसके अपने हो जाते हैं। इड़ा से किसी प्रकार की ईर्ष्या उसे नहीं होती। यही नहीं, वह स्वयम् अपने पुत्र मानव को उसके संरक्षण में छोड़ जाती हैं।

श्रद्धा के अभाव में मनु का जीवन केवल शून्य रह जाता हैं। कर्म-मार्ग में मानवता के विकास के लिए नियोजित कर, किलात-आकुलि से उन्हें बचाने का प्रयत्न करती हैं। ईर्ष्यावश जब मनु उसे छोड़कर चले जाते हैं, तब वह निराश नहीं होती बल्कि एक बार उन्हें पुनः खोजने का प्रयास करती हैं। सारस्वत प्रदेश में मुमूर्ष मनु को पाकर उसे अत्यधिक आह्लाद होता हैं। मनु जब पुनः अपने मानसिक झंझावात में उसे छोड़कर चल देते हैं, तब भी वह स्वयं पर विश्वास नहीं खो देती। तितली की भाँति उसे अपने प्रेम में आस्था हैं। वह इड़ा से कहती हैं:

मैं अपने मनु को खोज चली
सरिता मरु नग या कुंज गली
वह भोला इतना नहीं छली
मिल जायेगा, हूँ प्रेम पली।

श्रद्धा की दृष्टि अत्यन्त व्यापक हैं। वह 'सर्वमंगला' हैं। मनु के व्यक्तिगत प्रेम में पागल हो जाने पर उसका प्रेम साधारण रोमान्टिक कोटि का हो जाता, किन्तु उसका स्नेह आदर्श रूप में अंकित हैं। मिलन के क्षणों में केवल भोगविलास की कामना नहीं रहती और न ही वियोग की कातरता में पराजय मानने को तैयार होती हैं। उसका चरित्र सर्वत्र संतुलित हैं, जो उसे दुःख में भी क्रन्दन से नहीं भर देता। व्यावहारिक जगत में वह एक कुशल गृहिणी के रूप में चित्रित हैं। आने वाले भावी मानव के लिए वह बेतसी लता का झूला डाल देती हैं। एक सुन्दर कुटीर का उसने निर्माण किया और तकली कातकर ऊनी पट्टियाँ भी बनायीं। गृहलक्ष्मी' के इस गृहविधान पर स्वयम् मनु आश्चर्यचकित रह जाते हैं। भारतीय नारी जीवन की पूर्णता मातृत्व में मानी गई हैं जब कि वह गृहलक्ष्मी पद को सार्थक करती हैं। प्रसाद 'कामायनी' की श्रद्धा को अन्त में इसी उदात्त स्वरूप से समन्वित कर देते हैं। भावी मानवता का विकास करने वाला मानव उसी की स्नेह-छाया में विकसित होता हैं। उसका मातृत्व ही उसकी पूर्णता हैं। मनु स्वयं कहते हैं :

तुम देवि! आह कितनीउदार
यह मातृ मूर्तिहैं निर्विकार

अपनी वात्सल्य भावना को श्रद्धा पशु-पक्षी तक प्रसारित कर देती हैं। एक क्षण के लिए भी उसकी मनोवृत्ति संकुचित नहीं होती। इड़ा, मनु सभी उसके कष्ट का कारण होकर भी स्नेह की वस्तु बने रहते हैं। वह इड़ा के वास्तविक मूल्य को जानकर ही उससे राष्ट्रनीति का संचालन करने के लिए कहती हैं। राजनीति के क्षेत्र में वह शासक बनकर किसी को भी कष्ट न देने के लिए कह जाती हैं। सम्पूर्ण मानवता के प्रति उसकी ममतामयी, समान दृष्टि बनी रहती हैं। साधारण कुटुम्ब से लेकर राज्य और समग्र सृष्टि तक उसका प्रसार देखा जा सकता हैं। इच्छा, ज्ञान और क्रिया की रूपरेखा समझाकर अन्त में उनका समन्वयकर

कामायनी अपने जीवन दर्शन के सवोत्कृष्ट स्वरूप को प्रकट कर देती हैं। जीवन के चरम उद्देश्य आनन्द का सृजन वही करती हैं।

आन्तरिक गुणों से विभूषित होने के साथ ही कामायनी अपने शारीरिक सौन्दर्य में भी अद्वितीय हैं। उसकी रूपराशि मन को इन्द्रजाल की भाँति प्रतीत हुई। उसके स्वरों में भ्रमरी का मधुर गुंजन हैं। वह नित्य नवयौवना हैं। । प्रसाद जी ने कामायनी में सौन्दर्य को साकार कर दिया हैं। उसकी इस छवि के प्रथम दर्शन में ही मनु उसके भक्त बन गए। वासना के अवसर पर इसी 'छविभार' से दबकर वह बरबस समर्पण कर देता हैं। विश्वरानी', सुन्दरी नारी, जगत की मान, कामायनी उसे सुकुमारता को रम्य मूर्ति प्रतीत होने लगती हैं। श्रद्धा का रूप-यौवन लज्जा के अवसर पर समस्त मृदुता और सूक्ष्मता को लेकर प्रस्तुत होता हैं। भारतीय सौन्दर्यांकन में लज्जा का विशेष महत्त्व हैं। लज्जा नारी के सौन्दर्य का आभूषण हैं। श्रद्धा के लज्जागत सौन्दर्यांकन में प्रसाद जी ने कल्पना का सहारा लिया हैं | प्रथम परिचय के समय उसके अधरों पर हास की एक क्षीण रेखा आकर रह जाती हैं। वासना में पलकें गिर जाती हैं; नासिका की नोक झुक जाती हैं। मधुर क्रीड़ा से उसका मन भर जाता हैं। लज्जा से कर्ण, कपोल भी ललित हो उठते हैं। इस अवसर पर स्वयं अपनी मनोदशा का चित्रण करती हुई कामायनी कहती हैं, कि 'मेरा अंग-प्रत्यंग रोमांचित हो उठता हैं। मेरा मन अनायास ढीला हो जाता हैं। मेरी आँखों में स्नेह की बूंदें छलक आती हैं। मैं बरबस किसी के बाहुपाशों में उलझ जाती हूँ।' लज्जा सौन्दर्य की रक्षा करती हैं। उसके चरित्र-चित्रण में प्रसाद जी का दृष्टिकोण अधिक उदात्त रहा हैं। लज्जावती नारी की सुन्दरता लेकर भी वह केवल नायिका बनकर नहीं रह गयी। कामायनी के शारीरिक सौन्दर्य का चित्रण करते हुए प्रसाद ने उदात्त उपमाओं का प्रयोग किया, जिससे उसका आन्तरिक वैभव भी प्रकट हो जाता हैं। उसका रूप कल्याणकारी हैं:

नित्य यौवन छवि से ही दीप्त
विश्व की करूण कामना मूर्ति
स्पर्श के आकर्षणसे पूर्ण
प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति

प्रसाद की कामायनी जीवन की सम्पूर्ण शोभा से समन्वित हैं। उसके पास अपार 'सौन्दर्य जलधि' हैं। इसमें से केवल अपना गरल पात्र भरने के कारण ही मनु को अनेक कष्ट हुए। आन्तरिक और वाह्य दोनों दृष्टि से श्रद्धा अत्यन्त सुन्दर हैं। उसके दया, क्षमा, शील आदि गुण उसे काव्य के सर्वोत्कृष्ट चरित्र रूप में प्रस्तुत करते हैं। मनु अन्तिम समय में श्रद्धा की सहायता से उच्च भाव भूमि पर पहुँच जाते हैं। वह समस्त कथानक की व्याख्या-सी करती चलती हैं।

कामायनी की चरित्र-सृष्टि में प्रसाद जी ने समरसता और आनन्द की रूपरेखा का ध्यान रखा हैं। वास्तव में श्रद्धा समरसता और आनन्द का ही उदात्त स्वरूप हैं। जीवन में सदा वह समन्वय और सन्तुलन दृष्टि को लेकर आगे बढ़ती हैं। एक ओर यदि वह मनु को कर्म का संदेश देती हैं, तो साथ ही हिंसात्मक कर्मों के लिए रोकती भी हैं। कर्म के विषय में उसकी धारणा नितान्त व्यापक हैं। व्यक्तिगत सुख के लिए अन्य को कष्ट देना उचित नहीं। वह 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' का सिद्धान्त मानती हैं :

औरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सब को सुखी बनाओ

जिस त्याग और दया का संदेश वह सभी को देती हैं, उसी का पालन भी जीवन में उसने किया। आजीवन वह त्याग करती रही। वह बलिदान से ही दूसरों का हित करती हैं। सुख, दुख; आशा, निराशा; जय, पराजय में सर्वत्र उसकी सन्तुलित दृष्टि रहती हैं। समरसता उसका मूल मन्त्र हैं। आनन्दवाद की अधिष्ठात्री रूप में वह वेदों की 'श्रद्धानाम ऋषिका' के समीप आ जाती हैं। मानव के पूरक रूप में वह आधुनिक नारी की भाँति प्रतीत होती हैं। प्रसाद ने कामायनी का चरित्र-चित्रण अत्यन्त उदात्त और आदर्श स्वरूप में प्रस्तुत किया। श्रद्धा 'पूर्ण आत्मविश्वासमयी' हैं। निर्वेद के अवसर पर मनु कृतज्ञता से भर जाते हैं। वे श्रद्धा से कहते हैं :

हृदय बन रहा था सीपी सा
तुम स्वाती की बूंद बनी
मानस शतदल झूम उठा जब
तुम उसमें मकरन्द बनी।

जीवन के सूखे पतझर में श्रद्धा ने हरियाली भर दी थी। श्रद्धा के संगीत में जग-मंगल का स्वर हैं। वह आशा के आलोक किरण की भाँति हैं। मनु ने उसी से हँस-हँस कर विश्व का खेल खेलना सीखा। प्रसाद ने मानवता के प्रतीक के समस्त पौरुष को कामायनी के चरणों पर विनत कर दिया हैं -

कितना हैं उपकार तुम्हारा
आश्रित मेरा प्रणय हुआ
कितना आभारी हूँ इतना
संवेदनमय हृदय हुआ

अपार मधु से भरी श्रद्धा के सम्मुख मनु झुक जाते हैं। काव्य का नायक नायिका के आश्रय में पलता हैं। जब कामायनी मनु को दूसरी बार खोजने के लिए चलती हैं तब भी उसके हृदय में अमर विश्वास हैं। इस बार श्रद्धा को पाकर मनु उसे 'निर्विकार', 'मातृमूर्ति' और 'सर्वमंगले' से सम्बोधित करते हैं। मनु की भाँति इड़ा भी उसके महत्त्व को स्वीकार कर लेती हैं। वह क्षमायाचना करने लगती हैं। काव्य में श्रद्धा का व्यक्तित्व सभी के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ हैं। कामायनी की श्रद्धा 'कल्याण-भूमि', 'अमृतधाम' हैं।

अपने उदात्त रूप के आधार पर श्रद्धा 'कामायनी' की प्रमुख नायिका रूप में आयी हैं, जो नायक को भी अपनी महानता से दबा देती हैं। उसके व्यक्तित्व के सम्मुख नायक मनु कुछ धूमिल पड़ जाते हैं। उनके जीवन की समस्त सुख-शान्ति का मूलाधार ही नायिका कामायनी बन गयी हैं। कथानक और नायक सभी पर उसके महान् व्यक्तित्व की छाया हैं। हिन्दी की साहित्यिक परम्परा में कामायनी का यह उदात्त, महान् चित्रांकन एक नवीन प्रयोग हैं। नायक की सहचरी बनकर आने वाली नायिका से श्रद्धा का स्वरूप भिन्न हैं। वह नायक के उदात्त रूप को स्वयं पा गयी हैं। प्रसाद जी ने श्रद्धा की चरित्र-सृष्टि में भारतीय मातृत्व कल्पना तथा बौद्ध दर्शन की करुणामयी नारी से भी प्रेरणा ग्रहण की। उसे अत्यधिक

सम्मान और आदर कवि ने दिया और काव्य का नामकरण भी उसी के नाम पर किया। हृदय की समस्त उदार वृत्तियाँ उसमें संग्रहीत हैं। व्यक्ति-समाज, अहं-इदं, जड़-चेतन का वह समन्वय करती चलती हैं। स्वयम् काम गोत्रजा होने के कारण काम का वास्तविक स्वरूप भी वही प्रस्तुत कर सकती हैं। प्रसाद के सम्पूर्ण साहित्य में श्रद्धा सर्वोत्कृष्ट रूप में चित्रित हुई हैं।

३.२.३ इड़ा

कामायनी में 'इड़ा' का चरित्रांकन बुद्धिवादिनी के रूप में हुआ हैं। आरम्भ में इड़ा का जो चित्र 'कामायनी' में प्रस्तुत किया गया, उससे उसके बुद्धिवादी स्वरूप का आभास मिलता हैं। तर्कजाल की भाँति बिखरी अलके, शशिखंड-सा स्पष्ट भाल प्रखर बुद्धि के परिचायक हैं। प्रथम परिचय के समय ही वह मनु से कह देती हैं कि बुद्धि की बात न मानकर मनुष्य और किसकी शरण जायेगा। सम्पूर्ण ऐश्वर्य से भरी प्रकृति के रहस्यों को खोलकर उसका उपभोग करना ही श्रेयस्कर हैं। विज्ञान से जड़ता में चेतनता भरी जा सकती हैं। उसकी बुद्धिजीवी प्रवृत्तियाँ 'चलने की झोंक' में रहती हैं, उन पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं। वह सुन्दर आलोक किरण की भाँति जिधर भी देखती हैं, तम से बन्द पथ खुल जाते हैं। मनु के सम्पूर्ण नियमन के पीछे उसकी बुद्धि कार्य करती हैं। सारस्वत प्रदेश की भौतिक समृद्धि उसके मस्तिष्क की उपज हैं। चारों ओर ज्ञान-विज्ञान का विकास हो रहा हैं। धातु गलाकर नये आभूषण और अस्त्र बनाये जाते हैं। नवीन साधनों से नगर सम्पन्न होता जाता हैं। व्यवसाय की वृद्धि हो रही हैं। सारस्वत प्रदेश वैज्ञानिक सभ्यता का प्रतीक बन गया हैं। वह स्वयं स्वीकार करती हैं :

प्रकृति संग संघर्ष सिखाया तुमको मैंने

वास्तव में अतृप्त और विलासी मनु अपने प्रजापति रूप में इड़ा के अनुगामी मात्र हैं। समस्त संचालन वह स्वयं करती हैं। इस भौतिकता की' अतिशयता, विज्ञान के बाहुल्य से ही संघर्ष होता हैं। इड़ा का बुद्धिवाद स्वयम् अपनी अपूर्णता का परिणाम देख लेता हैं। इसके पूर्व परिचय के समय उसने मनु के सामने स्वीकार किया था कि 'भौतिक हलचल' से ही मेरा प्रदेश चंचल हो उठा था। वह मनु को राष्ट्रनीति समझाती हैं। उसकी बुद्धि परिस्थिति के अनुकूल कार्य करना जानती हैं। प्रजा भी 'मेरी रानी' कह कर चीत्कार मचाती हैं। वह उस पर किये गये अत्याचार को कदापि सहन नहीं कर सकती। बुद्धिवाद से इड़ा प्रत्येक कार्य सम्पन्न नहीं कर पाती। वह भौतिक सुख से तो सारस्वत प्रदेश को भर देती हैं, किन्तु विद्रोह और संघर्ष को रोक देना उसकी सामर्थ्य के बाहर हैं। विज्ञान एक सुन्दर सेवक हैं, किन्तु एक अनाचारी, निरंकुश स्वामी ! उसकी बुद्धिवाद की अपूर्णता पर मनु कह उठते हैं :

देश बसाया पर उजड़ा हैं, सूना मानस देश यहाँ

इड़ा सम्पूर्ण सारस्वत प्रदेश की रानी होकर भी मनु के हृदय पर शासन न कर सकी। वह अपने प्रेम से उन पर विजय न प्राप्त कर पायी, केवल अपने नगर का संचालक बना सकी। हृदय की भूख और प्यास को शान्त कर देने की शक्ति उसमें नहीं। उसमें बुद्धि पक्ष का प्राबल्य हैं। वह आसव ढालती चली जाती हैं, पर प्यास नहीं बुझती। मनु के जीवन की अतृप्ति अन्त में प्रजा से संघर्ष करती हैं। इड़ा अपने अभाव को नम्रतापूर्वक श्रद्धा के सम्मुख स्वीकार कर लेती हैं। उसे अपनी अपूर्णता, अज्ञानता का बोध हो जाता हैं। संघर्ष के पश्चात्

वह ग्लानि तथा पश्चात्ताप से भर जाती हैं। उसे अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो जाता हैं। वह अपनी दुर्बलताएँ मान लेती हैं। अपने अनुशासन और भय की उपासना पर उसे स्वयं क्षोभ होता हैं। इड़ा अपनी एकांगी बौद्धिक प्रवृत्तियों के होते हुए भी मानवीय गुणों से सम्पन्न हैं। निराश और उद्विग्न मनु को उसने आश्रय दिया। जीवन की अतृप्ति लेकर भटकने वाले प्राणी को नगर का स्वामी बना दिया। अन्तिम समय तक वह उन्हें समझाती रही। प्रजापति के समस्त कर्त्तव्य उन्हें बताती हैं। मनु के प्रति वह सहृदय रहती हैं -

आह न समझोगे क्या मेरी अच्छी बातें
तुम उत्तेजित होकर अपना प्राप्य न पाते।

इड़ा स्वयम् को 'शुभाकांक्षिणी' कहकर मनु को समझाने लगती हैं। वह विश्वास करने की प्रार्थना करती हैं। भीषण रण के समय वह जन-संहार रोक देने के लिए अनुनय-विनय करती हैं। बुद्धिजीविनी होते हुए भी वह किसी रौद्ररूप में 'कामायनी' में नहीं प्रस्तुत की गयी। संघर्ष के समाप्त होने पर निर्वेद के कारण इड़ा की मानसिक स्थिति सजल हो उठती हैं। उसे एक-एक कर सभी बातें याद आती जाती हैं कि कैसे उस दिन एक दुखी परदेशी आया था। वह श्रद्धा, मानव को देखकर द्रवीभूत हो उठती हैं। स्नेह और ममत्व से वह श्रद्धा को रोककर उसका दुःख पूछने लगती हैं। उसे आशा, साहस देती हैं कि जीवन की लम्बी यात्रा में खोये भी मिल जाते हैं। जीवन में कभी-न-कभी मिलन अवश्य होता हैं, और दुःख की रातें भी कट जाती हैं। श्रद्धा, मनु के मिलन-अवसर पर वह केवल संकोच और ग्लानि से गड़ जाती हैं। मनु के पुनःभाग जाने पर तो वह मलिन छबि की रेखा-सी लगती हैं, जैसे शशि को राहु ने ग्रस्त कर लिया हो। अत्यधिक विषाद में भर कर वह अपनी पराजय श्रद्धा के सम्मुख स्वीकार करती हैं। जनपदकल्याणी और सारस्वत प्रदेश की रानी होकर भी वह अपूर्ण हैं। स्वयम् को अवनति का कारण बताते हुए वह कहती हैं:

मेरे सुविभाजन हुए विषम
टूटते, नित्य बन रहे नियम
नाना केन्द्रों में जलधर सम
चिर हट, बरसे ये उपलोपम।

वह बारम्बार क्षमा याचना करती हैं, क्योंकि उसने सुहाग छीनने की भूल की। वह अपनी अकिंचनता लेकर नतमस्तक हो जाती हैं।

इड़ा अपनी बौद्धिकता में भी 'कामायनी' का उच्छृंखल पात्र नहीं हैं। सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था में वह निपुण हैं। राजनीतिक नियामक के रूप में वह प्रजापति मनु से अधिक सफल हुई। सम्पूर्ण सारस्वत प्रदेश की जनता उसे 'रानी' कहकर पुकारती हैं, उस पर स्नेह करती हैं और उस पर किंचित अत्याचार देखकर विद्रोह कर उठती हैं। भौतिक उत्कर्ष के साथ ही वह मनु से 'राष्ट्र की काया में प्राण सदृश' रमने के लिए कहती हैं, ताकि समस्त प्रजा स्नेह छाया में विश्राम कर सके। वह यह भी बता देती हैं कि नियामक यदि स्वयम् नियम न मानेगा तो विनाश हो जायगा। विवादी स्वरों से समस्त सुख-शान्ति विलीन हो जाती हैं।

राजनीति के क्षेत्र में इड़ा की सफलता को देखकर ही श्रद्धा अपने मानव को उसकी छाया में छोड़ जाती हैं। 'तर्कमयों के पास राष्ट्र का भावी नियामक राज्यनीति की शिक्षा प्राप्त करता हैं ! वास्तव में श्रद्धा इड़ा का वास्तविक मूल्यांकन करती हैं। उसे 'तर्कमयी' के 'शुचि दुलार'

पर विश्वास हैं, जो उसके पुत्र का समस्त व्यथा-भार हर लेगा। अन्तिम रूप में इड़ा सारस्वत प्रदेश के निवासियों का नेतृत्व करती दिखायी देती हैं। वह कहती हैं कि 'जगती की ज्वाला से विकल एक मनस्वी किसी दिन आया। उसकी अर्धांगिनी उसे खोजती हुई आयी और उसी की करुणा ने जगती के ताप को शान्त कर दिया। अब वे दोनों मनु-श्रद्धा संसृति की सेवा करते हैं। वहाँ मन की प्यास बुझ जाती हैं। इस प्रकार अपने अन्तिम स्वरूप में इड़ा की बुद्धि में श्रद्धा का भी समावेश हो जाता हैं। वह जीवन की सुख और शान्ति के लिए मनु, श्रद्धा के पथ का अनुसरण करती हैं। वह व्यर्थ रिक्त जीवन-घट को पीयूष-सलिल से भर लेना चाहती हैं। श्रद्धा, मनु के निकट पहुँचकर वह स्वयम् को धन्य समझती हैं। उन दोनों को देखकर मन-ही-मन अपने नेत्रों को, सौभाग्य को सराहती हैं। इस प्रकार इड़ा का अन्तिम स्वरूप विनम्र हो गया हैं। वास्तव में बुद्धि का अवलम्ब ग्रहण करती हुए भी वह अमानवीय, असहिष्णु तथा निर्मम नहीं हैं। बुद्धि रूप में वह एक शक्ति हैं, जिसका उचित प्रयोग मनु न कर सके। नारी के रूप में वह करुण, विनम्र तथा क्षमामयी हैं।

३.२.४ मानव

'कामायनी' का अन्तिम चरित्र मानव हैं। उसके चारित्रिक विकास का पूर्ण अवसर काव्य में नहीं मिला। केवल भावी मानवता के प्रतिनिधि रूप में वह आया हैं। मनु मानवता के जन्मदाता हैं और मानव उत्तराधिकारी रूप में संसार का नियमन, संचालन करेंगे। आरम्भ में वह एक चंचल शिशु के रूप में प्रस्तुत होता हैं। वह माँ कहकर श्रद्धा से लिपट जाता हैं। श्रद्धा उसे 'पिता का प्रतिनिधि' कहकर पुकारती हैं। वह चंचल बनचर मृग की भाँति चौकड़ी भरता फिरता हैं। सरल बाल्य स्वभाव के अनुसार कहता हैं कि माँ मैं रूठूं तुम मनाओ | पिता को पाकर वह अपनी बुद्धि के अनुसार उन्हें जल पिलाने के लिए कहता हैं, क्योंकि वे प्यासे होंगे। मनु उसे अपने जीवन का 'उच्च अंश', 'कल्याणकला' मानते हैं। बढ़ता हुआ बालक प्रतिभा सम्पन्न प्रतीत होता हैं। सन्ध्या के समय वह माँ से कहता हैं कि इस निर्जन में क्या सौन्दर्य हैं ? साँझ हो गयी, अब घर चला' श्रद्धा की उदासी उसे अच्छी नहीं लगती। वह कहता हैं--माँ, मैं तेरे पास हूँ, फिर भी तू दुखी क्यों हैं ? अपनी माँ की वेदना से उसे दुख होता हैं ; भोला बालक अपनी जिज्ञासा की शान्ति चाहता हैं। माँ के विदा लेने पर वह आदर्श पुत्र की भाँति कहता हैं:

तेरी आज्ञा का कर पालन
वह स्नेह सदा करता लालन
मैं मरूं जिऊँ पर छुटे न प्रण
वरदान बने मेरा जीवन।

मानव के चरित्र-निरूपण के दो-चार स्थल ही उसके व्यक्तित्व का परिचय दे देते हैं। बालक की चपलता, सारल्य के साथ ही उसमें आज्ञाकारिता और ममत्व की भावना हैं। वह मर-कर भी अपनी माँ की आज्ञा का पालन करने की बातें करता हैं। 'आनन्द' तक पहुँचते-पहुँचते मानव यौवन को प्राप्त कर लेता हैं। इस अवसर पर उसका पौरुष मनु को भाँति प्रतीत होता हैं। उसके मुख पर 'अपरिमिततेज' था। कवि ने उसके भावी उत्कर्ष की ओर संकेत कर दिया हैं |

इस प्रकार यह कहना उचित होगा कि 'कामायनी' में थोड़े-से पात्रों के द्वारा कथावस्तु का विस्तार कर लिया गया हैं। समस्त पात्र अपनी व्यक्तिगत भावनाओं का परित्याग कर अन्त

में एक केन्द्र-बिन्दु पर पहुँचते हैं। यह समीकरण, सामंजस्य ही रस अथवा आनन्द का सृजन करता हैं। कोई चरित्र अन्त में प्रधानता पाकर सम्पूर्ण कथानक का समाहार नहीं करता। सभी चरित्र एक स्थल पर एकत्र होकर आनन्द लाभ करते हैं। बुद्धिजीविनी इड़ा भी अपने बुद्धिवाद का परित्याग कर देती हैं। श्रद्धा इच्छा, ज्ञान, कर्म के समन्वय के पश्चात् मनु को सूत्रधार बना देती हैं। स्वयं मनु भी अपनी व्यक्तिगत सुख-दुख की भावनाओं का परित्याग कर देते हैं। उनका मानसिक झंझावात समाप्त हो जाता हैं। समस्त सारस्वत प्रदेश के नगर निवासी उन्हें 'आत्मवत्' प्रतीत होने लगते हैं। इस प्रकार 'कामायनी' का चरित्र-चित्रण काव्य में रस और जीवन में आनन्द तक पहुँचने के लिए कवि ने किया हैं। अन्तिम स्वरूप में सभी चरित्रों का कुछ-न-कुछ सहयोग इसमें अवश्य रहता हैं। यदि श्रद्धा का स्थान सर्वोपरि हैं, तो इड़ा की भी पूर्णतया अवहेलना नहीं की जा सकती। वह भावी नियामक को राष्ट्रनीति की शिक्षा देकर अन्त में सारस्वतनगर निवासियों की पथ-प्रदर्शिका बन मानसरोवर पहुँचती हैं। वह सामूहिक आनन्द का कारण बनती हैं। उत्थान-पतन से भरा मनु अन्त में एक आदर्श रूप में प्रस्तुत होता हैं। वह सार्वभौमिकता, विश्व बन्धुत्व का सन्देश देता हैं। इस प्रकार 'कामायनी' के सभी चरित्र अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण हैं, तथा काव्य की रस-निष्पत्ति, जीवन के आनन्द में सहायक हैं। 'कामायनी के चरित्र चित्रण की प्रणाली कवि की अपनी हैं। 'कामायनी' में देव-दानव संघर्ष अन्तर्मुखी हो गया हैं। वह मनु के मन में निरन्तर चलता रहता हैं। उसमें समन्वय स्थापित हो जाते ही आनन्द का सृजन होता हैं। वाह्य रूप में जब मनु और सारस्वत प्रदेश की प्रजा में संघर्ष होता हैं तब अवश्य ही वह प्राचीन देवासुर संग्राम का एक आभास दे देता हैं, क्योंकि उसका नेतृत्व इतिहास-प्रसिद्ध किलात और आकुलि असुर कर रहे थे। प्रसाद ने 'कामायनी' के चरित्रांकन में एक समन्वय दृष्टि रखी हैं। 'कामायनी' काचरित्र-चित्रण नवीन परम्परा पर निर्मित हैं और ऐतिहासिकता का पालन करते हुए भी वह प्राणवान और आधुनिक हैं|

३.३ सारांश

कामायनी के सभी पात्र अपने स्थान पर महत्वपूर्ण हैं| और प्रसाद सभी पात्रों को समन्वित करने में सफल हुए हैं| तो ऐतिहासिकता को दर्शाने के साथ आधुनिकता का बोध कराते हैं|

३.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) कामायनी के प्रमुख पात्रों का चरित्र स्पष्ट कीजिए|

२) कामायनी के पात्र ऐतिहासिक होणे के साथ आधुनिकता का बोध कराते हैं विवरण कीजिए|

३) कामायनी के प्रमुख पात्र मनु महाकाव्य के नायक हैं विवरण द्वारा स्पष्ट कीजिए|

३.५ लघुत्तरी प्रश्न

१) कामायनी महाकाव्य के नायक कौन हैं?

उत्तर - मनु

२) श्रद्धा किस देश की निवासी हैं?

उत्तर - गन्धर्व देश की

३) कामायनी की सम्पूर्ण कथा किस पात्र द्वारा गतिमान होती हैं?

उत्तर - श्रद्धा

४) मनु किस भाव के कारण श्रद्धा को छोडकर चले जाते हैं?

उत्तर - ईर्ष्या भाव के कारण

५) कामायनी में इड़ा का चित्रांकन किस रूप में हुआ हैं?

उत्तर - बुद्धिवाहिनी

६) कामायनी में मानव कौन हैं?

उत्तर - मनु और श्रद्धा का पुत्र

३.६ संदर्भ पुस्तके

१) कवि प्रसाद – डॉ. आचार्य दुर्गाशंकर मिश्र, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ

२) कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, चतुर्थ संस्करण – 1971

३) कामायनी की काव्य – प्रवृत्ति – डॉ. कामेश्वर सिंह, पुस्तक संस्थान, कानपुर, वर्ष- 1973

४) प्रसाद का काव्य - डॉ. प्रेमशंकर, भारती भण्डार, इलाहाबाद, वर्ष- 1970

५) कामायनी प्रेरणा और परिपाक – डॉ. रमाशंकर तिवारी, ग्रन्थम, कानपुर, प्रथम संस्करण – 1973

६) कामायनी एक विवेचन- डॉ.देशराज सिंह एवं सुरेश अग्रवाल, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संकरण – 2015

७) हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ. शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2021 – 2022

८) आधुनिक हिन्दी कविता में काव्य चिंतन, डॉ. करुणाशंकर पाण्डेय, क्वालिटी बुक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर

९) हमारे प्रिय कवि और लेखक, डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी एवं राकेश, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ

❖❖❖❖

४

कामायनी का महाकाव्यत्व

इकाई की रूपरेखा :

४.० उद्देश्य
४.१ प्रस्तावना
४.२ कामायनी का महाकाव्यत्व
४.३ कामायनी का संदेश
४.४ दार्शनिक दृष्टिकोन
४.५ सारांश
४.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न
४.७ लघुत्तरी प्रश्न
४.८ संदर्भ पुस्तके

४.० उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत छायावाद के अमिट हस्ताक्षर जयशंकर प्रसाद जी की प्रसिद्ध रचना 'कामायनी' के महाकाव्यत्त्व, कामायनी के सन्देश और उसके दार्शनिक पक्षों पर विचार-विमर्श किया गया हैं | इस इकाई के अंतर्गत छात्र कामायनी के महाकाव्यत्त्व, उसके उद्देश्य और उसकी दार्शनिकता से परिचित हो सकेंगे |

४.१ प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी साहित्य में जयशंकर प्रसाद का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं | कामायनी उनका महाकाव्य हैं | महाकाव्य के अपने कुछ लक्षण होते हैं जिनके आधार पर किसी भी रचना को महाकाव्य का श्रेणी स्थान मिलता हैं | यहाँ कामायनी के उन्हीं लक्षणों का विश्लेषण किया गया हैं |

४.२ कामायनी का महाकाव्यत्व

जयशंकर प्रसाद द्वारा रचित 'कामायनी' छायावाद का प्रथम महाकाव्य हैं और वह महाकाव्यों की परम्परा में एक नूतन अध्याय भी जोड़ती हैं | लेकिन, पूर्व प्रचलित महाकाव्यों से अनेक बातों में भिन्न होने के कारण आचार्यों द्वारा निर्मित महाकाव्य की कसौटी कामायनी की परख करने में असमर्थ रही हैं। सच तो यह हैं कि कामायनी में प्रसादजी ने नवीन पद्धति का अनुसरण किया हैं और उन्होंने भारतीय आदर्शों की सीमा में रहते हुए भी पर्याप्त स्वच्छंदता से काम किया हैं क्योंकि वह सदैव ही परिवर्तन के पक्षपाती रहे हैं। इस प्रकार प्रसाद जी ने कामायनी में भारतीय आचार्यों द्वारा गिनाये गये लक्षणों एवं नियमों की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जितना विषय के अनुरूप अपनी प्रतिभा और विचारधारा को दिया हैं।

इस सम्बन्ध में आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी जी का मानना हैं कि - कामायनी में व्यक्त वस्तुओं का वैविध्य और उससे उत्पन्न औदात्य नहीं हैं, इसलिए कुछ लोग 'कामायनी' को महाकाव्य नहीं मानते । कामायनी में रामायण जैसा परम्परागत देव-दानव संघर्ष भी नहीं दिखाया गया । इससे वीर रस संभूत जो गरिमा रामायण में हैं, कामायनी में नहीं हैं । कामायनी में युद्ध और संघर्ष का वर्णन ही कदाचित सबसे अधिक प्रभावहीन हैं । प्रजा के साथ मनु का युद्ध वास्तविक युद्ध की अपेक्षा छायात्मक अथवा प्रतीकात्मक हैं परन्तु इस बाह्य संघर्ष के स्थान पर मन के आन्तरिक संघर्ष का, बुद्धि और श्रद्धा के बीच मन की भटकी स्थिति का मार्मिक और गम्भीर चित्रण कामायनी में अवश्य हैं।' सामान्यतया संस्कृत के प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्य के आवश्यक लक्षण निम्नलिखित माने हैं-

(१) महाकाव्य का नायक देवता या उत्तम कुल का वह क्षत्रिय हो सकता हैं, जिसमें धीरोदात्त नायक के गुण हों। आवश्यकतानुसार एक देश के कई राजा भी इन गुणों से समान रूप में युक्त होने पर नायक हो सकते हैं।

(२) महाकाव्य का सर्गबद्ध होना आवश्यक हैं, किन्तु ये सर्ग न तो अत्यधिक दीर्घ हों और न अत्यन्त लघु।

(३) कथावस्तु इतिहास प्रसिद्ध हो या सज्जनाश्रित । साथ ही उसका सुसंगठित होना भी आवश्यक हैं।

(४) इसमें कम से कम आठ सर्ग अवश्य होने चाहिए तथा एक सर्ग में एक ही छन्द रहना चाहिए- प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द बदल भी दिया जाता हैं। प्रवाह की एकता भी विशेष आवश्यक हैं।

(५) श्रृंगार, वीर और शान्त रस में किसी एक की निष्पत्ति प्रधान रूप से की जानी चाहिए। अन्य रसों की भी गौण रूप से अभिव्यक्ति की जानी उचित हैं।

(६) आवश्यकतानुसार संध्या, सूर्य, चन्द्र, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रभात, मध्यान्ह, मृगया, पर्वत, ऋतुओं, वन , समुद्र, संग्राम , यात्रा आदि विषयों का भी वर्णन होना चाहिए।

(७) प्रारम्भ में मंगलाचरण और वस्तु निर्देश भी आवश्यक माने जाते हैं ?

आधुनिक समीक्षकों ने भारतीय और पाश्चात्य विचारकों द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षणों का तुलनात्मक एवं विश्लेषण अध्ययन कर आवश्यक बातों को छोड़कर महाकाव्य के लिए निम्नलिखित तत्त्व आवश्यक माने हैं- (१)सुगठित प्रसिद्ध गम्भीर तथा विस्तृत कथानक, (२) पात्रों की उदात्तता, (३)अधिकाधिक भावों, वस्तुओं तथा मानव जीवन की अवस्थाओं का चित्रण, (४)उद्देश्य की महानता एवं (५) कला की दृष्टि से गरिमा। इन बिन्दुओं के आधार पर हम यह परखने का प्रयास करेंगे कि कामायनी महाकाव्यत्त्व की दृष्टि से कहाँ तक खरी उतरती हैं :

कामायनी की कथा का आधार ख्यात और उत्पाद्य दोनों ही प्रकार की घटनाएँ हैं | पौराणिक एवं कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों और घटनाओं को लेकर कवि ने अपनी कल्पना का आधार लेकर कथानक की रचना की हैं पर कामायनी की कथा में कहीं भी अनैतिहासिक एवं असम्भव घटनाओं की योजना नहीं की गई हैं | सच्चाई तो यह हैं कि कामायनी का कथानक पूर्णतया सुगठित और सुगुम्फित हैं तथा भारतीय दृष्टि से जिन संधियों एवं कार्यावस्थाओं आदि की आवश्यकता कथावस्तु में मानी गई हैं प्राय: वे सभी कामायनी की

कथा में हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण कथा स्वाभाविक गति से आगे बढ़कर 'आनन्द' सर्ग के केन्द्र बिन्दु पर पहुँचती हैं और उसमें अनावश्यक घटनायें बिल्कुल नहीं हैं।

सच्चाई यह हैं कि कामायनी का कथानक उदात्त हैं और उसमें मानव चेतना में घटित होने वाली अनेक सूक्ष्म घटनाओं का निरूपण किया गया हैं। अतएव 'मानव मन के अहंकार का पराभव, नरनारी का प्रथम मिलन और उनके प्रणय से संस्कृति का विकास, पुरुष की निर्बाध अधिकार भावना, अनाचार, बुद्धि पर अधिकार करने का दुर्दम प्रयत्न, परिणामस्वरूप मानव चेतना की पराजय, इच्छा, क्रिया, ज्ञान के समन्वयद्वारा सच्चे आनन्द की उपलब्धि आदि घटनायें इसी प्रकार की हैं।' कामायनी के कथानक की उदात्तता इस बात से भी सिद्ध होती हैं कि इसमें सम्पूर्ण मानव जाति की विकास गाथा प्रस्तुत की गई हैं| अत: 'कामायनी' की कथा का विकास भले ही थोड़ा हो पर सांकेतिक रूप में उसमें सम्पूर्ण मानव जीवन या सृष्टि के इतिहास के रूप में कई करोड़ वर्षों के मानवीय उत्थान-पतन को इसमें अंकित किया गया हैं।

उदात्त कथानक के साथ-साथ 'कामायनी' में पात्रों की उदात्तता भी उच्चकोटि की हैं। नियमानुसार महाकाव्य के नायक का धीरोदात्त होना आवश्यक माना गया हैं और कामायनी के नायक मनु का चरित्र विकसनशील ही हैं| वे अहंकार, स्वार्थ, कामासक्ति एवं चांचल्य आदि हीन वृत्तियों से घिरे हुए भी हैं पर 'कामायनी' नायिका प्रधान महाकाव्य हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि 'श्रद्धा' ही 'कामायनी' की कथा का केन्द्रबिन्दु और मेरुदण्ड हैं तथा नायक के चरित्र में जो धीरोदात्तता अपेक्षित हैं, वह श्रद्धा में पूर्णरूपेण हैं| यहाँ यह भी स्मरणीय हैं कि मनु भी अपने विवेक के बल पर धीरे-धीरे दुर्गुणों को छोड़कर अंततः अखण्ड आनन्द की प्राप्ति करते हैं और उनका चरित्र कामायनी के अन्त में महान बन जाता हैं। कामायनी के अन्य प्रमुख पात्रों में से इड़ा और मानव का व्यक्तित्व भी पर्याप्त उच्च हैं तथा इड़ा तो भटकते हुए मनु को सत्पथ पर ले चलने वाली बुद्धि की प्रतीक हैं।

कामायनी में मानसिक भावों के विश्लेषण की ही प्रधानता हैं और बहुत से सर्ग भी भावों पर ही आधारित हैं अतः भाव-विस्तार की दृष्टि से कामायनी को असम्पन्न नहीं कहा जा सकता| साथ ही कामायनी में भावों के चित्रण की विशेषता यह भी हैं कि वे न केवल इतने सजीव हैं कि पाठकों को रस सिक्त करने की अपूर्व क्षमता रखते हैं अपितु कवि ने गहराई में उतरकर उन्हें देखा हैं| इसी प्रकार उद्देश्य की दृष्टि से तो कामायनी सम्भवतः विश्व साहित्य में अद्वितीय हैं| इस सम्बन्ध में विचार कों का मानना हैं कि 'कामायनी का उद्देश्य मानव-मन में संचरित होने वाली परस्परविरोधी प्रवृत्तियों में सामंजस्य की स्थापना करना हैं। इस उदात्त उद्देश्य द्वारा मानव को संघर्षशील संसार की विभिन्न समस्याओं से विरत कर शान्ति की ओर ले जाया गया हैं। आज के भौतिक युग में संस्कृति, राजनीति और विज्ञान अर्थात् भाव, क्रिया, ज्ञान की दिशाएं परस्पर विरोधी हैं| परिणाम स्वरूप अशान्ति का वातावरण छाया हुआ हैं| कामायनी में मानवता के प्रति अटूट श्रद्धा रखते हुए जीवन में इन तीनों प्रवृत्तियों में सामरस्य का विधान कराकर अखण्ड आनन्द की सिद्धि की गई हैं।'

'कामायनी' अपने बाह्य या कलापक्ष की दृष्टि से भी भव्य हैं और उसकी कला की महाकाव्योचित गरिमा भी असंदिग्ध हैं। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में 'उसमें अद्भुत ऐश्वर्य एवं अलंकार विलास हैं, लक्षणा-व्यंजना का विचित्र चमत्कार कल्पना तथा भावना के अपूर्व वैभव के कारण इस शैली में मूर्ति विधान एवं बिम्ब-योजना की अद्भुत समृद्धि मिलती हैं। ---

कामायनी की शैली सामान्य की अपेक्षा असाधारण और उदात्त हैं तथा छन्द योजना भी निस्संदेह सराहनीय हैं।

विचारपूर्वक देखा जाय तो 'कामायनी' में महाकाव्य विषयक कई परम्परागत लक्षणों का भी निर्वाह हुआ हैं और कामायनी की रस व्यंजना भी प्रशंसनीय हैं। यद्यपि कामायनी के पूर्वार्द्ध में श्रृंगार और उत्तरार्द्ध में शांत रस को प्रमुखता प्राप्त हुई हैं पर हास्य के अतिरिक्त अन्य सभी रसों की भी कामायनी में योजना हुई हैं। 'सर्ग विभाजन' सम्बन्धी लक्षण का भी कामायनी में सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ हैं और कवि प्रसाद ने कामायनी में पंद्रह सर्ग रखे हैं और लगभग सभी सर्गों में कथा का अत्यन्त सुन्दर रीति से विकास भी किया हैं। साथ ही कामायनी में प्रकृति के अनेक उत्कृष्ट चित्र भी उपलब्ध होते हैं | यहाँ युगधर्म का निर्वाह भी किया गया हैं तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि चारों वर्गों में से कामायनी में काम की प्रधानता हैं। समीक्षक कामायनी के प्रारम्भिक छन्द को मंगलाचरण सम्बन्धी ही मानते हैं और 'कामायनी' में खल निन्दा एवं सज्जन स्तुति को भी स्थान दिया गया हैं।

इससे स्पष्ट हो जाता हैं कि 'कामायनी' निर्विवाद रूप से महाकाव्य हैं और विचारक उसके सम्बन्ध में यही कहते हैं कि'रामचरितमानस के बाद यही एक ऐसा महाकाव्य हैं जो हिन्दी को विश्व साहित्य में स्थान दिला सकता हैं'।

४.३ कामायनी का सन्देश

जयशंकरप्रसाद जी ने कामायनी में एकदृष्टा ऋषि की भाँति मानव जीवन को आदि से अंत तक हस्तामलकवत् देखकर उनके मूल रहस्य, आत्मा की अनुभूति का, उसके समग्र रूप में उद्घाटन किया हैं। इस सम्बन्ध में डॉ.द्वारिकाप्रसाद जी का मानना हैं कि कामायनी महाकाव्य इस निराशा, भयग्रस्त, भ्रमित एवं चिरदग्ध दुखी वसुधा को शांति और सुख की आशा बंधाता हुआ अखंड आनन्द प्राप्ति का मंगलमय संदेश दे रहा हैं|'

अपने महाकाव्य 'कामायनी' के द्वारा कवि प्रसाद ने जो संदेश प्रसारित किया हैं वह युग-युगान्तरों तक गूंजता रहेगा क्योंकि कामायनी स्वयं कवि के जीवन का निचोड़ और उसके समस्त आंतरिक स्पन्दनों का व्यक्ति करण हैं तथा कामायनी आज के बुद्धिवादी युग में भीषण तांडव करते हुए मानव की मुक्ति का अमर संदेश प्रदान करती हैं। 'कामायनी' की श्रद्धा कवि के व्यक्तिगत विचारों की प्रतिनिधि हैं और वह भटकी हुई मानव जाति को यह संदेश देती हैं कि वह बुद्धिवाद के आकर्षण एवं नियंत्रण को छिन्न-भिन्न कर अपने कल्याण का पथ प्रशस्त करे। यहाँ यह स्मरणीय हैं कि 'कामायनी' में बुद्धि का सर्वथा विरोध नहीं किया गया और कामायनी कार तो केवल बुद्धि की अति का ही विरोध करता हैं तथा उसकी दृष्टि में श्रद्धा नमन्वित बुद्धि ही श्रेयस्कर होती हैं तथा वह हमारी समस्याओं को सुलझाने में समर्थ भी होती हैं।

'कामायनी' समरसता का संदेश भी प्रदान करती हैं और यह समरसता ही चिरंतन आनन्द का मूल हैं | अतः इस समरसता की भावना के द्वारा ही कवि प्रसाद ने अपने प्रिय आनन्दवाद के सिद्धान्त की पुष्टि की हैं। कामायनीकार का कहना हैं कि संसार में जब तक भेद वृत्ति का नाश नहीं होगा और सुख व दुख में ऐक्य नहीं होगा तथा स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धों में समरसता उत्पन्न नहीं होगी और शासक व शासितों के मध्य की खाई नहीं भरी जायगी तब तक संसार और मानव जाति की प्रगति असंभव हैं। साथ ही

इच्छा, ज्ञान और क्रिया का सामरस्य ही आनन्द लोक के द्वारा उन्मुक्त करता हैं और मानवता की प्रगति भी हृदय और बुद्धि के समन्वय द्वारा ही सम्भव हैं।

कामायनी की श्रद्धा भारतीय नारी जाति की प्रतिनिधि और आदर्श के रूप में उपस्थित की गयी हैं | उसके चरित्र-चित्रण के द्वारा कामायनीकार ने यह स्पष्ट करना चाहा हैं कि श्रद्धा का आदर्श ग्रहण कर ही, आज की नारी वास्तविक उन्नति कर सकती हैं । इसी प्रकार कामायनी में निष्क्रियता का बहिष्कार किया गया हैं और कर्म को प्रधानता दी गयी हैं तथा कर्तव्य का संदेश कामायनी में वर्तमान का स्वर भी हैं और श्री गजानन माधव मुक्तिबोध का कहना हैं कि छायावादी काव्य में कामायनी ही एक ऐसा ग्रंथ हैं जो समाज नीति और राजनीति के क्षेत्र में नये साहस प्रयासों को लेकर निर्द्वन्द्व रूप से आगे बढ़ता हैं ।' अनेक विचारक यह भी कहते हैं कि 'कामायनी निस्संदेह अपने समय का चित्र प्रस्तुत करने वाला महाकाव्य हैं, जिसमें युग की चेतना एवं वाणी प्रतिध्वनित हैं। उसकी कहानी पौराणिक एवं रूपकात्मक होती हुई भी आज की कहानी हैं। उसमें पुराण प्रसिद्ध पात्रों को बीसवीं शताब्दी की भावना एवं कल्पना का साकार रूप बनाकर उपस्थित किया गया हैं।

इस प्रकार कामायनी अपने युग की पूर्ण प्रतिनिधि कृति हैं और यदि हम कामायनी की अंतरात्मा में प्रवेश करें तो हमें उसमें वर्तमान का संघर्ष, उसका परिणाम, मानव जाति के पतन के मुख्य कारण एवं इस विप्लव, इस संघर्ष और इस पतन से मानव जाति को बचाने के उपयुक्त प्रयत्न निहित मिलेंगे। इसीलिए विद्वान कामायनी को मानव जाति के पतन और उत्थान का इतिहास मानते हैं तथा कामायनीकार का यही मत हैं कि युग के अनुरूप चलने वाला व्यक्ति और युग के अनुसार परिवर्तित समाज ही आज हितकर हो सकता हैं । 'कामायनी' में स्पष्ट तया कहा गया हैं-

पुरातनता का यह निमोक, सहन करती न प्रकृति पल एक
नित्य नूतनता का आनन्द, किये हैं परिवर्तन में टेक
प्रकृति के यौवन का सिंगार, करेंगे कभी न बासी फूल
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र आह उत्सुक हैं उनकी धूल
युगों की चट्टानों पर सृष्टि, डाल पद चिन्ह चली गम्भीर
देव, गन्धर्व असुर की पंक्ति अनुसरण करती उसे अधीर

हम यहाँ निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि कामायनी हमारी काव्यधारा का एक स्थायी आलोक स्तम्भ हैं | कामायनी में मनु श्रद्धा के समरसतापूर्ण सत्वस्वरुप से परिचित होने के उपरान्त श्रद्धा के समरसतामय जीवन की प्रशंसा करते हैं और उसके जीवन से उद्भूत होते हुए समरसता के सन्देश एवं शिक्षा को स्वीकार करते हैं –

तुमनेहँस –हँस मुझे सिखाया, विश्व खेल हैं खेल चलो
तुमने मिलकर मुझे बताया, सबसे करते मेल चलो |

वहीं श्रद्धा मनु को प्रवृत्ति का भी सन्देश देती हैं | वह उन्हें शक्ति-संचय कर जीवन में सफलता प्राप्त करने को प्रेरित करती रही | जीवन के कर्म-क्षेत्र की सफलता ही मानव-चेतन की सफलता हैं | मानवकी सम्पूर्ण प्रगति एवं विस्तार कर्मद्वारा ही संभव हैं | श्रद्धा मनु से कहती हैं –

और यह क्या तुम सुनते नहीं, विधाता का मंगल वरदान

शक्तिशाली हो, विजय बनो, विश्व में गूँज रहा जयगान |

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कामायनी का सन्देश आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक जीवन और ज्ञान , इच्छा एवं क्रिया के बीच सामंजस्य स्थापित करना और इसी प्रकार मानव-मानव के मध्य की दूरी को मिटाकर समग्र मानवता की प्रतिष्ठा करना हैं | इस महाकाव्य के माध्यम से कवी मानवता को यही संदेश देना चाहता हैं कि हम उस वेद वाणी को याद करें जिसमें उसे 'अमृतस्य पुत्रा' कहा गया हैं |

४.४ दार्शनिक दृष्टिकोण : समरसता और आनन्दवाद

जयशंकर प्रसाद ने सभी भारतीय दर्शनों का सम्यक् अध्ययन किया था पर किसी भी दर्शन को उन्होंने कामायनी में पूर्णरूपेण नहीं अपनाया | लेकिन, जिसका जितना भी अंश अपनाया उसे इतना व्यावहारिक बनाने का प्रयास किया कि जीवन में उसका उपयोग हो सके। इस प्रकार प्रसाद दर्शन को केवल तर्क और पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित न रखकर जीवन दर्शन के रूप में देखने के पक्षपाती थे । विचारपूर्वक देखा जाय तो प्रसाद पर सर्वाधिक प्रभाव शैव दर्शन का हैं और उनका प्रत्यभिज्ञा दर्शन से, जिसे कि काश्मीर शैव दर्शन भी कहा जाता हैं, इससे विशेष सम्बन्ध रहा हैं। इस दर्शन के प्रवर्तक आचार्य वसु गुप्त कहे जाते हैं और इसके अनुसार आत्मा चैतन्य स्वरूप हैं तथा वही विश्व का कारण हैं और और वही सृष्टि, स्थिति, संहार, विलय एवं अनुग्रह करती हैं, जिससे संसार की परम्परा चलती रहती हैं। प्रसाद जी की कामायनी में भी आत्मा को 'महाचिति' और 'लीलामय' आदि इसी आधार पर कहा गया हैं तथा 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' में उल्लिखित माया तत्व को भी कामायनी में स्थान मिला हैं-

यहाँ मनोमय विश्व कर रहा रागारुण चेतन उपासना।
माया राज्य यही परिपाटी पास बिछाकर जीव फाँसना ।।

शैव दर्शन से ही प्रसाद ने समरसता शब्द और समरसता का सिद्धांत भी ग्रहण किया हैं | शिव तत्व और शक्तितत्व का सामरस्य शैवदर्शन की आधारभूत मान्यताओं में हैं।

साधक जब इस बात की अनुभूति करता हैं कि न तो मैं हूँ और न कोई अन्य तो उसका मन आनन्द में लीन हो जाता हैं तथा यही समरसता हैं अर्थात् द्वैत का मिट जाना ही समरसता हैं। इस स्थिति में आनन्द ही आनन्द रहता हैं, और इसका विरोधी शब्द विषमता हैं तथा मल, कचुक या मौत आदि में लीन व्यक्ति इसी वैषम्य की ज्वाला में जलता हैं। 'कामायनी में कवि ने वर्तमान वैज्ञानिक युग के बुद्धिवादी प्रभाव को अपने मन में धारण करके उसके द्वारा उत्पन्न सामाजिक संघर्ष और विनाश का चित्रण किया हैं। कदाचित इसी कारण समरसता के प्रतिपादन में उसने प्रकृति और पुरुष को आध्यात्म परक समरसता तक अपने को सीमित नहीं रखा। व्यक्ति और समाज की समरसता का भी विशद रूप से वर्णन और समर्थन किया हैं | इसीलिये लौकिक पक्ष में भी इस समरसता को अधिकाधिक व्यवहार्य बनाने का प्रयत्न स्थान-स्थान पर दिखाई देता हैं |

कवि प्रसाद की काव्य कृतियों में समरसता की ही स्थापना की गयी हैं | कामायनी में सुख दुःखात्मक जगत् को भूमा का मधुमय दान कहा गया हैं। साथ ही कवि सुख दुःख के

अतिरिक्त वैयक्तिक जीवन में हृदय और बुद्धि में समन्वय करने या समरसता स्थापित करने का संदेश देता हैं : **यह तर्कमयी तू श्रद्धामय, तू मननशील कर कर्म अभय।**

सबकी समरसता का कर प्रचार, मेरे सुत सुन माँ की पुकार।।

वैयक्तिक जीवन में इच्छा, ज्ञान और कर्म के एक दूसरे से दूर या विषम होने के कारण ही अशांति फैलती हैं अतः प्रसाद उनका भी समन्वय या उनकी भी समरसता चाहते हैं-

ज्ञान दूर कुछ क्रियाभिन्न हैं, इच्छा क्यों हो पूरी मन की।
एक दूसरे से न मिल सके यह विडम्बना हैं जीवन की ।।

वैयक्तिक जीवन की भाँति ही सामाजिक जीवन में समरसता का अभाव प्रसाद को खटका और उन्होंने शासक और शासित में समरसता स्थापित करनेके रूप में इस ओर संकेत भी किया हैं -

समरसता हैं सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।

इस प्रकार प्रसाद जी यही चाहते हैं कि विभिन्न प्रकार के वर्गो (शोषक, शोषित, अधिकारी अधिकृत, पुरुष, स्त्री आदि) में भी समरसता होनी चाहिए | कामायनी में प्रसाद जी की समरसता का ऊर्ध्वबिन्दु जड़ तथा चेतन के सामरस्य का हैं। उन्होंने कहा भी हैं -

समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था।

सामरस्य की यह स्थिति जीव के मुक्त होकर शिवत्व की अनुभूति की हैं और हम देखते हैं कि प्रसाद की समरसता लोक पर लोक दोनों को रस सिक्त करती हैं | यहाँ उनका यही मत हैं कि समरसता से मनुष्य दोनों लोकों की शांन्ति प्राप्त कर पूर्ण बन सकता हैं और समरसता की प्राप्ति के पश्चात् ही व्यक्ति आनन्द की अनुभूति कर सकता हैं |

वस्तुतः कामायनी में आनन्दवाद की प्रतिष्ठा सर्वत्र असंदिग्ध हैं। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के कथनानुसार 'कामायनी' का आधारभूत सिद्धान्त आनन्दवाद हैं। मन के सामरस्य दशा में अवस्थित होने पर ही आनन्द प्राप्ति होता हैं । मानवमन का परम ध्येय हैं शाश्वत आनन्दोपलब्धि । आनन्द प्राप्ति के साधनों में पर्याप्त मतभेद होने पर भी आनन्दोपलब्धि रूपलक्ष्य के विषय में आस्तिक-नास्तिक दर्शनों में अविरोध पाया जाता हैं। प्रसादजी ने कामायनी में आनन्द को साध्य मानकर जिस साधना को प्राथमिकता दी हैं, वह हैं श्रद्धा और इड़ा की समन्वय भावना। श्रद्धा और इड़ा में समन्वय उत्पन्न होने पर ही इच्छा, क्रिया और ज्ञान में सामरस्य उत्पन्न होता हैं और यह सामरस्य ही दुःखनाश के उपरान्त अनन्त आनन्द का पथ प्रशस्त करता हैं। इसीलिए प्रसाद जी लिखते हैं :

समरथ थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक विकसती आनन्द अखण्ड घना था।

अन्य दार्शनिक प्रभाव :

शैव दर्शन को मुख्य आधार के रूप में ग्रहण करने के अतिरिक्त कवि प्रसाद ने अन्य दार्शनिक मतों और विचारधाराओं का भी आश्रय लिया हैं पर इन्हें गौण ही कहना चाहिए तथा इनमें से कुछ तो परम्परा रूप में हैं और कुछ युग की माँग के कारण। इनमें शून्यवाद, क्षणिकवाद, दुःखवाद, करुणा, विकासवाद, परमाणुशक्ति स्पर्धावाद, भौतिकवाद और बुद्धिवाद आदि मुख्य हैं । इसी प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों से सम्बद्ध अनेक

सिद्धान्तों की प्रतिच्छाया भी कामायनी में देखी जा सकती हैं | गुरुत्वाकर्षण से सम्बद्ध कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -

महानील इस परम व्योम में अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान ?
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण किसका करते हैं संधान ;
छिप जाते हैं और निकलते आकर्षण में खिचे हुए!
तृण, वीरुध लहलहें हो रहे किसके रस से सिंचेहुए

४.५ सारांश

कामायनी छायावाद का प्रथम महाकाव्य हैं जिसमें प्रसाद जी ने नवीन पद्धति का अनुसरण किया हैं, इसके कारण भारतीय आचार्यों ने जो लक्षण महाकाव्य के लिए अभिहित किये हैं की उनका पुरी तरह पालन नहीं हो पाया हैं | बहुत मार्मिक और गम्भीर चित्रण कामायनी में हुए हैं सामन्यात: यही लक्षण आचार्यो ने महाकाव्य में प्रमुख माने हैं | इन सभी मुद्दो का वर्णन इस इकाई में हुआ में हुआ हैं जो कामायनी महाकाव्य हैं या नहीं | इस संदर्भ में विद्यार्थियों का ज्ञान प्रगाढ करेगी |

४.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) कामायनी के महाकाव्यत्व पर प्रकाश डालिए |

२) कामायनी महाकाव्य के संदेश को उल्लेखित कीजिए |

३) कामायनी के दार्शनिक दृष्टिकोन पर प्रकाश डालिए |

४.७ लघुत्तरी प्रश्न

१) शैवदर्शन की आधारभूत मान्यताओं में हैं?

उत्तर - शिवतत्व

२) कामायनी __________प्रधान महाकाव्य हैं?

उत्तर - नायिका

३) समीक्षक कामायनी के प्रारंभिक छंद को कौन से छंद से संबोधित करता हैं?

उत्तर - बुद्धिवाद के आकर्षण एवं नियंत्रण को भिन्न-भिन्न कर अपने कल्याण का पथ प्रशस्त करे|

४.८ सन्दर्भ ग्रन्थ

१) कवि प्रसाद – डॉ. आचार्य दुर्गाशंकर मिश्र, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ

२) कामायनी में काव्य, संस्कृति और दर्शन – डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, चतुर्थ संस्करण – 1971

३) कामायनी की काव्य – प्रवृत्ति – डॉ. कामेश्वर सिंह, पुस्तक संस्थान, कानपुर, वर्ष-1973

४) प्रसाद का काव्य - डॉ. प्रेमशंकर, भारती भण्डार, इलाहाबाद, वर्ष- 1970

५) कामायनी प्रेरणा और परिपाक – डॉ. रमाशंकर तिवारी, ग्रन्थम, कानपुर, प्रथम संस्करण – 1973

६) कामायनी एक विवेचन- डॉ.देशराज सिंह एवं सुरेश अग्रवाल, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संकरण – 2015

७) हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ – डॉ. शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण- 2021 – 2022

८) आधुनिक हिन्दी कविता में काव्य चिंतन, डॉ. करुणाशंकर पाण्डेय, क्वालिटी बुक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर

९) हमारे प्रिय कवि और लेखक, डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी एवं राकेश, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ

❖❖❖❖

५

अज्ञेय जीवन परिचय और बना दे चितेरे कविता

इकाई कि रूप रेखा

५.० इकाई का उद्देश्य
५.१ प्रस्तावना
५.२ कवि अज्ञेय का जीवन परिचय
५.३ बना दे चितेरे कविता का भावार्थ
५.४ सारांश
५.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न
५.६ लघुत्तरी प्रश्न
५.७ संदर्भ पुस्तकें

५.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत विद्यार्थी पाठ्यक्रम में सम्मिलित अज्ञेय के काव्य संग्रह 'आंगन के पार द्वार' काव्य संग्रह कि बना दे चितेरे कविता का अध्ययन करेंगे | साथ ही कविता के रचियता अज्ञेय के जीवन विषयक जानकारी भी हासिल करेंगे |

५.१ प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल कवियों का काव्य में नव नवीन प्रयोग के लिए जाना जाता हैं | नवीन प्रयोग कि कविता के लिए अज्ञेय का नाम सर्व प्रथम आता हैं | अज्ञेय कि कविता मानव के साथ साथ प्रकृति से भी गहरा संबंध रखती हैं | जो केवल बाहरी न होकर भीतरी दशाओं का परिचय साहित्य को आधार बनाकर हमसे एकरूप कर देती हैं |

५.२ कवि अज्ञेय का जीवन परिचय

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के प्रमुख कवि, कथाकार, शैलीकार, ललित-निबंधकार, कुशलसंपादक, कुशल अध्यापक और अनेक खुबियों से युक्त महान साहित्यकार अज्ञेय इनका पुरा नाम सच्चिदानंद हिरानंद वात्स्यायन हैं | इनका जन्म ७ मार्च १९११ को उत्तर प्रदेश के कसया कुशनगर में पुरातन-खुदाई शिबीर में हुआ | अज्ञेय के पिता का नाम पंडित हिरानंद शास्त्री था | वे भारत के प्रसिद्ध पुरातत्त्व वेत्ता था | पिता के ताबादलों के कारण अज्ञेयजी का बचपन किसी एक स्थान पर व्यतीत नहीं हुआ उनका जीवन क्रम कई स्थानों से होकर गुजरा उनका वास्तव्य लखनऊ, नालंदा, पटना, उमरकष्टक, कश्मीर, मद्रास आदि अनेक स्थानों पर बीता | अज्ञेय के परिवार में दो बहन और सात भाई थे अज्ञेय भाईयों मे तीसरे क्रमांक पर थे | इनकि माता का नाम श्रीमती वयंती देवी था | अज्ञेय कि प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा घर पर पिता कि देख-रेख में हुई इन्होने विभिन्न भाषा व साहित्य का अध्ययन

किया हिंदी भाषा के साथ-साथ संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी, बांग्ला, तमिल भाषा में इन्हे प्राविण्य प्राप्त था | अज्ञेय ने सन १९२५ में पंजाब से मेट्रीक कि परीक्षा पास कि उसके उपरांत मद्रास के क्रिश्चियन कॉलेज में इंटर मिडीएट के लिये प्रवेश लेकर सन१९२७ में इष्टर परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कि| इसके बाद लाहौर के फॉरमन कॉलेज से बी. एस. सी. प्रथम श्रेणी में प्राप्त की यह समय सन १९२९ का था आगे के अध्ययन के लिये सन १९३० में लाहौर गये वहाँ एम.ए. प्रथम वर्ष विषय अंग्रेजी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कि लेकिन इसके बाद ये एम. ए. द्वितीय वर्ष कि परीक्षा न दे सके क्योंकि अज्ञेय इस समय कई क्रांतिकारी संगठनो और इनसे जुड़ी गतिविधियों में तल्लीन हो चुके थे |

सन १९३० से सन १९३६ का काल इनका जेल में कटा | इसके बाद इन्होने १९३७ में सैनिक और विशाल भारत नामक दो पत्रिकाओं का संपादन किया | सन १९४६ में ब्रिटिश सेना में कार्यरत रहे इस दरम्यान आसाम, वर्मा सीमा पर युद्ध समाप्त हो जाने पर पंजाब कि पश्चिम सीमा पर साधारण सैनिक के रूप मे कार्य किया | सन १९५२ से १९५५ तक आकाशवाणी मे भाषा सलाहकार का काम किया उसके बाद कुछ वर्षो के लिये इनकि नियुक्ति केलिफोर्निया विश्व विद्यालय मे भारतीय संस्कृती और साहित्य विषय के अध्ययन के लिये हुई | वहाँ से लोटने के बाद जोधपुर विश्व विद्यालय में तुलनात्मक साहित्य विषय अध्यापन हेतू प्रोफेसर पद पर नियुक्त हुये |

सन १९६५ मे अज्ञेय कि अग्रगण्यता से 'दिनमान' का प्रकाशन हुआ | सन १९७३ में एवरीमैन्स का संपादक कार्य स्वीकार किया लेकिन ११ महिने इस कार्य को करने के उपरात त्यागपत्र दे दिया और 'प्रतीक संज्ञक' नामक साहित्यिक मासिक पत्रिका का आरंभ किया | सन १९७७ में 'दैनिक नवभारत टाइम्स' का पद भार संभाला | इतने पदभार और संपादन कार्य में इनके द्वारा किया गया सबसे महत्वपूर्ण कार्य 'तारसप्तक' का संपादन व प्रकाशन हैं | सन १९८३ मे युगा (युगोस्लाव्हिया) के अन्तराष्ट्रीय काव्य समारोह में अज्ञेय का स्वर्णमाल पुरस्कार हेतु चयन किया गया इस दरम्यान इन्होने युगोस्लाव्हिया कि यात्रा कि |

सन १९८० में उन्होने 'वत्सलनिधी' नामक न्यास कि स्थापना कि | इसके अंतर्गत साहित्य और संस्कृती विषय पर कई व्याख्यान आयोजन किए भारतीय ज्ञानपीठ से मिली धन राशी को अज्ञेयजी ने वत्सल निधी से जुड़े कार्य मे लगा दिया |

अज्ञेय वैसे तो परिस्थितीवश एक जगह से दुसरी जगह घुमते रहे और इस प्रकार परिस्थितीवश घुमना उनका स्वभाव बन गया था बचपन से ही प्रकृति के सानिध्य में पले बडे हुए अज्ञेय को पेड़-पौधो, जीव-जंतूओ से विशेष लगाव था | ऐतिहासिक वास्तू , खंडहर, जंगल, वीराने आदि को बहुत करीब से देखा और यही वजह थी उनकि कविताओं में मानव सृष्टी के अनुठे दर्शन होते हैं | वही प्रकृति से गहरा लगाव उनकि कविताओं में हम देख सकते हैं | इंनके स्वभाव में व्याप्त घूमक्कड प्रवृत्ती के कारण इन्होने कई विदेश यात्राएँ कि और वहॉ कि संस्कृती सभ्यता को अपने काव्य में परीलक्षित किया |इस प्रकार कि जीवन शैली ने उन्हे एक साहित्यकार के अतिरिक्त एक अच्छा फोटोग्राफर और सत्यान्वेशी पर्यटक भी बना दिया था |

प्रमुख कृतीयॉ–
कविता संग्रह – भग्न दूत १९३३, चिंता १९४२,इत्यलम १९४६, हरी घास पर क्षण भर १९४९,बाबरा अहेरी १९५४, इंद्र धनुष रौंदे हुए थे १९५७ , अरी ओ करुणा प्रभामय १९५९, आँगन के पार द्वार १९६७, कितनी नावों में कितनी बार १९६७, क्योंकि मै उसे जानता हूँ १९७०, सागर मुद्रा १९७०, पहले मै सन्नाटा बुनता हूँ १९७४, महावृक्ष के नीचे १९७७, नदी कि बॉक पर छाया १९८१, प्रिजन डेज एन्ड अदर पोयम्स (अंग्रेजी १९४६)

कहानी – विपथगा १९३७, परंपरा १९४४, कोठरी कि बात १९४५, शरणार्थी १९४८,जयदोल १९५१, ये तेरे प्रतिरूप (१९६१)

उपन्यास – शेखर एक जीवनी प्रथम भाग –(उत्थान) १९४१, द्वितीय भाग (संघर्ष) १९४४,नदी के द्विप १९५१, अपने अपने अजनबी १९५१ |

यात्रा वृतांत - अरे यायावर रहेगा याद १९५३, एक बुंद सहसा उछली १९६०|
निबंध संग्रह - सबरंग, त्रिशंकू, आत्मनेपद, आधुनिक परिदृश्य आलवाल |
आलोचना - त्रिशंकू १९४५ , आत्मनेपद १९६०, भवन्ती १९७१, अद्यतन १९७१ ई |
संस्मरण - स्मृति लेखा
डायरियाँ - भवन्ती, अन्तरा और शाश्वती
विचार गद्य – संवत्सर
नाटक – उत्तर प्रियदर्शी (१९६७)
जीवनी – राम कमल राय द्वारा लिखित शिखर से सागर तक

संपादन कार्य – अज्ञेयजी के जीवन विषयक अध्ययन में हम यह जान चुके हैं कि उन्होने कई पत्र – पत्रिका का संपादन कार्य किया हैं | इसके अतिरिक्त साहित्य क्षेत्र में उनके द्वारा संपादित ग्रंथ इस प्रकार हैं | आधुनिक हिंदी साहित्य (निबंध संग्रह) १९४२, तार सप्तक (कविता संग्रह)१९४३, दुसरा सप्तक (कविता संग्रह) १९५१, तीसरा सप्तक (कविता संग्रह) १९५९, नये एकांकि १९५२, रुपांबरा १९६० | वत्सल निधी के माध्यम से लगभग छह निबंध संग्रहों को संपादित किया |

इस प्रकार उनके अतुलनीय सहयोग से या लेखनी से उन्होने आधुनिक युग का प्रवर्तन किया | इसीलिये भारतेंदू हरिश्चंद्र के बाद अज्ञेय का योगदान साहित्य पटल पर उल्लेखनीय माना जाता हैं |

अज्ञेयजी को उनके साहित्यिक प्रखरता के लिये साहित्य अकादमी और भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार से नवाजा गया हैं |

सन १९५६ को अज्ञेय का विवाह हुआ इनकि धर्म पत्नी का नाम कपिला था |
मृत्यु – ४ एप्रिल १९८७ को इस साहित्य दिपक को मृत्यू ने अपनी चपेट में ले लिया |

उपाधियाँ – हिंदी साहित्य संमेलन प्रयाग द्वारा अज्ञेय को सन १९६८ में 'वाचस्पती' कि उपाधि से सन्मानित किया गया, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन द्वारा १९७१ मे डी.लिट. कि उपाधि प्रदान हुई |

५. ३ बना दे चितेरे कविता का भावार्थ

बना दे चितेरे
मेरे लिये एक चित्र बना दे |
पहले सागर आँक :
विस्तीर्ण प्रगाढ़ नीला ;
ऊपर हलचल से भरा,
पवन के थपेड़ो से आंहत,
शत-शत तरंगो से उद्वेलित
फेनोर्मिया से टूटा हुआ,
किन्तु प्रत्येक टूटन में,
अपार शोभा लिये हुए,
चंचल उत्सृष्ट |
जैसे जीवन |

इस कविता में प्रमुखतः समुद्र का वर्णन कवि ने किया हैं | साथ ही समुद्र में रहने वाली मछली का वर्णन किया हैं | जो अपना जीवन पानी में बिताती हैं | पर वह मछली उस पानी में अपने संपूर्ण बल से ऊपर उछलती हैं | और उसकी उछलन के साथ जो पानी कि एक बूँद सबसे ऊपर दिखाई दे रही हैं | उस बूँद कि ललक में मछली जल से ऊपर छलांग लगाती हैं | और दिन – रात जल में रहने वाली मछली उस एक बूँद को पाने के लिए बैचेन हैं | वह एक बूँद उस अथाह सागर से भी किमती उस मछली को लग रही हैं | मछली के उछलन से कवि अज्ञेय कहना चाहते हैं कि मछली का जीवन जल हैं लेकिन वह उस बूँद को पाने कि ललक रखती हैं | यह ललक उसे अपने सामने दिखने वाली प्रकृति और उससे जुड़े भावों से जोड़ रही हैं | प्रकृति उसे (मछली) को अपनी और आकर्षित कर रही हैं |

बना दे चितेरे से तात्पर्य हैं | यह सुंदर चित्र बनाने वाले तुम मेरे लिए एक चित्र बना दो चितेरा से तात्पर्य हैं | जो चित्र बनाता हैं लेकिन कैसा चित्र भावों कि अभिव्यक्ति करने वाला चित्र जो सब कूछ जानता हैं, समजता हैं, ज्ञानी हैं, ज्ञाता हैं | उससे कवि चित्र बनाने के लिए कह रहे हैं | लेकिन कवि जो चित्र बनवाना चाहते हैं उसकी कुछ शर्त हैं | कुछ नियमावली हैं | उसी के अनुसार कवि चित्र बनवाना चाहते हैं | वह नियमावली क्या हैं | सर्व प्रथम उस अथाह विस्तारित नीले सागर को मापना होगा जो उपरी तौर पर हलचल उथल-पुथल करता दिखाई देता हैं | जो हवा के झोंको से परेशान हैं | जो अपनी हजारों लहरों से उछलता – कुदता हूँ | और दौडती लहरो में जो झाग या बुंद – बूंदे उठते हैं | उनसे टूटना भी उसके अपार सौंदर्य के दर्शन हमें कराता हैं | क्योंकि वह लहरें चंचल हैं | जैसे हमारा जीवन हैं | इस प्रकार कवि अज्ञेय ने समुद्र और उसके क्रियाओं को मानव जीवन से जोडकर दर्शाया हैं| उनके अनुसार जीवन भी सागर जैसा विस्तीर्ण प्रागाढ नीला अर्थात सुंदरता से भर होना

चाहिये | यह पेड़ो से तात्पर्य जीवन में कितनी ही आपत्तियाँ आये लेकिन उत्साह रुपी लहरे सदा लहराती रहे आती रहे वो लहरे टूँटेगी भी बिखरेगी, नष्ट होगी लेकिन बार बार उत्पन्न होकर वो अपना सौंदर्य बनाये रखेंगी या वह लगातार चलने के लिए जीवन को आगे बढाने के लिये प्रयासरत रहेंगी, अपने कर्म निःस्वार्थ भाव से करती रहेगी | और अपना जीवन अर्थमय बनाऐंगी इसे सुंदर और गहन अध्ययनशील बनायेंगी | स्वभाव वश जीवन का कोई अर्थ नहीं होता हैं, लेकिन मानव के कर्म उसे अर्थमय और सार गर्भित बनाते हैं | अपने श्रम, परिश्रम, इच्छा, आकांक्षा और स्वप्न पूर्ती करके वह जीवन में आई आपदाओं से नहीं डरेगा, वरना अपने अथक प्रयासो से उन कठिनाइयों पर मात करेगा और मेहनत श्रम करके अपने जीवन को प्रतीक बनाएगा | कवि ने यहाँ सागर को जीवन का प्रतीक बना दिया हैं | सागर और जीवन को एक कर दिया हैं | इसीलिए उन्होने चित्र बनाने वाले से सागर को देखकर उसके कर्म, श्रम को भलि भाँन्ति जानकर वैसा जीवन देने कि आशा व्यक्त की हैं |

हा पहले सागर आँक,
नीचे अगाध, अथाह,
असंख्य दबावों, तनावों, खींचो और मरोड़ों को
अपनी द्रव एक रुपता में समेटे हुए
असंख्य गतियों और प्रवाहों को
अपने अखण्ड स्थैर्य में सामाहीत किये हुए
स्वायत
अचंचल
-जैसे जीवन

इन पंक्तियो में फिर एक बार सागर से जीवन को जोड़ रहे हैं | लेकिन उसके अलग स्वभाव गुण और वृतियों से | सागर अथाह हैं उसी प्रकार संपूर्ण जीवन में भी दबाव, तनाव कि अधिकता हैं | लेकिन इस अधिकता के बावजुद भी और कठोर और निष्क्रिय हो जायेंगे तो इस दबाव और तनाव को सहना नामुमकिन हो जायेगा लेकिन सागर भी अपार तनाव और दबाव से गृसित हैं लेकिन वह अपने तरल रूप के कारण द्रव वृत्रि के कारण सभी कठिनाईयों को नील जाता हैं | इसी प्रकार हमें भी अपना जीवन सागर के समान द्रव तरल करना हैं ताकि हम तनाव, परेशानियों, दबावो से घबराये नही उन्हे समाहित कर और उत्साह से आगे बढे समय परिस्थिति के साथ तालमय बनाकर आगे बढे जीवन में सामंजस्य बनाने कि कोशिश करते रहे | गंभीर और एकाग्रचित व्यक्ती दबाव तनाव से घबराता नहीं हैं | इन्हे अपने में संहीत कर लेता हैं | और अपनी एक अलग पहचान बनाता हैं | उसकी गंभीरता ही उसकी शक्ति होती हैं | इसीलिए वह कठिनाइयों के प्रवाह में नहीं बहता बल्की उन सब को अपने अंदर समाकार आगे बढने का संकल्प लेता हैं | कवि इसी प्रकार के जीवन कि बात कर रहे हैं | पहले पंक्तियो ने कवि ने सागर कि चंचलता का वर्णन किया हैं | वहाँ दुसरी पंक्तीयाँ सागर के गंभीर भाव को व्यक्त करती हैं | और मानव जीवन में भी इन दोनो गुणों का होना आवश्यक हैं | तभी मानव अपने जीवन में हर कठिनाई से जूझ सकेगा और तत्परता से आगे बढेगा |

सागर आंक कर फिर आंक एक उछली हुई मछली अधर ऊपर में
जहाँ ऊपर भी अगाध नीलिमा हैं|

तरंगोर्मियाँ हैं, हलचल और टूटन हैं |
द्रव हैं ,दबाव हैं |
और उसे घेरे हुए वह अविकल सूक्ष्मता है |
जिस में सब आंदोलन स्थिर और समाहित होते हैं !
उपर अधर में
हवा का एक बुलबुला भर पिने को उछली
हुई मछली जिस कि मरोडी हुई देह - वल्ली में उस कि जिजीविषा कि उत्कट आतुरता मुखर हैं |
जैसे तडिल्लता में दो बादलो के बीच के खिंचाव
सब कौंध जाते हैं |

कवि अज्ञेय ने पहली और दुसरी पंक्तियो में सागर के आंतरिक और बाहरी स्वभाव का वर्णन किया हैं | और अब तिसरी, पंक्तीयो में सागर में रहने वाली मछली के माध्यम से जीवन कि कुशलता बताने का प्रयास कर रहे हैं | सागर में रह रही वह एक मछली जो उछल रही हैं | और जब वह उछलकर समुद्र के ऊपर अधर में हैं तो देखती हैं कि वह जिस सागर में हैं वह भी नीला हैं | और उपर आकाश भी नीला हैं | जब वह मछली उपर उछलती हैं | अपने जीवन कि उर्जा बढाने के लिए | उसके उछलने कि ताकत से ही हम उस मछली के जीवन जीने कि उत्कंठा को अनुमानित कर सकते हैं | कि तमाम कठिनाईयो को झेलकर अथक परिश्रम कर के वह उछल रही हैं | इसी से उसके जीवन जीने कि लालस का हम अंदाज लगा सकते हैं | कवि कहते हैं कि उस मछली कि भाँति ललक हमारे जीवन में आगे बढने कि | वह हवा में उछली अपनी पूरी देह को मरोड कर उस बुलबुले में पानी कि एक बूँद को पाने के लिये आतुर हैं | लेकिन जब वह उछलकर नीला आकाश देख रही हैं और साथ में नीला सागर दोनो का एक रूप देखकर वह अचंभित हैं, लेकिन बादलों में बिजली के चमक से अधिक अर्थात बादल होने का भास हो रहा हैं, इसी कारण कठोरता, उग्र और तीव्रता जैसे भाव वास्तवहीन हो गये, मिट गये सभी नष्ट हो गये |

वज्र अनजाने, अप्रसूत, असंधीत सब
गल जाते हैं|
उस प्राणों का एक बुलबुला – भर पी लेने को
उस अनन्त नीलिमा पर छाये राहते ही
जिस में वह जनमी हैं, जियी हैं, पली हैं, जियेगी
उस दुसरी अनन्त प्रगाढ नीलिमा कि ओर
विद्युल्लता कि कौंध कि तऱह
अपनी इयत्ता कि सारी आकुल तड़प के साथ उछली हुई
एक अकेली मछली |

इन पंक्तियों में कवि आध्यात्म चिंतन करते हुए कहते हैं, कि हमारा इस संसार में जन्म हुआ हैं अपना जीवन जीते हैं और जीवन जीते समय हमें कई कठिनाईयों का, संघर्ष का सामना करना पड़ता हैं इन कठिनाईयों को मात देकर हि हम जीवन में एक पहचान बना पाते हैं | संघर्ष करके ही हम आगे बढते हैं और आगे बढने के लिये जो शक्ति हमे चाहिए, जो उर्जा चाहिए उस उर्जा का श्रोत क्या हैं? जिसके द्वारा हम आगे बढते हैं | कठिनाईयों को मात देते

हैं | हम सोचने पर मजबूर हो जाते हैं, कि जिसके द्वारा हमे शक्ति मिलती और जिसने इस जगत का निर्माण किया हैं | जो इस सृष्टि को चला रहा हैं | आगे बढा रहा हैं | वह परम पिता परमात्मा कौन हैं? और कहाँ हैं? ये सभी प्रश्न उस परमात्मा से मिलने उसे पाने कि ललक हमारे मन में जाग उठती हैं और हम सारी सांसारिक चीजो से ऊपर उठ जाते हैं | कवि कहते हैं ठीक इसी प्रकार मछली जब सागर से ऊपर कि ओर उछलती हैं तो समुद्र में जो नीलिमा हैं वह नीलिमा आसमान कि नीलिमा से आयी हैं | और आकाश कि नीलिमा समुद्र से उसी प्रकार जैसे प्रकृति भी ईश्वर का एक रूप हैं और जब हम ईश्वर कि चाह में उसे पाने के लिये आगे बढते हैं | उस समय ईश्वर को पाने कि ललक-तड़प हमे उर्जा देती हैं और उसी उर्जा से पुन: हम इस संसार में जीवन विस्तार करने के लिये आगे-बढने के लिये प्रेरित हैं | हमारा मानना हैं कि सभी नर-नारी सभी के साथ समान व्यवहार करते हुए प्रेम, दया, करुणा से रहना चाहिए यह समझ हमे ईश्वर कि आराधना से आती हैं | उसे पाने कि लालसा से आती हैं | यदि संसार कि मोह-माया में फँस कर रह गये तो, ऐसे उच्च विचार हमारे मस्तिष्क में कभी नही आ सकते हैं | कवि आगे कहते हैं कि संसार कि समग्र परिस्थितीयों को आँकने के बाद अर्थात सागर को आँकने के पश्चात जब ऊपर उठेंगे तो अपना जीवन सुफल संपूर्णम कि भावना से जी सकेंगे अर्थात उच्चकोटी का जीवन जी सकेंगे |

बना दे चितेरे,
यह चित्र मेरे लिये आँक दे|
मिट्टी कि बनी से सींची, प्राणाकाश कि प्यासी
उस अंतहीन उदिषा को
तु अंतहीन काल के लिये फलक पर टाँक दे
क्योंकि यह माँग मेरी, मेरी, मेरी हैं कि प्राणों के
एक जिस बुलबुले कि ओर मै हुआ उदग्र, वह
अंतहीन काल तक मुझे खींचता रहे:
मै उदग्र हि बना रहूँ कि
-जाने कब-
वह मुझे सोख ले |

परमेश्वर यदि आप चित्रकार हैं, तो यह चित्र मेरे लिये बना दो | ऐसा चित्र कि मैं इस जगत में रहूँ, संघर्ष कर जीऊँ, अपने जीवन को अर्थ दे सकूँ, और जब भी इस जीवन में मुझे कोई कठिनाई आए तो मै परमपिता परमात्मा से अपने सम्बन्धों को स्थापित करते हुए आगे बढ़ूँ, मुझे ईश्वर से बल मिले और उस शक्ति के संचारन से मै वापस इस संसार में अधिक सफल तरीके से अपने जीवन को अर्थपूर्ण बना सकूँ | इस प्रकार का चित्र अप मेरे लिए बना दो |
इस प्रकार पंचतत्वों से बना हुआ यह शरीर हैं | अर्थात मिट्टी से बना हुआ पानी से सींचा हुआ जीवज्योत कि प्यास लिए हुए इस उदिशा को तुम फलक पर टाँक सको तो टांक दो यही मेरी माँग हैं | और मेरी माँग हैं कि जिस एक बूँद के लिए मै इस संसार से ऊपर उठा हूँ| संसार में रहकर भी संसार से ऊपर उठने कि बात कर रहा हूँ | (संसार कि मोह-माया का त्याग कर परमात्मा का ध्यान) वह आराधना, उर्जा जीवन काल तक मेरे अंदर बनी रहे | यह भास हमारे मन में हमेशा रहे कि हम क्या हैं | हम इस विस्तीर्ण सत्ता का एक अंश हैं | यह हमे हमेशा ज्ञात रहे और उस शक्ति को संचित करने के लिए समझने योग्य बनाये रखने के लिए प्रणबद्ध हो तभी इस संसार को हम और अच्छी तरह से समझ सकेंगे | क्योंकि संसार

से ऊपर उठकर संसार को जीना ही जीवन हैं | प्यास को अगर तुम बनाये रखो तो हमेशा बनाये रखना यही मेरी इच्छा हैं | मै उस परमात्मा को पाने के लिए हमेशा आतुर रहे | उससे उर्जा लेती रहूँ| उसकी कृपा दृष्टि में रहूँ | और अंत में कब में उसमें लीन हो जाऊँ (आत्मा से परमात्मा का मिलन) मुझे ज्ञात नाही हैं लेकिन उससे ,मिलने कि आतुरता मेरे अंदर हमेशा बनी रहे | यह प्यास मेरे अंदर रहेगी तो मै और अधिक परिश्रमी बनुँगा, स्वयं को मानवीय बनाये रखुंगा | इस संसार से जुडे रहकर संसार कि सेवा कर सकुँगा | इस सेवा के सुख से मुझे शक्ति मिलेगी | इस शक्ति से मै अपने परमपिता कि और एक कदम आगे बढ सकुँगी |

५. ४ सारांश

उक्त इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी कवि अज्ञेय के जीवन और उनके रचना संसार से अवगत हुए | पाठ्यक्रम में शामिल चार कविताओं में से एक कविता 'बना दे चितेरे' का अर्थ और भावार्थ को समझ सके |

५. ५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) कवि अज्ञेय के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालिए |
२) "बना दे चितेरे' कविता के भावार्थ को स्पष्ट किजिए |
३) "बना दे चितेरे' कविता में निहित आध्यात्मिक दृष्टिकोण कि समीक्षा किजिए |
४) "बना दे चितेरे' कविता के भावार्थ को सोदाहरण समझाइए |

५. ६ लघुत्तरी प्रश्न

१) कवि अज्ञेय का पूरा नाम क्या हैं ?
उत्तर - सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'
२) सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' को अज्ञेय नाम किसने दिया ?
उत्तर - मुंशी प्रेमचंद
३) "बना दे चितेरे' कविता अज्ञेय के कौनसे काव्य संग्रह से ली गई हैं ?
उत्तर - आंगन के पार द्वार
४) "बना दे चितेरे' कविता में कवि ने चितेरे किसे कहा हैं ?
उत्तर - चित्रकार को
५) "बना दे चितेरे' कविता मेंजीवन में कैसे आगे बढ़ने कि बात कही गई हैं ?
उत्तर - संघर्ष करके

५. ७ संदर्भ पुस्तकें

१) अज्ञेय की कविता एक मूल्यांकन – डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर
२) अज्ञेय की काव्य तितीर्षा – डॉ. नंदकिशोर आचार्य
३) अज्ञेय की कविता परम्परा और प्रयोग – रमेश ऋषिकल्प
४) अज्ञेय, चिंतन और साहित्य – प्रेम धन

❖❖❖❖

६

चिड़िया ने ही कहा और अन्तः सलिला

इकाई कि रूप रेखा

६.० इकाई का उद्देश्य

६.१ प्रस्तावना

६.२ 'चिड़िया ने ही कहा' कविता का भावार्थ

६.३ 'अन्तः सलीला' कविता का भावार्थ

६.४ सारांश

६.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

६.६ लघुत्तरी प्रश्न

६.७ संदर्भ ग्रंथ

६.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत विद्यार्थी पाठ्यक्रम में सम्मिलित अज्ञेय के काव्य संग्रह 'आंगन के पार द्वार' काव्य संग्रह कि 'चिड़िया ने ही कहा' और 'अन्तः सलीला' कविता का अध्ययन करेंगे | इन कविताओं के भावार्थ को जानेंगे |

६ .१ प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का आधुनिक काल के कवियों में अज्ञेय ने अपनी हर एक कविता में पाठक का परिचय मानव के नवीन रूप से कराया हैं उसके जीवन कि महत्ता से उसे अवगत कराया हैं | मानवी जीवन के साथ प्रकृति और पशु -पक्षियों कि और भी उन्होंने सर्वांगीण दृष्टि डाली हैं | जिससे उनके सामाजिक सर्वेक्षण और पर्यावरण के प्रति निष्ठा भाव हमें दिखता हैं |

कवि अज्ञेय ने 'चिड़िया ने ही कहा' कविता के पूर्व भी चिड़िया पर एक कविता लिखी जिसका नाम था | 'चिड़िया कि कहानी' इस कविता में चिड़िया केवल चिड़िया के अर्थ में नही थी | वरन् उसके साथ कई अन कहे अर्थ जुड़ गये थे | वह साधारण सी चिड़िया जिंदगी का अर्थ सिखा रही थी | उसका मौन स्वभाव निश्चल कर्म का प्रतीक था | चिड़िया जीवन कि कृति हैं, कर्म हैं और फल हैं, प्रयोगवादी कवियो कि यही प्रमुख प्रवृत्ति रही हैं कि उन्होने किसी भी प्रयोग को सार्थक सिद्ध करने में संपूर्ण भाषात्व को उंडेल दिया और इन कविताओं को बिम्ब प्रतीक के प्रखर प्रयोग से अभिव्यंजित कर कविता में निखार लाने के साथ-साथ कविता को अध्यात्मपरक दृष्टि से जोड़ दिया हैं | जैविक तत्त्व को भाव, कर्म और संघर्ष से दृष्टांकित कर परमतत्त्व से जोड़ने में प्रयोगवादी कवियो का जवाब नहीं हैं | इस श्रेणी में कवि अज्ञेय का नाम प्रमुखता से लिया जाता हैं |

अज्ञेय द्वारा रचित कविता 'चिड़िया ने ही कहा' कविता में कवि ने चिड़िया कि ओर पाठक का सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित किया हैं और चिड़िया के रूप में न होकर या चिड़िया चिड़िया न

होकर एक अनुभूति हैं और उसी अनुभूति को कवि इस कविता के मध्यम से अभिव्यक्त करते हैं |

मैने कहा
कि चिडिया
में देखता रहा –
चिड़िया चिड़िया ही रही|
फिर फिर देखा
फिर फिर बोला,
चिडिया |
चिड़िया ही रही

जो व्यक्ति साहित्य से जुडा हैं और यदि वह कवि हैं तो जीवन का हर लम्हा हर क्षण अपनी कविता में समेट लेता हैं | समय, परिस्थिति, कालानुरुप कवि काव्य रचना करता हैं | उसी प्रकार कवि अज्ञेय ने उड़ती हुई एक चिड़िया देखी और उस पर कविता लिख डाली | लेकिन चिड़िया सिर्फ माध्यम थी | कवि के अंतर्मन विचारो कि और उनके मन में चल रहे मानव जीवन के अर्थ कि कवि कहते हैं कि मै आसमान कि तरफ देख रहा था | जो चिड़िया उड रही थी | मै उसकी और एक टक देखता रहा | मुझे वह चिड़िया बार बार वैसे ही दिखी जितनी बार मेरी नजर उस चिड़िया पर थी | वह चिड़िया मुझे हर बार चिड़िया ही नजर आयी | जैसा कि हम जानते हैं – चिड़िया का अर्थ कवि अज्ञेय ने अंतर्बोध माना हैं, इसीलिये इन काव्य पंक्ति के माध्यम से कवि कहना चाहते हैं कि जब अपनी अंर्तआत्मा से जुडा रहता हूँ | तब में स्वयं कि संवेदना अहसास कर पाता हूँ | स्वयं को स्थिर और एक दिशा में सुचारू रूप से चला सकता हूँ | क्योंकि मै एक –एक क्षण उससे जुडा हूँ | तो हर बार वह संवेदना मुझे एक जैसी लग रही हैं | और मै जगत समाज, मानव जीवन से स्वयं को जोड़ सका हूँ |

फिर जाने कब
मैने देखा नहीं
भूल गया था मै क्षण भर को तकना
मै कुछ बोला नहीं –
खो गयी थी क्षण भर को स्तब्ध चकित-सी वाणी
शब्द गये थे बिखर फटी छीमी से जैसे
फट कर खो जाते है बीज
अनयना रवहीना धरती में
होने को अंकुरित अजाने -
तब जाने कब –
चिड़िया ने ही कहा
कि चिड़िया |
वह चिड़िया थी |
चिड़िया
चिड़िया नही रही हैं तब से
मै भी नही रहा मै |

आगे कवि कहते हैं कि मुझे पता ही न चला कि मै उस उड़ती हुई चिड़िया को देखना भूल गया | वह जाने कहाँ चली गई | अब मुझे देखने से भी नजर नही आ रही हैं | उस चिड़िया के न दिखने से मै अब बोल नहीं पा रहा हूँ | अपनी सुद-बुध खो बैठ हूँ | क्या बोलू शब्द मेरी जुबान पर नहीं आ रहे हैं, जैसे एक पौधे या बेल में फली होती हैं | उसके अंदर जो बीज होते हैं, वह एक सरी में एक जैसे जमे होते हैं | एक ही क्रम में आते हैं, और बढते हैं | कवि कहते हैं कि मेरे शब्द भी ऐसी ही संवेदनाओं से भरे हुए अनुभूति के अंतर्बोध में समाये एक समान जो मेरी जुबान पर आने वालो शब्दो कि प्रेरणा थे | सुंदर और एक लय में वस्तारित होते जाते थे | लेकिन मेरी संवेदनाओं से जब से मेरा नाता टूटा हैं, मै भटक गया हूँ | जीवन और समाज से परे हो गया हूँ | इसका मुझे पछतावा हैं लेकिन जो उस फली के बीज जमीन पर बिखरे हैं वह जमीन बंजर हैं | वहाँ किसी कि नजर नहीं जाती हैं | वह बीज इस अनजानी धरती पर कब अंकुरित होगे यह भी हमे पता नहीं चलेगा और ऐसे संकोच भरी मन:स्थिती में वह चिड़िया ही वापस आकर हमसे कह रही हैं | हमे देख रही हैं | उस चिड़िया के देखने भर का एहसास क्या हैं? हम अच्छी तरह जान गये हैं लेकिन उस चिड़िया के न होने से हम भी नहीं रहेंगे | हमारा भी अस्तित्व नहीं रहेगा | जग अर्थहीन हो जाएगा |

कवि अज्ञेय इन पंक्तियों का भावार्थ मानव के अंतर्मन कि संवेदनाओं से जोड़ रहे हैं | पिछली पंक्तियों में संवेदना को आत्मसात करने पर मानवी जीवन और समाज कि उन्नत्ति कि दिशा कि ओर कवि ने संकेत किया हैं | वही इन पंक्तियो में कवि उड़ती हुई चिड़िया को देखना भूल जाते हैं और यह भुलना अपने अंतर्बोध और अंतर्मन से नाता तोड़ कर भौतिक जीवन कि ओर अग्रसर होना हैं, उससे अपना संबंध घनिष्ट करने कि ओर कवि ने संकेत किया हैं, लेकिन इस भोग विलास भरे जीवन में पदार्पण करने से कवि इसके दुष्परिणामों कि ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि मेरा जीवन संवेदनाओं के खो जाने से बिखर बिखर गया हैं, मुझे कुछ नहीं सूझ रहा कि मै क्या करू, मै टूट गया हूँ, बिखर गया हूँ और इस टूटने बिखरने के फलस्वरूप जो उत्पन्न होगा वह अपनी दुष्कर्मों का फल होगा | क्योंकि उसका पालन पोषण अच्छे से नहीं हुआ हैं| उनका उगम स्त्रोत ही गति हीन हैं | ऐसे में व्यक्ति अनुभूति हीन हो जाएगा | समाज से कर्म से विशिष्ट होकर उसका जीवन अधिक काल तक सुकर नहीं हो सकता, क्योंकि मानव जीवन क्षणिक हैं, उसे अमर बनाने के लिये अंतर्मन और अंतर्बोध होना बहुत जरुरी हैं | इसके अभाव में मानव – मानव नहीं रह जाएगा | वह समाज जन और स्वयं को गर्त कि ओर ढकेल रहा हैं | खो रहा हैं, अजनबी हो रहा हैं, अंतरात्मा से ईश्वर से और स्वयं से

> ‘कवि हूँ|
> कहना सब, सुनना हैं, स्वर केवल सन्नाटा|
> कही बडे गहरे में|
> सभी स्वैर हैं नियम,
> सभी सर्जन केवल
> आंचल पसार कर लेना|’

आगे कवि कहते हैं कि, मै कवि हूँ, मेरा काम क्या हैं | कहना और सुनना लेकिन त्रासदी में संवेदना हीन हो जाने पर मेरे स्वर भी सुनसान सन्नाटे में खो जायेंगे | किसी को सुनाई नहीं देंगे उड़ती हुई चिड़िया कि तरफ देखना अर्थात अपनी अनुभूति संवेदनाओ को अंतर्निहित

करके आगे बढना जिससे आत्मविश्वास में वृद्धी होगी | हम परमात्मा से जुडे रहेंगे लेकिन इसके विपरीत ध्वनि में चिड़िया को उड़ते देखना भूल गया अर्थात में भौतिक सुख, भोगविलास में तल्लीन हो गया | इससे संवेदनहीनता और परमात्मा से दूर होने का बोध होता हैं | जो जीवन को नर्क बना देता हैं| और गर्त की ओर ढकेलता है ऐसे में कवि के स्वर भी सन्नाटे में लीन हो गये | किसी को सुनाई नहीं दे रहे हैं | कवि कहते हैं कि मै भी संवेदना हीन हो गया हूँ और सभी प्रकृति के नियमो को तोड़ कर मनमानी कम करने लग गया हूँ| सिर्फ सब कुछ पाने कि आस मुझे हैं किसी को कुछ देना तो मेरे कुकर्मो ने भुला दिया हैं | अब जितना भी मुझे मिल रहा हैं वह मुझे कम ही लग रहा हैं | मुझमें पाने कि आस कुछ मिलने कि आस इतनी बढ गई हैं कि मै बस लेना ही लेना जानता हूँ|

कवि कविता में चिड़िया के माध्यम से हमारी मन:स्थिती का वर्णन कर रहे हैं | हमारा मन जब तक हमारे नियंत्रण में रहेगा | वह संवेदना और अनुभूति से जुडा रहेगा लेकिन जब उस मन से हमारा ध्यान विक्षिप्त होगा | टूटेगा तो वह संवेदनशील और अंतरात्मा से अलग हो जायगा और भोगविलास, भौतिक संसाधनो के अधीन चला जाएगा | ऐसे में मानव न अपने बोली पर नियंत्रण रखेगा और नही कर्मो पर ऐसे में सब कुछ बिखर जायगा, टूट जायगा और समाज में आने वाली अगली पिढी भी कमजोर मनोबल से उत्पन्न होगी | वह भी भौतिक सुख – साधनो को अपनी ताकत मान कर खोखले स्वरूप को लेकर आगे बढेगी | ऐसे में कर्म करने कि चाह से अधिक आलस्य बढेगा और आलस्य के बढने पर अनुभूति अर्थहीन हो जायेगी | आस रहेगी सिर्फ पाने कि और पाने कि चाह इतनी अधिक रहेगी कि जितना मिले उतना कम ही लगेगा, लेना भी हैं तो ढेर सारा जो पुरे आँचल में समा सके |

६.३ 'अन्तः सलीला' कविता का भावार्थ

अन्तः सलिला नामक कविता आँगन के पार द्वार नामक काव्य संग्रह से ली गई हैं | इस काव्य संग्रह में १९५९ से १९६१ तक रचित कविताओं का संचयन प्रस्तुत हुआ हैं | 'आँगन के पार द्वार' कविता को १९६१ में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सन्मानित किया गया यह काव्य संग्रह अध्यात्म बोध के साथ जीवन के यथार्थ दर्शन और सामाजिक हिताय को प्रस्तुत करता हैं | अन्तः सलिला कविता के विषय में विद्वानो का मानना हैं कि यह कविता टि.एस. इलियट के सिद्धांत का अनुसरण करती हैं |

अन्तः सलिला शीर्षक से तात्पर्य वह नदी जिसकि धारा आंतरिक विस्तार करती जाती हैं और बाहर से इस धारा को न कोई देख सकता हैं न ही इसका अनुमान लगा सकता हैं | इस प्रकार अन्तः सलिला के भाव को कवि मानव के मन के उद्रेग से जोडते हैं प्रस्तुत कविता में नदी मानव कि अंतसचेतना का प्रतीक मानी गई हैं और रेत उसके भौतिक आसक्ती कि ओर संकेत करती हैं |

यह कविता कवि अज्ञेय जी ने इलाहाबाद से दिल्ली रेल में प्रवास करते समय २० फरवरी १९५९ को लिखी | इस कविता का प्रारंभ करते हुए कवि अज्ञेय कहते हैं |

रेत का विस्तार
नदी जिस में खो गयी
कृश – धार |
झरा मेरे आँसुओं का भार
मेरा दुःख धन,
मेरे समीप अगाध पारावार –
उसने सोख सहसा लिया

अन्तः सलिला नदी को माध्यम बनाकर कवि कहते हैं कि मानव जीवन भौतिकता से जकड़ा हुआ हैं इस भौतिकता को हम अस्तित्व हीन मानते हैं लेकिन यही भौतिक सुख सुविधायें आज मानव जीवन का अस्तित्व और ध्येय बन चुकि हैं | अज्ञेय कहते हैं कि नदी के चारो ओर रेत का विस्तार हैं | और यह विस्तार इतना अधिक हैं कि इसमे जो नदी कि पतली सी धारा हैं वह खो चुकि हैं इस धारा कि तुलना कवि अपने आँसुओं से करते हैं और कहते हैं मेरी आँखों से जो आँसुओं कि धारा वह रही थी वह मेरा दु:ख रुपी धन था मेरी धरोहर थी उस धरोहर को मेरे पास के अगाध समुद्र ने सोख लिया हैं | यहाँ कवि का तात्पर्य पानी या जल से भरे समुद्र से न होकर रेत से भरे समुद्र से हैं जहाँ कवि के आँसू खो गये हैं |

जैसे लुट ले बटमार |
और फिर अक्षितिज
लहरीला मगर बेटूट
सुखी रेत का विस्तार-
नदी जिस में खो गयी
कृश - धार |

कवि कहते हैं कि मेरे आँसुओं को उस रेत ने सोख लिया उसी प्रकार जैसे कोई लुटेरा पूरी धन दौलत लूट लेता हैं और इंसान को धन हीन खोखला बना देता हैं उसका सर्वस्व छीनने को अग्रसर हो उठता हैं | आगे कवि कहते हैं इस छोर से उस छोर जहाँ तक नजर जाती हैं वहाँ तक केवल रेत ही नजर आती हैं और इस रेत का विस्तार भी पानी कि तरह लहरीला हैं इतना अगाध हैं कि न रुके न टूटे लहरा रहा हैं इसमे असीम विस्तारित रेत के कारण नदी के पानी कि पतली सी धारा नजर हीन हो गई हैं खो गई हैं |

किंतु जब जब जहाँ भी जिसने कुरेदा
नमी पायी और खोदा-
हुआ रस –संचार
रिसता हुआ गड्ढा भर गया |

आगे कवि कहते हैं कि पानी कि धारा को रेत ने छुपा लिया था लेकिन पानी कि चाह में जिसने भी उस रेत को कुरेदा अपनी जगह से उसे हटाया और खोदा उसकी पानी पाने कि चाह पुरी हुई हैं अर्थात कष्ट करने वाले का कोई भी कर्म जो वह पूरे तन मन से करता हैं वह कभी व्यर्थ नहीं जाता उसको फल जरूर मिलता हैं उसकी सभी इच्छा आकांक्षा पूर्ण होती हैं |

यो अजाना पंथ
जो भी ल्कांत आया रुका ले कर आस,
स्वल्पायास से ही शान्त
अपनी प्यास
इस से कर गया
खींच लंबी सांस
पार उतर गया |

एक अंजान पथिक जो इस रास्ते से गुजर रहा था वह थका हुआ था उसे प्यास लगी थी वह बड़ी आशा के साथ पानी कि आस लिये यहाँ ठहरता हैं वह इस थोड़े अल्प पानी से ही अपनी प्यास शांत कर बड़े ही सांत्वन भाव से यहाँ से निकलता हैं |

अरे अन्तः सलिल हैं रेत :
अनगिंनत पैरो तले रौंदी हुई अविराम
फिर भी घाव अपने आप भरती
पड़ी सज्जाहीन
धूसर-गौर
निरीह और उदार |

आगे कवि कहते हैं यह जो रेत का विस्तार चारों ओर रेत ही रेत दिखाई दे रही हैं यह रेत और इस रेत में छिपी नदी कि धारा जो हमें दिखाई नहीं दे रही हैं वह धारा न जाने कितने पैरों तले रौंदी जा रही हैं और लगातार रौंदी जा रही हैं कितने ही घाव इस रेत को लगते हैं लेकिन इन घावों को वह स्वयं ही बड़ी आसानी से भर लेती हैं उसके घाव भरने कोई दुसरा व्यक्ति नहीं आता वह स्वयं ही अपने घाव भर लेती हैं | यह रेत जो साधारण हैं किसी भी प्रकार का आकर्षण इसमे नहीं हैं रंग रूप में भी यह मट मैली हैं लेकिन गुणों में निपुण हैं जो नदी कि धारा को छुपा सकती हैं मेहनत करने वालो कि प्यास बुझा सकती हैं और कितने ही पैरो तले रुंदकर अपने जख्म आप भरने कि ताकद भी रेत मे हैं |

भावार्थ :

अन्तः सलिला कविता मे कवि ने जीवन में व्याप्त दु:खों को एक सूखी नदी के माध्यम से व्यक्त किया हैं कृश - धार से कवि का तात्पर्य आँसुओं कि धारा से हैं और यह कृश - धारा को रेत ने छुपा दिया अर्थात दु:खों को व्यक्त करने का माध्यम जो यह आँसू हैं वह आँसू भी उससे छीन लिये गए और उसके दु:खों का नामो-निशान मिटा दिया |

किन्तु स्वयं से मिटकर नदी ने यह तो जान लिया कि दु:ख क्या हैं ? इनकि वेदना क्या हैं? इसीलिये वह किसी को दु:खी नहीं देख सकती | यह जो रेत मे डूबी हुई नदी हैं वह उपेक्षिता हैं, परित्यक्ता हैं, परिस्थितियों से हताश हैं लेकिन फिर भी सबकि इच्छा आशाओं का ध्यान रखती हैं उनकि पीड़ा का निवारण करती हैं | लेकिन किसी को उसकी परवाह नहीं हैं, उसे जो घाव लगे हैं उसकी तरफ किसी का ध्यान नहीं हैं | इस प्रकार कवि मानव कि कुण्ठा और उसके अंदर के दर्द को इस कविता के मध्यम से वाणी देते हैं और इसी भाव रूप को इस कविता के माध्यम से कवि प्रस्तुत हैं |

मानव कि अंतरात्मा बाह्य रेत अर्थात भौतिक सुख-सुविधाओं के आधीन हो चुकि हैं ऐसी परिस्थिति में जिसने भी परमात्मा का ध्यान किया उसे परमगति मिली वह निराश नहीं हुआ | आत्मा कितने ही घावों को सहती हैं और स्वयं उन घावों को भर लेती हैं यह घाव मानव के दुष्कर्म रुपी घाव हैं जिन्हे आत्मा सहती हैं वह बाहरी जीवन कि चोटों को सहती हैं लेकिन स्वयं उन घावो को भरती हैं | पडी सज्जा हीन घुसर-गौर, अर्थात आत्मा जिसका कोई रंग रूप, आकार-प्रकार नहीं हैं लेकिन वह उदार हैं सर्वे-सर्वा हैं , निष्कलंक हैं वह अन्तः सलिला हैं | बाहरी चोटों से न घबरकार उन जख्मों का निवारण करके आंतरिक रूप से सुसज्ज परिपूर्ण बने रहकर जीवन को सुचारू रुप से आगे बढाती हैं | दुसरा अर्थ यदि इस कविता का देखें तो अन्तः सलिला सरस्वती नदी हैं जो त्रिवेणी संगम में समाहित हैं | गंगा, यमुना नदी हमें दिखाई देती हैं परंतु सरस्वती नदी पर रेत का आवरण हैं | वह स्पष्ट नजर नहीं आती यह अन्तः सलिला अर्थात सरस्वती नदी कवि कि सर्जनात्मक चेतना को उजागर करती हैं | जो बाहरी जीवन के भौतिक अंधकार में कृश हो गई लेकिन मानव यदि चाहे तो अपने आत्मिक बल से इस अंधकार को कुरेद सकता हैं और ऐसा करने से उसे विद्या रुपी रस कि प्राप्ति होगी जो उसके जीवन को जागृत करेगी, सफल करेगी इसका रंग-रूप, आकार नजर नहीं आयेगा लेकिन इसका संचार जीवन में उजाला कर देगा चमक भर देगा जीवन को सफलता प्रदान करेगा |

६.४ सारांश

उक्त इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी कवि अज्ञेय के आंगन के पार द्वार नामक काव्य संग्रह से पाठ्यक्रम में शामिल चार कविताओं में से दो कविता चिड़िया ने ही कहा और अन्तः सलीला का अर्थ और भावार्थ को समझ सके |

६.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) चिड़िया ने ही कहा कविता के माध्यम से कवि का पर्यावरण के प्रति दृष्टिकोण को अपने शब्दों में विस्तारित किजिए |

२) चिड़िया ने ही कहा कविता का भावार्थ स्पष्ट किजिए

३) अन्तः सलीला कविता का भावार्थ अपने शब्दों में लिखिए |

४) अन्तः सलीला कविता के माध्यम से कवि किस और पाठक का ध्यान इंगित करना चाहते हैं सविस्तार समझाइए |

६.६ लघुत्तरी प्रश्न

१) चिड़िया ने ही कहा कविता में चिड़िया क्या हैं ?

उत्तर - जीवन कि कृति

२) चिड़िया ने ही कहा कविता कि रचना कवि ने कौनसे प्रसंग से प्रभावित होकर कि हैं?

उत्तर - आसमान में उड़ती चिड़िया को देखकर

३) चिड़िया ने ही कहा कविता में चिड़िया का अर्थ कवि ने माना हैं |

उत्तर - अंतर्बोध

४) अन्तः सलीला कविता में रेत के विस्तार ने क्या छुपा दिया ?

उत्तर - नदी कि पतली धारा

५) अन्तः सलीला कविता में कवि जीवन के दुःखों को किस माध्यम से वर्णित करते हैं?

उत्तर - सूखी नदी के माध्यम से

६. ७ संदर्भ ग्रंथ

१) अज्ञेय की कविता एक मूल्यांकन – डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर

२) अज्ञेय की काव्य तितीर्षा – डॉ. नंदकिशोर आचार्य

३) अज्ञेय की कविता परम्परा और प्रयोग – रमेश ऋषिकल्प

४) अज्ञेय, चिंतन और साहित्य – प्रेम धन

❖❖❖❖

७

असाध्यवीणा

इकाई कि रूप रेखा

७.० इकाई का उद्देश्य
७.१ प्रस्तावना
७.२ असाध्यावीणा कविता का परिचय
७.३ असाध्यवीणा कविता का भावार्थ
७.४ सारांश
७.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न
७.६ लघुत्तरी प्रश्न
७.७ संदर्भ ग्रंथ

७.० इकाई का उद्देश्य

अज्ञेय कि कविताएँ अपनी विशेष शैली के लिए जानी जाती हैं | उनके द्वारा रचित एक मात्र लम्बी कविता हैं 'असाध्यवीणा' यह कविता अर्थ ,भाषा ,शैली और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जाती हैं | इस अध्याय में विद्यार्थी असाध्यवीणा कविता के अर्थ ,भावार्थ को समझ सकेंगे और कविता के सभी महत्वपूर्ण मुद्दों से अवगत होंगे |

७.१ प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में प्रयोगवाद और नई कविता का उदगम कवि अज्ञेय द्वारा माना जाता हैं | वहीं जापानी साहित्य में प्रसिद्ध 'हायकु' (छोटी कविता) का सर्व प्रथम हिंदी साहित्य में प्रयोग अज्ञेय ने ही किया | उनके जीवन परिचय में हम उनके बहूआयामी व्यक्तित्व का अध्ययन कर चूके हैं | वे एक कुशल कवि , कथाकार, आलोचक, संपादक, फोटोग्राफर, पर्वतारोही, पर्यटक आदि कई क्षेत्रो में अपनी रुची और कौशल्यता दर्ज कराते रहे हैं और इसी बहुआयामी व्यक्तित्व के कारण ही उनकि कविताओं में कई अनछुये पहलुओं और कई अंर्त और बाह्य मन के भावो का साक्षात्कार अनायास ही हो जाता हैं | अज्ञेय कि कविताएँ बिम्ब और प्रतीक कि अभिव्यक्ति कुशलता से करती हैं | उनकि अधिकांश कविताएँ आकार में छोटी हैं | जहाँ तक लम्बी कविता कि बात कि जाए तो एक मात्र लम्बी कविता अज्ञेय द्वारा रचित हैं वह हैं – 'असाध्यवीणा'

७.२ असाध्यवीणा कविता का परिचय

'असाध्यवीणा' कविता का रचना काल सन १९५७-५८ माना जाता हैं जिसे उन्होने जापान दौरे के बाद रचा हैं | 'आँगन के पार द्वार' नामक काव्य संग्रह में यह कविता संकलित हैं जिसका प्रकाशन १९६१ में हुआ |

जैसा कि हम जानते हैं कवि अज्ञेय भटकंती के शौकिन थे जहाँ भी जाते वहाँ कि संस्कृति, समाज व्यवस्था को जानने कि ललक उनमें रहती थी इसी लालसा कि उपज 'असाध्य वीणा' लम्बी कविता मानी जाती हैं | यह कविता एक किवदन्ती से जुडी हुई हैं जो एक चीनी – जापानी देश कि लोक – कथा हैं | इस कविता कि मूल कहानी 'आकोकुरा' कि पुस्तक 'द बुक ऑफ टी' में 'टेमिंग ऑफ द हार्प'शीर्षक नाम से संकलित हैं | इस कथा का वर्णन इस प्रकार हैं – 'लुंगामिन एक घाटी थी जिसमे एक विशाल वृक्ष था इस वृक्ष का नाम था 'किरी वृक्ष'| इस विशाल वृक्ष में एक जादुगर ने वीणा का निर्माण किया | अनेक वाद्य यंत्रकारो, कलाकारो ने वीणा को बजाने कि पूरजोर कोशिश कि लेकिन वीणा बजाने में असमर्थ रहे यही कारण हैं कि वीणा का नाम असाध्यवीणा रख दिया गया | बाद में "बीन करो" जो कि एक समुदाय हैं उनका राजकुमार पिवो इस वीणा को साध्य लेता हैं | उसके द्वारा जब वीणा से विभिन्न प्रकार के स्वर निकलते हैं कभी प्रेम के, कभी क्रोध के, कभी वीणा कि मधुर वाणी आल्पावित करती हैं तो कभी युद्ध का राग सुनाती हैं | इस प्रकार यह कथा बौद्ध धर्म के झेन संप्रदाय जिसे ध्यान सम्प्रदाय भी कहा जाता हैं और तावो वासियों में बहुत प्रचलित हैं |

'असाध्य वीणा ' यह नाम अज्ञेय जी ने बड़ी आत्मीयता और गहन विचार मंथन के बाद दिया हैं | अपने भटकंती जीवन कि लालसा और रुची के चलते जापान दौरे से आने के पश्चात यह कविता रची जो वहाँ कि पौराणिक कहानी से सरोकार लेकर कवि ने कथा का भारतीयकरण कर दिया यहाँ तक कि कविता के पात्र भी और संरचना को भी अपना सा करना लेखक ने महत्वपूर्ण माना यह कविता कवि अज्ञेय कि अन्य कविताओं कि तरह भावार्थ निहित हैं | जो व्यक्ती के अन्तः मन के सत्य का उससे साक्षात्कार कराती हैं |

७.३ असाध्यवीणा कविता का भावार्थ

अज्ञेयजी ने असाध्यवीणा कि निर्मिति प्राचीन विशाल, महाकाय किरीटी वृक्ष से मानी हैं | इस वृक्ष से वीणा का निर्माण वज्रकिर्ति नामक साधक ने किया था | वीणा का निर्माण होते ही वज्रकिर्ति कि जीवन लीला भी समाप्त हो जाती हैं | उनके पश्चात वीणा को कोई नहीं बजा पाता और यह वीणा असाध्यवीणा बन जाती हैं | अनेक कुशल वादक अपने अथक प्रयत्नों को अर्जित करके भी वीणा का तान नहीं भेद पाते |

आ गये प्रियंवद ! केशकंबली ! गुफा गेह !
राजा ने आसन दिया ! कहा :
कृत कृत्य हुआ मै तात ! पधारे आप |

भरोसा हैं अब मुझ को
साध आज मेरे जीवन कि पूरी होगी |

कविता का प्रारंभ राज दरबार से होता हैं | जहाँ भरे दरबार में प्रियंवद केश कम्बली का आगमन होता हैं | प्रियंवद केश कम्बली महान साधक, तपस्वी हैं | जिन्होनें अपनी साधना से समाज में ज्ञानी बहुश्रुत होने का मान पाया | दरबार में आगमन के पश्चात राजा ने प्रियंवद को असाध्य वीणा कि संपूर्ण जानकारी दी | राजा का संकेत पाकर दरबार में उपस्थित सेवक जन वीणा को दरबार में ले आते हैं |

लघु संकेत समझ राजा का
गण दौड़े ! लाये असाध्यवीणा ,
साधक के आगे रख उसको, हट गये |
सभा कि उत्सुक आँखे
एकबार वीणा को लख, टिक गयी
प्रियवंद के चेहरे पर |

यह वह वीणा जिसे कई साधक अनुभवी ज्ञानी जो अब तक वीणा को साधने में असफल रहे इसी कारणवश वीणा का नाम असाध्य वीणा रखा गया | आज यह असाध्य वीणा प्रियंवद के सन्मुख रख दी सभागृह में उपस्थित सभी जन स्तब्ध, चकित और आँखो में उत्सुकता का भाव लिये एक नजर वीणा कि ओर देखते वही अगले क्षण उनकि आँखे प्रियंवद के चेहरे पर टिक जाती हैं|

"यह वीणा उत्तराखंड के गिरि-प्रान्तर से
--घने वनों में जहाँ व्रत करते हैं व्रतचारी --
बहुत समय पहले आयी थी।
पूरा तो इतिहास न जान सके हम :
किन्तु सुना हैं
वज्रकिर्ति ने मंत्रपूत जिस
अति प्राचीन किरीटी-तरु से इसे गढा़ था --
उसके कानों में हिम-शिखर रहस्य कहा करते थे अपने,
कंधों पर बादल सोते थे,
उसकी करि-शुंडों सी डालें

आगे राजा महान साधक केशकम्बली को वीणा का इतिहास और उसकी उत्पत्ति कि जानकारी देते हुए कहते हैं कि यह वीणा उत्तराखंड के घने वन प्रदेश से आयी हैं | जहाँ बड़े बड़े तपस्वी तपस्या करते हैं हमें इसके पूर्ण इतिहास कि जानकारी नहीं हैं परंतु इतना पता हैं कि वज्रकिर्ति नामक साधक ने अति प्राचीन किरीटी – तरू नामक वृक्ष से इस वीणा का निर्माण किया और मंत्रोच्चारण के द्वारा इस वीणा को पवित्र बनाया | उस वृक्ष कि विराटता का वर्णन करते हुए राजा कहते हैं ,वृक्ष कि उँचाई आकाश से भी उँची थी सुना हैं बादल इसके कधों पर सोया करते थे | इसकि कोटर में भालूओं का वास था | इस वृक्ष कि जड़े पाताल लोक तक फैली हुई थी |

हिम-वर्षा से पूरे वन-यूथों का कर लेती थीं परित्राण,
कोटर में भालू बसते थे,
केहरि उसके वल्कल से कंधे खुजलाने आते थे।
और --सुना हैं-- जड़ उसकी जा पँहुची थी पाताल-लोक,
उसकी गंध-प्रवण शीतलता से फण टिका नाग वासुकि सोता था।
उसी किरीटी-तरु से वज्रकिर्ति ने
सारा जीवन इसे गढा़ :
हठ-साधना यही थी उस साधक कि --
वीणा पूरी हुई, साथ साधना, साथ ही जीवन-लीला

कहा जाता हैं कि वासुकि नाग इस पर अपना फन टीका कर सोया करता था | ऐसे अद्भूत और विराट वृक्ष से वज्रकिर्ति ने इस वीणा का निर्माण किया यही उस साधक के जीवन कि अपूर्व साधना हैं और इस साधना के पूर्ण होने के साथ उसकी जीवन लीला भी समाप्त हो गई वह इसे बजा नहीं पाया | इस वीणा का निर्माण वज्रकिर्ति के संपूर्ण जीवन कि हठ साधना थी |

राजा रुके साँस लम्बी लेकर फिर बोले :
"मेरे हार गये सब जाने-माने कलावन्त,
सबकि विद्या हो गई अकारथ, दर्प चूर,
कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका।
अब यह असाध्य वीणा ही ख्यात हो गयी।
पर मेरा अब भी हैं विश्वास
कृच्छ-तप वज्रकिर्ति का व्यर्थ नहीं था।
वीणा बोलेगी अवश्य, पर तभी।
इसे जब सच्चा स्वर-सिद्ध गोद में लेगा।
तात ! प्रियंवद ! लो, यह सम्मुख रही तुम्हारे
वज्रकिर्ति कि वीणा,
यह मैं, यह रानी, भरी सभा यह :
सब उदग्र, पर्युत्सुक,
जन मात्र प्रतीक्षमाण !"

इस प्रकार राजा आगे बहुत ही आश्वासित होकर कहते हैं कि वज्रकिर्ति का यह तप व्यर्थ नहीं जायेगा | एक दिन सत्य स्वर सिद्ध वादक इस वीणा को जरूर साध्य कर सकेगा और यह वीणा वज्रकिर्ति जैसे साधक कि साधना हैं जो एक तपस्वी ,एकाग्रचित्त ज्ञानी, साधक, सत्यशोधक द्वारा जरूर स्वरित होगी|

आगे राजा प्रियंवद से कहते हैं वज्रकिर्ति कि यह वीणा आज तुम्हारे सामने रखी हैं और आज इस भरी सभा में रानी और सभी मंत्रीगण, जन मानस इस वीणा के नाद का इंतजार कर रहे हैं ,सभी उत्सुक हैं वीणा कि झंकार सुनने के लिये |

केश-कम्बली गुफा-गेह ने खोला कम्बल।
धरती पर चुपचाप बिछाया।
वीणा उस पर रख, पलक मूँद कर प्राण खींच,
करके प्रणाम,
अस्पर्श छुअन से छुए तार।

राजा के आश्वासन भरे वक्तव्य को सुनकर केशकम्बली ने कम्बल निकाला और जमीन पर बिछा दिया, वीणा बड़े ही आदर निष्ठा के साथ उस कम्बल पर रखी और अपने संपूर्ण जीवन कि साधना को प्रणाम कर आँखो को बंद कर चित्त को ध्यान में लीन कर वीणा को प्रणाम किया और इस वीणा कि महान किर्ति सुनकर अधीर हुए|

धीरे बोला : "राजन! पर मैं तो
कलावन्त हूँ नहीं, शिष्य, साधक हूँ--
जीवन के अनकहे सत्य का साक्षी।
वज्रकिर्ति !
प्राचीन किरीटी-तरु !
अभिमन्त्रित वीणा !
ध्यान-मात्र इनका तो गदगद कर देने वाला हैं।"

केशकम्बली संकोच भरे स्वर में राजा से कहते हैं- मैं कला को सीखने वाला साधारण शिष्य हूँ, गुरु नहीं हूँ,साधक हूँ साध्य नहीं | सत्य पथ का अभी राही मात्र हूँ, शीर्ष पर अभी नहीं पहूँच पाया हूँ| अभी आपने वज्रकिर्ती जैसे महान साधक के बारे में बताया अति प्राचीन किरीटी वृक्ष कि विशालता का वर्णन सुनाया यह असाध्य वीणा जो मंत्रोच्चारण से अभिहित हुई हैं इस विषय में आपने मुझे जानकारी दी इस संपूर्ण जानकारी से मेरा रोम –रोम फूल गया, मैं भाव विभोर हो गया हूँ| मैं आगे कूछ कर भी पाऊँगा या नहीं इसी से संदेहित हूँ,

संकोचित हूँ|
चुप हो गया प्रियंवद।
सभा भी मौन हो रही।

वाद्य उठा साधक ने गोद रख लिया।
धीरे-धीरे झुक उस पर, तारों पर मस्तक टेक दिया।
सभा चकित थी -- अरे, प्रियंवद क्या सोता हैं ?
केशकम्बली अथवा होकर पराभूत
झुक गया तार पर ?
वीणा सचमुच क्या हैं असाध्य ?
पर उस स्पन्दित सन्नाटे में
मौन प्रियंवद साध रहा था वीणा--
नहीं, अपने को शोध रहा था।
सघन निविड़ में वह अपने को

यह कह कर प्रियंवद शांत हो जाते हैं और संपूर्ण सभा में मौन छा जाता हैं | इस शांत और शील वातावरण में प्रियंवद बडे आदर के साथ वीणा को गोद में रखते हैं और वीणा पर नत–मस्तक हो जाते हैं | यही अवस्था में बहुत समय रहने के कारण सभा में उपस्थित सभीजन आश्चर्यचकित हो जाते हैं और मन ही मन सोचते हैं क्या प्रियंवद सो गया हैं या स्वयं को पराजित मानकर वीणा पर झुक गया हैं | सभा में उपस्थित जनों के मन यह सोचकर भी अधीर हो जाते हैं कि क्या इस वीणा को कोई नही साध्य कर सकेगा | यह वीणा असाध्य ही रहेगी |

लेकिन ऐसा नहीं हैं प्रियंवद वीणा पर झुका हुआ हैं, वह आत्मचिंतन कर रहा हैं, स्वयं का अवलोकन कर रहा हैं

सौंप रहा था उसी किरीटी-तरु को
कौन प्रियंवद हैं कि दंभ कर
इस अभिमन्त्रित कारुवाद्य के सम्मुख आवे?
कौन बजावे
यह वीणा जो स्वंय एक जीवन-भर कि साधना रही?
भूल गया था केश-कम्बली राज-सभा को :
कम्बल पर अभिमन्त्रित एक अकेलेपन में डूब गया था
जिसमें साक्षी के आगे था
जीवित रही किरीटी-तरु
जिसकि जड़ वासुकि के फण पर थी आधारित,
जिसके कन्धों पर बादल सोते थे
और कान में जिसके हिमगिरी कहते थे अपने रहस्य।
सम्बोधित कर उस तरु को, करता था
नीरव एकालाप प्रियंवद।

क्योंकि प्रियंवद जानता हैं यह वीणा वज्रकिर्ति कि जीवन साधना हैं जो विशाल किरीटी तरू से बनी अभिमंत्रित हुई | यह वीणा कोई साधारण वीणा नही हैं | इस वीणा को कोई भी वह व्यक्ति नहीं साध्य पायेगा जिसके मन में अभिमान हो ऐसा व्यक्ती इसे साधने कि कोशिश भी नहीं कर पायेगा | क्योंकि यह वीणा एक मात्र वाद्य यंत्र न हो कर तपस्वी के जीवन कि साधना हैं | यदी हमें इस वीणा को साधने का प्रयास मात्र भी करना हैं | तो सर्व प्रथम अपने मन को स्वच्छ करना होगा, अभिमान को जड़ से मिटाना होगा | इन सभी बातों का निर्धार कर केश कम्बली प्रियंवद वीणा बजाने का प्रयास करने पूर्व देश- काल, वातावरण, परिवेश सभा में उपस्थित जन-मांनस से निरालम्बित हो गया उन्हे, भूल गया और उसने स्वयं को आत्मचिंतन और आत्म अन्वेषण में लीन कर लिया |

आगे कवि अज्ञेय कहते हैं प्रियंवद कम्बल पर रखी उस अभिमंत्रित वीणा में डूब जाता हैं स्वयं को वीणा में समर्पित कर देता हैं अब यही वीणा प्रियंवद का सर्वस्व हैं, संसार हैं | यह वीणा जिस किरीटी तरू से निर्मित हुई हैं वह किरीटी वृक्ष प्रकृति के उत्पादन से परिपूर्ण था | उस वृक्ष कि विशालता का बखान अतिशयोक्ति लगता हैं | परंतु सत्य हैं कि उसकी जडे वासुकि नाग के फन पर विराजमान थी | उस विशाल वृक्ष के कंधो पर बादल सोते थे और वर्फ से लधे हुए पर्वत जिनका असली रूप किसी को नहीं दिखता | वे पर्वत, हिमगिरी अपना

रहस्य एक मात्र करिटी वृक्ष से कहते थे | इस प्रकार वीणा में और उसके इतिहास में स्वयं को पूरित कर देना ही प्रियंवद का नीरव एकालाप हैं |

"ओ विशाल तरु!
शत सहस्र पल्लवन-पतझरों ने जिसका नित रूप सँवारा,
कितनी बरसातों कितने खद्योतों ने आरती उतारी,
दिन भौंरे कर गये गुंजरित,
रातों में झिल्ली ने
अनथक मंगल-गान सुनाये,
साँझ सवेरे अनगिन
अनचीन्हे खग-कुल कि मोद-भरी क्रीड़ा काकलि
डाली-डाली को कँपा गयी--

वृक्ष कि विशालता को संबोधित करते हुए प्रियंवद कहते हैं किरीटी वृक्ष कि विशालता और प्राचीनता इतनी गहरी हैं कि इस वृक्ष ने न जाने कितने सहस्त्र हजारो पतझड़ और सावन देखें हैं और इन सावन - पतझड़ों ने कईयों बार इस वृक्ष को सजाया हैं, संवारा हैं | अनगित जुगनूओं ने किरीटी वृक्ष कि आरती उतारी होगी कितने ही भवरों कि गुंजन से किरीटी वृक्ष खिल उठा होगा | हर रात में झिंगरीयोंने न थके सुंदर मन को लुभाने वाले मंगल गान गाये होंगे | कई पक्षीयों के घर इस वृक्ष में होंगे कितनों के ही जन्म स्थान और कईयों का जीवन

यापन, खेल-कुद आदि साधन किरीटी वृक्ष रहा होगा |

ओ दीर्घकाय !
ओ पूरे झारखंड के अग्रज,
तात, सखा, गुरु, आश्रय,
त्राता महच्छाय,
ओ व्याकुल मुखरित वन-ध्वनियों के
वृन्दगान के मूर्त रूप,
मैं तुझे सुनूँ,
देखूँ, ध्याऊँ
अनिमेष, स्तब्ध, संयत, संयुत, निर्वाक :
कहाँ साहस पाऊँ
छू सकूँ तुझे !
तेरी काया को छेद, बाँध कर रची गयी वीणा को
किस स्पर्धा से
हाथ करें आघात
छीनने को तारों से
एक चोट में वह संचित संगीत जिसे रचने में
स्वंय न जाने कितनों के स्पन्दित प्राण रचे गये।

"नहीं, नहीं ! वीणा यह मेरी गोद रही हैं, रहे,
किन्तु मैं ही तो
तेरी गोदी बैठा मोद-भरा बालक हूँ,

तो तरु-तात ! सँभाल मुझे,
मेरी हर किलक
पुलक में डूब जाय :

इसका अनुमान हम इस वृक्ष की विशाल काया से लगा सकते हैं | यह वृक्ष संपूर्ण झारखंड राज्य के सभी वृक्ष का आदि हैं, नायक हैं ,स्त्रोत्र हैं | और इस विराट वृक्ष कि देन यह वीणा हैं | इस वीणा के तार छेड़ने का इसे साधने का प्रयास कैसे करू मन का यही संकोच बार बार प्रियंवद को रोक रहा हैं | तभी अचानक उनका ध्यान गोद में रखी वीणा कि ओर गया | वीणा को देख वे कहते हैं यह वीणा मेरे गोद में रखी हैं वह ऐसे ही रखी रहे क्योंकि मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा हैं कि मैं तेरी (वीणा) गोद में बैठा हुआ, नादान सा बालक हूँ | और तेरी गोद में बैठकर बहुत आनंदित महसूस कर रहा हूँ | (प्रियंवद ने यहाँ स्वयं को बालक मान लिया क्योंकि नन्हे बालक में अहं भाव नही होता न वह साधक होता हैं | और नहीं सत्य, असत्य, भाव-दुर्भाव में अंतर जानता हैं |) इस प्रकार प्रियंवद ने वृक्ष को तात कहकर संबोधित करते हुए कहा कि अब तु मुझे संभाल, मेरी रक्षा कर ताकि मैं तेरे तारों से झंकार उत्पन्न कर सकूँ | जब तक तु ऐसा नहीं करेगा तब तक मैं इस सभा में राजा–रानी अन्य मंत्री व उपस्थित जन समुदाय को संतुष्ट नहीं कर पाऊँगा इसीलिए मैं चाहता हूँ कि मैं तुमसे अभिन्न हो जाऊँ तुम में लीन हो जाऊँ यदी ऐसा हो सकेगा तो मैं तेरी गोद में बालक बनकर किल्कारी लुँगा, मचलूँगा, रोऊँगा, हसुंगा और सभी प्रकार कि बाल क्रीडाओं से तुझे भाव विभोर कर सकुंगा |

मैं सुनूँ,
गुनूँ,
विस्मय से भर आँकू
तेरे अनुभव का एक-एक अन्त:स्वर
तेरे दोलन कि लोरी पर झूमूँ मैं तन्मय--
गा तू :
तेरी लय पर मेरी साँसें
भरें, पुरें, रीतें, विश्रान्ति पायें।
"गा तू !
यह वीणा रखी हैं : तेरा अंग -- अपंग।
किन्तु अंगी, तू अक्षत, आत्म-भरित,
रस-विद,
तू गा :
मेरे अंधियारे अंतस में आलोक जगा
स्मृति का
श्रुति का --
तू गा, तू गा, तू गा, तू गा !

वही दुसरी बात वीणा से कहते हैं कि मैं तेरी अंर्तवाणी सुनकर उसमे जो विचार हैं मनो–कामनाएँ हैं जो कि अब तक दबी हुई थी | उन्हे सुन सकुंगा | तेरे अनुभव कि जानकारी मुझे मिलेंगी और उन्ही अनुभवो से मैं मेरे जीवन सँवार सकुंगा उसकी समीक्षा कर सकुंगा प्रियंवद वीणा से कहते हैं जिस प्रकार माँ पालने में नन्हे बालक को लोरी गाकर सुलाती हैं

और बच्चा उस लोरी कि धुन से झूम कर खेलकर आनंद से सो जाता हैं | उसी प्रकार तू भी मीठी लोरीयाँ सुना में भी तेरी स्वर लहरो से झुमना चाहता हूँ | आनंदित होना चाहता हूँ | तेरी लय के उठने गिरने के साथ ही मेरी साँसें ऊँठेगी - गिरेगी तेरी धुन को सुनकर ही मैं पूर्ण विश्रांती का आनंद करुंगा | बस तु गा अपनी झंकार मुझे दे दे | मैं तेरी लय के साथ एक राग हो जाऊँगा | अपने इसी अनुमोदन के लिए प्रियंवद किरीटी तरू से बनी वीणा पर नतमस्तक हैं | उस वृक्ष और वीणा के प्रति आत्मीय व समर्पण भाव को व्यक्त कर रहा हैं | क्योंकि वह जानता हैं जब तक उसके मन का अहम भाव नहीं मिट जाता तब तक परम सत्य को पाना असंभव हैं | इस प्रकार प्रियंवद आत्मचिंतन और आत्म मंथन कर रहा हैं | क्योंकि सत्यान्वेषक को यह कर्म करना अनिवार्य हैं | हे वीणा तु गा मैं तेरी हर एक लय के साथ एक तान हो जाना चाहता हूँ | तेरी हर एक लय के साथ एक तान हो जाना चाहता हूँ | तु अपने स्वर से मेरे अंर्तआत्मा के अंधकार को मिटा दे | मेरी आत्मा के अज्ञान को मिटा दे ताकि में सत्य कि खोज कर सकूँ | इसीलिए तु गा तेरा गाना बहुत आवश्यक हैं तु गा |

हाँ मुझे स्मरण हैं :
बदली-कौंध – पत्तियों पर वर्षा –बुंदो कि पट पट |
घनी रात में महुए का चुपचाप टपकना
चौके खग-शावक कि चिहूँक|
शिलाओं को दुलराते वन-झरने के
द्रुत लहरीले जल का कल –निनाद |

इस प्रकार आगे कि पंक्तियाँ प्रियंवद के स्मरणार्थ में लिखी गई हैं | प्रियंवद याद करते हुए कहते हैं उत्तरी भागों में जब वर्षा होती हैं तो वहाँ कि प्रकृति कैसी होती हैं वन-झरनो से टपकते पानी का स्वर पत्तियों पर टपकती बुंदो का स्वर खग-शावक व अन्य पक्षियों का चहकना वहाँ के गांव का जन जीवन भी इस माध्यम से कवि अज्ञेय जी ने वर्णित किया हैं - वर्षा ऋतु के आगमन कि ख़ुशी में गाँव में ढोल-ताशे बजते थे, बाँसुरी का स्वर गूँजता था | वर्षा ऋतू कि भाँति पर्वतीय प्रदेशों कि शीत ऋतू का वर्णन भी कवि करते हैं | इसका वर्णन कवि ने प्रियंवद के माध्यम से किया हैं | शीत ऋतू वर्णन में ठंडी हवाओं कि सरसर ध्वनि, कुंज लताओं का बढना,हंसो का पंख फैलाकर प्रसन्न होना, घने वनो में वनस्पतीयों कि सुंदर सुगंध का मन मोह लेना, पत्रों का आपस में टकराना, झरने के पाणी का एक लय में बहना, पक्षियों कि झंकार (कोकिल, चातक, दादुर, मोर, झोंगुर) से संपूर्ण वन झंकृत हो जाता था | इस प्रकार कवि प्रियंवद के माध्यम से उत्तर प्रदेश कि शीत और वर्षा ऋतू का वर्णन करते हैं |

आगे प्रियंवद स्मरण करते हुए कहते हैं | मुझे याद हैं दूर पहाड़ीयों से काले बादलों कि बाढ़ आ रही हैं और उसकी आवाज ऐसी हैं जैसे हाथीयों का झुंड चिंघाड रहा हो, छोटी नदियों कि जलधारा घर घराट कि आवाज कर रही हैं | रेतीले ढेर छप छप कर गिर रहे हैं | पेड टूट रहे हैं और टूटते समय पेड़ो. में अररा कि आवाज आ रही हैं | ओले कर कर करके गिर रहे हैं | जमी हुई पत्तियों के ढेर और वहीं तनी हुई सूखी घास भी टूकडे टूकडे हो, टूट रही हैं | मिट्टी के जमा ढेर धीरे धीरे रिस रहे हैं ,ऐसा लग रहा हैं वे घावो को सहला रहे हैं | घाटीयों

का भरना और चट्टानो के टूटने कि आवाज से गुँजने कि आवाज भी काँपने लगती हैं और उससे उत्पन्न ध्वनि में साँस डूब जाती हैं | धीरे धीरे लीन हो जाती हैं |

मुझे स्मरण हैं
हरी तलहटी में छोटे पेडों कि ओट, ताल पर
बंधे समय वन पशुओं कि नाना विध आतुर तृप्त पुकारें
गर्जन, घुर्घुर, चीखं, भूँक, हुक्का, चिचियाहट |
कमल-कुमुद पत्रों पर चोर पैर द्रुत धावित
 जल पंछी कि चाप |

उक्त पंक्तियो में प्रियंवद पुरानी बातों को याद करते हुए प्रकृति के उपादानो का आश्चर्य व्यक्त करते हैं | जो स्वयं परमात्मा द्वारा रचित हैं | कवि अज्ञेय प्रकृति वर्णन के महारथी माने जाते हैं उक्त पंक्तियो में कवि ने वन्य-पशु पक्षियों का विभिन्न प्रकार के स्वरों का वर्णन किया हैं | पहाड़ों कि हरियाली में जमीन पर रूपे छोटे छोटे पेड़ सुंदर सा वातावरण वहाँ और वन में बसे पशु-पक्षियों कि आवाजे विभिन्न प्रकार कि हैं कोई गर्जना कर रहा हैं तो कोई घुर्रा रहा हैं, कोई चीख रहा हैं, तो कोई भूँख रहा हैं, चीडियों कि चहचहाहट हैं | वहीं जल में विचरण करने वाले पक्षी कमल पत्र पर चोरी छुपे पैर रखकर भाग रहे हैं और चोरी से पत्रो पर पैर कि चप चप कि आवाज आ रही हैं | मेंढक के छलांग मारने कि आवाज ,घोड़े कि टप –टप कि आवाज और भैंसो कि भारी आवाज भी सुनाई देती हैं | इस प्रकार सभी पशु-पक्षीयों के कलरव से वन प्रदेश गूँज उठा हैं |

प्रियंवद अब पर्वतीय प्रदेशों के भौर काल अर्थात प्रातः काल को याद करते हैं | मुझे याद हैं जब आकाश से सुरज कि पहली किरण ओस कि बूँद पत्तों पर से चमकती हैं | तो वह चमक हमें चौकाने वाली होती हैं | वह दृश्य देखकर हमें सिहरन सी उठती हैं | और दोपहर के समय घाँस पर रंग बिरंगे, फूल खिल जाते हैं | उस पर अनगिनत मधु मक्खीयाँ झूमती हुई गुंजार करती हैं | कवि कहते हैं वैसे तो दोपहर का समय आलस्य से भरा होता हैं | दिन के ठहराव का यह समय होता हैं | साँझ के समय तारों का आसमान में झिल-मिलाते यह तारे चंचल से प्रतीत होते हैं| मानो तारो वाली माता अपनी तरल नजरों से एक जगह रुकि हुई और अपनी असंख्य संतानो को आशीर्वाद दे रही हैं | सांझ का समय दिन और रात के मिलन का समय होता हैं | यह समय भी प्रियंवद महसूस करता हैं और कहता हैं मुझे याद हैं प्रकृति का एक एक चित्र स्तब्ध, जड़वत करता हैं | मै सब कुछ में सब कुछ सुनता हूँ | परंतु प्रकृति के स्वरों में जो कंपन हैं उसने मुझको मुझसे ही अलग कर दिया हैं | मेरे अस्तित्व को मुझसे छीन लिया हैं | मैं उस स्वर को सुनकर पवन के समान विचरण करता हूँ और ऐसी स्थिती में मै स्वयं को भूल गया हूँ | ऐसी अवस्था में प्रियंवद स्वयं को भूलकर किरीटी वृक्ष में लीन हो गये हैं | प्रकृति और किरीटी वृक्ष में प्रियंवद समाहित हो चुके हैं |

मैं नहीं नहीं | मैं कहीं नहीं |
ओ रे तरू | ओ वन |
ओ स्वर-संभार |
नाद-मय संसृति |

ओ रस प्लावन |
मुझे क्षमा कर –भूल अकिंचनता को मेरी –
मुझे ओर दे –ढंक ले – छा ले –
ओ शरण्य

प्रियंवद उक्त पंक्तियों में कह रहा हैं | मैं अब कहीं नहीं चारो ओर तुम ही तुम हो, तुम वन हो, स्वरो के भंडार हो तुम संगीत कि संपूर्ण सृष्टि हो, अथाह सागर हो तुम, विशालता कि पराकाष्टा मेरी गलतियों को क्षमा करो मेरे तुच्छ कर्मो को भूल जाओं, मुझे अपनी शरण में जगह दो मेरा व्यक्तित्व तुम बन जाओ अपने आँचल से मेरा सर ढंक लो |

मेरे गूँगेपन को तेरे सोये स्वर – सागर का ज्वार डुबा ळे !
आ, मुझे भला,
तु उतर बीन के तारे में,
अपने से गा
अपने को गा
अपने खग कुल को मुखरित कर
अपनी छायातप, वृष्टि पवन, पल्लव-कुसुमनकी लय पर
अपने जीवन-संचय को कर छंद युक्त .
अपनी प्रज्ञा को वाणी दे
तू गा, तू गा ...
तू सन्निधि पा ... तू खो
तू आ...तू हो ... तू गा ! तू गा !

मेरे इस गूँगेपन को अपने स्वरो में लीन कर दो, डूबो दो क्योंकि मैं पूरी तरह असमर्थ हूँ | यहाँ आकर इन तारों में उतरकर मेरी मदद करो और इस संगीत में उतर कर मेरा जीवन सफल कर दो ,मुझे मुखरित करो, मुझे आज बोलता कर दो | तुम्हारी आश्रय कि छाया में पले बड़े हुए हिरणो कि दौड को आज ताल से बांध लो तुमने (किरीट वृक्ष) जो सभी ऋतूएँ देखी हैं | पतझड में पत्तों का गिरना, सर्दियों कि ठिठुरन, वर्षा का भीगा पन वह आज व्यक्त करो उसे स्वर दे दो अपने संपूर्ण जीवन के सार को छंद युक्त करके अपने भावों को वाणी देकर आज गाओ इस प्रकार प्रियंवद उस किरीटी वृक्ष से उस वीणा से आवाहन कर रहे हैं तुम आज स्वर से जुड़ जाओं गाओं गाओं गाओं | यह वीणा तुम्हारा अस्तित्व हैं वह अस्तित्व तुम आज दिखा दो तुम आज यहाँ आकर गाओ |

राजा आगे
समाधिस्थ संगीतकार का हाथ उठा था ...
कॉपी थी उँगलियाँ |
अलस अँगडाई लेकर मानो जाग उठी थी वीणा :
किलक उठे थे स्वर शिशु |
नीरव पद रखता जालिक मायावी
सखे करो से धीरे धीरे धीरे

डाल रहा था जाल हेम तारों-का
सहसा वीणा झन झना उठी ...
संगीतकार की आँखो में ठंडी पिघली ज्वाला-सी झलक गयी ...
रोमांच एक बिजली-सा सबके तन में दौड़ गया |
अवतरित हुआ संगीत
स्वयम्भू
जिसमें सीत है अखंड
ब्रम्हा का मौन
अशेष प्रभामय

उस भरी सभा में राजा अचानक जाग जाते हैं | और अब तक ऐसा प्रतीत हो रहा था कि प्रियंवद ध्यान मग्न मानो समाधी ले ली हो वह संगीतकार उसका हाथ अचानक उठता हैं | उंगलियाँ काँपने लगती हैं और ऐसा लगता हैं जैसे सहस्त्र वर्षो कि नींद पुरी कर आलस अंगड़ाई लेते हुए वीणा जाग गई हैं और उस वीणा में स्वर रूपी शिशु किलकारी भर रहा हैं | अर्थात वीणा अब धीरे धीरे बजने लगती हैं | अब प्रियंवद जादुगर कि भाँति लग रहे हैं और वीणा के स्वरो को अपने हिसाब से बजा रहे हैं अब वीणा के स्वर रुपी तारों का जाल उस सभा में विस्तारित होने लगा था वीणा झन-झणा उठी और बजने लगी | इस समय प्रियंवद कि आँखो में ठंडी और पिघली सी ज्वाला जल रही थी | आज उनके व्यक्तित्व का नया रूप सभा में व्यक्त हो रहा था | सभा में उपस्थित जन-जन के शरीर में बिजली सी चमक दौड़ गई सभी आश्चर्य चकित थे | यह स्वयंभू स्वर जो अपने आप व्यक्त हुआ हैं | इसकि व्याप्ति चारों ओर फैल गयी थी | यह स्वर अखंड था इसमें ब्रम्हा का मौन ईश्वर का प्रकाशमान आलोक भी विद्यमान था |

डूब गये सब एक साथ |
सब अलग अलग एकाकि पार तिरे |
राजा ने अलग सुना
जय देवी यशः काय
वरमाल लिये
गाती थी मंगल-गीत
दुन्दुभी दूर कहीं बजती थी
राज-मुकुट सहसा हलका हो आया था
मानो हो फूल सिरिस का |
ईर्ष्या, महदाकांक्षा, द्वेष, चाटुता
सभी पुराने लुगड़े से झड़ गये, निखर आय था जीवन कांचन
धर्मभाव से जिसे निछावर वह कर देगा |

सभा में उपस्थित जन-जन संगीत में डूब गया हैं | वहाँ उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति अपने तरीके से अपने भावों से अलग अलग उस संगीत को सून रहा हैं | उसका आनंद ले रहा हैं | राजा ने इस संगीत को अपने तरीके से सुना जिसमें विजय कि देवी जो यश और किर्ती प्रदान करने वाली हैं | उसके हाथों में वरमाला हैं | वह मंगल गीत गा रही हैं| विजय का अवसर हैं | दूर कहीं से नगाडों कि आवाज आ रही हैं | यह सब महसूस कर राजा के सिर के मुकुट का

बोझ हलका हो गया हैं | मानो कोई भारी बोझ उतर गया हो यह मुकुट शिरीष के फूल समान हैं| जो ईर्श्या, द्वेष, महत्वकांक्षा, चाटूता (खुशांमद करना) यह सभी भाव राजा के मन के पुराने कपडे कि तऱह झड़ गये थे | और उनका जीवन काँच कि तऱह निखर उठा था | अब राजा अपना जीवन धर्म भाव से समाज पर न्योछावर करने का निश्चय कर लेता हैं | इस प्रकार राजा पर उस वीणा के संगीत का असर हुआ |

रानी ने अलग सुना :
छँटती बदली में एक कौंध कह गयी ...
तुम्हारे यह माणिक, कंठहार, पट-वस्त्र,
मेखला किंकिणी...
सब अंधकार के कण है ये | आलोक एक है
प्यार अनन्य ! उसी की
विद्युल्लता घेरती रहती है इस भार मेघ को,
थिरक उसी की छाती पर उसमें छिपकर सो जाती है
आश्वस्त, सहज विश्वास भरी |
रानी
उस एक प्यार को साधेगी |
सबने भी अलग - अलग संगीत सुना
इसको
वह कृपा वाक्य था प्रभूओं का ...
उसकी
आतंक मुक्ति का आश्वासन
इसको
वह भरी तिजोरी में सोने की खनक ...
उसे
बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सोंधी खुशबू |
किसी एक को नव वधु की सहमी-सी पायाल-ध्वनी |
किसी दूसरे को शिशु की किलकारी |
एक किसी को जाल-फँसी मछली की तड़पन...
एक अपर को चहक मुक्त नभ में उड़ती चिड़िया की |
एक तीसरे को मंडी की ढेल-मेल, ग्राहकों की अस्पर्धा-भरी बोलियाँ |

रानी को जो संगीत सुनाई दे रहा था वह राजा को सुनाई देने वाले संगीत के भावों से अलग था | जिसमें रानी अपने मोह और अज्ञान से दूर हो रही हैं | उनके पास जो माणिक, मोती, हार वेश - किमती जवाहरात,मेखला (करधनी), पाजेब, सुंदर वस्त्र, आदि सभी ऐश्वर्य अंधकार के मर्म लगते हैं अर्थात इन सभी आभूषणो के प्रति कोई मोह अब उनके मन में नहीं रहा हैं | उनके जीवन में एक ही प्रकाश हैं वह हैं प्रेम का | यह प्रेम इतना अनन्य था कि प्रेम रुपी विद्युत लता एक ओर अपने उजाले से घेर रही हैं | वहीं प्यार रुपी बिजली आनंद कि छाती पर छिप कर सो जाती हैं | वह प्यार कि बिजली आज सहजता से निश्चिंत होकर विश्वास से भर जाती जाती हैं | रांनी उस प्रेम रुपी बिजली को अपने जीवन में साध लेती हैं | उसे अपने जीवन में अहं स्थान देती हैं | और उसके मन के बुरे भाव विचार, प्यार के भाव

में परिवर्तित हो जाते हैं | उस वीणा का संगीत सभा में उपस्थित सभी ने अलग अलग सुना था किसी को वह संगीत अपने प्रभू कि कृपा वाणी सा लग रहा था, किसी को भय से मुक्त होने का आश्वासन लग रहा था | किसी धन के लालची व्यक्ती को धन से भरी तिजोरी में सोने कि खनक सा महसूस हो रहा था | किसी भूखे व्यक्ति को वह संगीत, स्वादिष्ट भोजन कि सुगंध दे रहा था | किसी कुँवारे को अपनी नयी-नवेली दुल्हन के पायल कि खनक प्रतीत हो रही थी | किसी को अपने बच्चे कि किलकारी सुनाई दे रही थी | किसी को वह संगीत जाल में फँसी मछली कि जकड़न या झटपटाहट सा महसूस हो रहा था | वही स्वछंद विचारों वाले व्यक्ति को आकाश में उड़ती चिड़िया कि चहक सा महसूस हो रहा था | उस सभा में जो व्यापारी थे उन्हे संगीत का अहसास मंडी में भीड़ कि धक्का बुक्की सा लग रहा था | ऐसी प्रतीत हो रहा था | व्यापारी एक के बाद एक बोली लगा रहे हो किसका सामान कितने अधिक किमत में बिके यह स्पर्धा लगी हुई हैं |

चौथे को मंदिर की ताल युक्त घंटा ध्वनि |
और पाँचवे को लोहे पर सधे हथौड़े की राम चोटे
और छठें को लंगर पर कस मसा रही नौका पर लहरों की अविरामथपक
बटिया पार चमरौधे की सँधी चाप सातवें के लिए ..
और आठवे को कुलिया की कटी भेड़ से बहते जल की छुल-छुल
इसे गमक नट्टीन की एड़ी के घुँघरू की
उसे युद्ध हा ढाल :

सभा में उपस्थित किसी चौथे व्यक्ति को मंदिर में बज रही घंटी कि आवाज सुनाई देती हैं | पाँचवे को लोहे पर सधे हथोडों को चोट कि ध्वनि सुनाई दे रही थी | छठे व्यक्ति को लंगर डालकर खडी व्याकूल नौका पर लगातार लहरॉ कि थपक पड़ रही हो ऐंसा महसूस हो रहा था | सातवे को चमड़े से बने जूते कि चाप सुनाई दे रही थी | आठवा किसान हैं उसे अपने खेत में जाते पानी कि छुल छुल आवाज आ रही थी | किसी को नर्तकि के पैरों कि घुंगरू कि आवाज आ रही थी | तो कोई युद्ध में बजने वाले ढोल कि आवाज सुन रहा था |

इसे सजा गोधुली की लघु टुन-टुन...
उसे प्रलय का डमरू – नाद |
इसको की पहली अँगडाई
पर उसको महाजृम्भ विकराल काल !

सभा में उपस्थित कोई जन संध्या कि गो धुली बेला के समय घर लौटती गायों के गले में घंटी कि टुनटुन आवाज सुन रहा था | किसी को संध्या आरती में बजने वाली घंटी कि मधुर ध्वनि सुनाई दे रही हैं | कोई प्रलय के समय हो रही शिवशंकर के डमरू कि आवाज सून रहा हैं | किसी को यह संगीत जीवन कि पहली अंगड़ाई सा लग रहा हैं | किसी को यह विक्राल भयंकर मृत्यू के देवता कि आहट लग रही हैं |

सब डूबे, तिरे, झिपे, जागे...
ओ रहे वंशवद, स्तब्ध :
इयत्रा सबकी अलग अलग जागी,

संघीत हुई,
पा गयी विलय |

इस प्रकार सभा में उपस्थित सभी जन संगीत में डूब गये यह दृश्य ऐसा प्रतीत हैं मानों सभा में उपस्थित सभी जन वीणा के स्वरों में तेर रहे हैं |स्वर के माध्यम से सभी जन स्वयं से परे हो गये हैं इस तऱह सबके मन के भाव और भावनाएँ इस संगीत से वह गई थी | सभी जन संगीत के वशीभूत स्तब्ध हो गये थे | सभी का व्यक्तित्व अपने भावों में अलग अलग तरीके से निखर गया था | सबका व्यक्तित्व संगीत के साथ जुडकर उसमे लीन हो गया था |

वीणा फिर मूक हो गयी
साधू ! साधू !!
राजा सिंहासन से उतरे –
रानी ने अर्पित कि सतलड़ी माल
जनता विह्वल कह उठी “धन्य ”|
हे स्वरजित धन्य ! धन्य !

आगे कुछ ही क्षणो में संगीत से झंकृत वीणा शांत हो जाती हैं | जिसने उपस्थित सभी को मंत्र मुग्ध कर दिया | राजा , साधू, साधू का उच्चारण कर अपने सिहांसन से उतर जाता हैं | रानी अपनी अमूल्य रत्न जटित सतलड़ीयों वाली, माला अर्पित कर देती हैं | सभा में उपस्थित जन अपनी भावनाओं में खोकर प्रियंवद को धन्य हो स्वरों को जीतनें वाले आप धन्य हैं का गजर सभा में गुंज उठता हैं |

संगीतकार
वीणा को धीरे से नीचे रख, ढंक-मानो
गोदी में सोये शिशु को पालने डालकर मुग्धा माँ
हट जाय, दीठ से डुलारती ...

प्रियंवद धीरे से वीणा को उठाकर नीचे रख देते हैं | जैसे एक माँ बहुत समय से अपने नन्हे बालक को गोद में ले लाड़ - दुलार कर रही थी | दुलार से अब बालक कि आँख लग गई और माँ ने बालक को धीरे से पालने में डाल दिया हैं और प्यार से एक टक उसे निहारती हुई वहाँ से हट जाती हैं |

उठ खड़ा हुआ |
बढ़ते राजा का हाथ उठा करता आवर्जन,
बोला :
“श्रेय कुछ नहीं मेरा
मै तो डूब गया था स्वयं शून्य में
वीणा के माध्यम से अपने को मैने
सब कुछ को सौंप दिया था
सुना आपने जो वह मेरा नहीं

न वीणा का था :
वह तो सब कुछ की तथता थी
महा शून्य
वह महा मौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सबमें गाता है |"

प्रियंवद उठ खड़े हो जाते हैं और वीणा कि ओर हाथ करते हुए कहते हैं कि, इस वीणा को बजाने में मेरा कुछ योगदान नहीं हैं| मैं तो स्वयं ईश्वर कि भक्ति में एक अंजान शक्ति में लीन हो गया था | इस वीणा के द्वारा मैने स्वयं को परम सत्य को ईश्वर को समर्पित कर दिया था | आप सभी ने जो भी संगीत सुना हैं | वह मेरा अपना नहीं हैं मेरे कारण उत्पन्न नहीं हुआ हैं और यह संगीत इस वीणा से उत्पन्न संगीत भी नहीं था वह तो ईश्वर कि शक्ति थी जिसमें स्वयं को अर्पित करके कुछ पाया जा सकता हैं यह भाव था वही संगीत संपूर्णता कि पराकाष्ठा हैं | जो महामौन कि भाँति हैं| जो हमेशा शांत रहता हैं | कभी विभाजित नहीं हो सकता, सरलता से उपलब्ध नहीं हो सकता, जो चंचल नहीं हैं | जिसका माप नहीं किया जा सकता जो शब्द हीन होकर सृष्टि के कण-कण को स्वरित करता हैं |

नमस्कार कर मुड़ा प्रियंवद केशकम्बली |
लेकर कम्बली गेह गुफा को चला गया |
उठ गयी सभा \ सब अपने काम लगे |
युग पलट गया |
प्रिय पाठक ! यों मेरी वीणा भी
मौन थी

प्रियंवद राज सभा में उपस्थित सभी को सादर नमस्कार करता हैं | और अपना कम्बल लेकर गुफ घर कि ओर निकल पड़ता हैं| प्रियंवद के जाते ही सभा में उपस्थित सभी जन खड़े हो जाती हैं | सब अपने अपने काम में लग जाते हैं अब सभी का व्यक्तित्व संगीत के कारण बदल चुका हैं | इसिलिए अब युग-काल भी बदल चुका हैं | कवि अज्ञेय कहते हैं कि मेरी वाणी भी अब शांत मौन - नीरव हो गई हैं|

७. ३ सारांश

उक्त इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी अज्ञेय द्वारा रचित एक मात्र कविता असाध्यवीणा के अर्थ, कथानक और इस कविता से जुडी ऐतिहासिकता से अवगत हुए हैं | असाध्यवीणा कविता के संदर्भ से जुड़े सभी प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी आसानी से दे सकेंगे |

७.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) असाध्यवीणा कविता का कथानक अपने शब्दों में लिखिए |
२) असाध्यवीणा कविता कि ऐतिहासिकता का वर्णन किजिए |
३) असाध्यवीणा कविता में अध्यात्मवादी दृष्टिकोण प्रमुख हैं उदाहरण सहित समझाइए |
४) असाध्यवीणा कविता का भावार्थ कि उदाहरण सहित समीक्षा करें |

७.५ लघुत्तरी प्रश्न

१) 'असाध्यवीणा' कविता का रचना काल माना जाता हैं

उत्तर - सन १९५७-५८

२) 'असाध्यवीणा' कविता 'आँगन के पार द्वार' नामक काव्य संग्रह में संकलित हैं जिसका प्रकाशन हुआ |

उत्तर - १९६१ में

३) असाध्यवीणा कविता का संबंध कौनसे देश से हैं ?

उत्तर - जापान

४) असाध्यवीणा कविता में वीणा किस प्रदेश से आयी हैं ?

उत्तर - वीणा उत्तराखंड के घने वन प्रदेश से आयी हैं |

५) वज्रकिर्ति नामक साधक ने किस वृक्ष से इस वीणा का निर्माण किया ?

उत्तर - अति प्राचीन किरीटी – तरू नामक वृक्ष

७ .६ संदर्भ ग्रंथ

१) अज्ञेय की कविता एक मूल्यांकन – डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर
२) अज्ञेय की काव्य तितीर्षा – डॉ. नंदकिशोर आचार्य
३) अज्ञेय की कविता परम्परा और प्रयोग – रमेश ऋषिकल्प
४) अज्ञेय, चिंतन और साहित्य – प्रेम धन

❖❖❖❖

८

असाध्यवीणा कविता का भावबोध
असाध्यवीणा में नवरहस्यवाद
असाध्यवीणा में काव्य शिल्प

इकाई कि रूप रेखा

८.० इकाई का उद्देश्य

८.१ प्रस्तावना

८.२ असाध्यवीणा कविता का भावबोध

८.३ असाध्यवीणा में नवरहस्यवाद

८.४ असाध्यवीणा में काव्य शिल्प '

  ८.४.१ भाषा

  ८.४.२ प्रतीक योजना

  ८.४.३ बिम्ब – विधान

८.५ सारांश

८.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

८.७ लघुत्तरी प्रश्न

८.८ संदर्भ ग्रंथ

८.० इकाई का उद्देश्य

असाध्यवीणा कविता हिंदी साहित्य कि लम्बी कविताओं कि श्रेणी में प्रमुख स्थान रखती हैं | अर्थ के साथ कविता के भाव भी उच्च कोटि के हैं और साहित्य में नवरहस्यवाद कि उतपत्ति भी अज्ञेय द्वारा ही मानी जाती हैं साथ ही असाध्यवीणा कविता में काव्यशिल्प कि अनुशंसा भी साहित्यिकों को नया अनुभव कराती हैं | कविता के साथ उक्त सभी मुद्दों के अध्ययन से ही असाध्यवीणा को विद्यार्थी परिपूर्ण समझ सकेंगे |

८.१ प्रस्तावना

असाध्यवीणा कविता अज्ञेय कि लम्बी कविताओं कि श्रेणी मे प्रमुख स्थान रखती हैं | कविता में हल्के-फुल्के शब्दार्थ कविता का सौंदर्य चार गुणा कर देते हैं | अज्ञेय कि कविताएँ बिम्ब और प्रतीक कि अभिव्यक्ति कुशलता से करती हैं | इस कविता कि कथा ऐतिहासिक स्वरूप को प्रदर्शित करती हैं वहीं कविता में व्याप्त एकात्म और अध्यात्म का जोड़ रहस्स्वाद कि अभिव्यक्ति को प्रमुखता देता हैं |

८.२ असाध्यवीणा कविता का भावबोध

असाध्यवीणा कविता का भावबोध
असाध्यवीणा में नवरहस्यवाद
असाध्यवीणा में काव्य शिल्प

इस कविता की कथा ऐतिहासिक स्वरूप को प्रदर्शित करती हैं जिसमे केश कम्बली और वज्रकिर्ति जैसे नायको से कथा आरंभ होती हैं | राजा केश कम्बली प्रियंवद को वीणा बजाने या साधने का आमंत्रण देते हैं | प्रियंवद आमंत्रण स्वीकार कर राजसभा में पधारे हैं | राजा केश कम्बली वीणा का सम्पूर्ण इतिहास विस्तार पूर्वक प्रियंवद को बताते हैं | किस प्रकार उत्तराखंड के गिरी प्रांत से बहुत समय पूर्व यह वीणा आयी थी इसका निर्माण किरीटी नामक विशाल वृक्ष से वज्रकिर्ति नामक साधक ने अपने अथक परिश्रम से किया था | और वीणा पूर्ण निर्मित होते ही वज्रकिर्ति कि जीवन लीला समाप्त हो गई और उस साधक कि वीणा बजाने कि अभिलाषा भी उसी समय धाराशायी हो गई | उसके बाद अनेक संगीतज्ञ साधक इस वीणा को बजाने आये लेकिन निराश हो लौट यही कारण हैं यह वीणा असाध्यवीणा नाम से ख्याती प्राप्त हुई | राजा आगे कहते हैं कि मेरा विश्वास हैं वज्रकिर्ति कि मेहनत विफल न होगी इस वीणा को साधने वाला सच्चा साधक जरूर आयेगा और आज प्रियंवद आप यहाँ इस राजकक्ष में आये हो तुम्हारी साधना, सन्यास, ज्ञान के बारे में जो सुना हैं उससे मुझे पुरा विश्वास हैं कि आप इस वीणा को साध्य कर सकेंगे |

अज्ञेय कि असाध्यवीणा कविता में वीणा का साध्य होना पूर्णतः आत्मसमर्पण और एकाग्र चित्त भाव को सिद्ध करता हैं | यह साधना ईश्वर कि प्राप्ति हैं | आत्मा का परमात्मा में लीन होने कि प्रक्रिया हैं | वीणा का झण-झनाना ही असाध्य से साध्य हो जाना हैं | असाध्यवीणा कविता के माध्यम से अज्ञेय एक सांस्कृतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक ध्यास कि बात करते हैं | असाध्यवीणा व्यक्ती कि आत्म चेतना के रीति का विस्तार हैं जिसमें सभी शब्द शक्तियाँ, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना अर्थ जन्य कार्य कि आवश्यकता ही नहीं जान पड़ती | असाध्यवीणा जैसे सर्जनात्मक बिम्न कि माला सी गुँथी हुई जान पड़ती हैं | यह सर्जना साधना कि अस्पष्टता को सर्वोपरी मानती हैं | असाध्यावीणा में विषय से अधिक वस्तु कि मौलिकता प्राधान्य हैं | अज्ञेय रागात्मक संबंधो पर अधिक प्रभावी हैं | यह सबंध का साक्षात्कार जब होता हैं तब राजा असाध्यवीणा प्रियंवद के हाथों में सोंपते हैं और प्रियंवद वीणा को प्रकट लक्ष्य मान कम्बल बिछाकर बढे ही आदर सत्कार से वीणा को विराजते हैं और प्रणाम करते हैं | उस समय संपूर्ण सभा आश्चर्यचकित एक टक हो शांती भर इस क्षण को निहार रही थी और इस शांतिभर क्षण को निहार रही थी और शांति औचित्य वातावरण में प्रियंवद वीणा साधने कि तयारी में थे साथ ही स्वयं के शोध और परीक्षण कि भी तैयारी कर रहे थे | स्वयं परिक्षण कि पहली सीढी थी स्वयं को किरीटी तरू को समर्पण कर देना इस समय प्रियंवद राज सभा को भूल चुके थे | उसके बाद प्रियंवद तन – मन – धन से वन्य जीवन, वन्य प्रकृति कि ओर आकृष्ठ होते हैं अन्य वन्य जीव, जंतु, पेड़ - पौधे, नदी ,पहाड़, पर्वत, शिखर , धरती, आसमान, माटी, पानी, झरने, चट्टाने, रेत आदि वातावरण में स्वयं को समा लेते हैं | वन्य प्रकृति कि सुंदरता, जीव, जंतुओं से मानो स्वयं को साक्षात्कार कर लेते हैं | प्रियंवद एक सच्चे चिंतन, मनन और ध्यान के बाद साधक संगीतकार का हाथ वीणा से लगा और ऊँगलीयों ने वीणा के तारों को स्पर्श किया और अचानक तार बज उठे ,जैसे ही वीणा बजी सभा ने उपस्थित सभी जन मंत्र मुग्ध हो उठे सभी ने वीणा को अपने अंदाज में सुना | राजा ने वर माला लिये हुए जयदेवी का गीत सुना,रानी ने अपार प्रेम का स्वर, सभा में

उपस्थित व्यक्तियों ने अपने स्वभाव के अनुसार किसी ने आतंक मुक्ति का आश्वासन,किसी ने भक्ति का स्वर, किसी ने तिजोरी में रखें सोने, हिरे, जवहारात कि खनक, किसी ने खेत में ऊगे फसल कि खुशबू, किसी ने नव वधू कि पायल कि झणकार, किसे ने छोटे बच्चे कि किलकारी आदि अनेक भावों को सभी ने अपने कर्म और धर्म के अनुसार सुना | यह ध्वनि सभी कि अपनी अपनी पसंद कि थी | राजा ने साधु –साधु कह प्रियंवद कि प्रशंसा कि | रानी ने अपने गले में पहनी किमती सतलड़ी माला प्रियंवद को भेट कि | सभा में उपस्थित सभी जन धन्य धन्य कह प्रियंवद कि प्रशंसा में लीन हो गए लेकिन प्रियंवद जैसे सच्चे साधक ने वीणा के साध्य होने को स्वयं का नहीं वरन ईश्वर का ध्येय को प्रतिष्ठापित होना बताया और प्रियंवद ने वीणा के माध्यम से स्वयं को समर्पित कर दिया |

वीणा का अथाह मौन भाव ऐसा था जो निः शब्द होकर भी सबके हृदय में स्वरांजली अर्पण करता हैं जो जैसा हैं वैसा ही उस वीणा का स्वर मुखर हो उठता हैं और अपने स्वर से सभी जन - जन को तन - मन से स्वर शांती प्रदान करता हैं | इन्ही भावों को अपने साथ लिये प्रियंवद अपनी गुफा में चला जाता हैं और सभी जन अपने नित्य कर्मो में लग जाते हैं इस प्रकार अज्ञेय कि यह कविता अपने ह्रदय और आत्मा में असीम ईश्वर के ध्येय कि पुष्टी करता हैं | उस ईश्वर कि भक्ति एकाग्रचित्तता कि आवश्यकता और साधना कि पराकाष्ठा से आनंदानुभूती में लीन हो जाती हैं |

८.३ असाध्यवीणा में नवरहस्यवाद

नवरहस्यवाद जिसे सृजनात्मक रहस्यवाद भी कहते हैं | रहस्यवाद कि व्याख्या दर्शन शास्त्र से कि जाती हैं | जब कोई व्यक्ति अपने ईष्ट या परमतत्त्व के साथ एकत्व अनुभूति करता हैं| उसे रहस्यवाद कहते हैं यह अनुभूति व्यक्ति कि भगवान के प्रति हो सकती हैं | प्रेमी कि प्रेमिका के प्रति, पुत्र अपनी माँ के प्रति, विद्यार्थी कि अपने गुरु के प्रति | इस प्रकार एकत्व कि हमें कबीर के निर्गुण ईश्वर में भी देखने को मिलती हैं और सूर के सगुण रूप श्री कृष्ण में भी देखने को मिलती हैं | इसी अखंड एकत्व कि अनुभूति को रहस्यवाद कहते हैं |

रहस्यवाद के कई रूप हैं हम यहाँ अज्ञेय के काव्य पर चर्चा कर रहे हैं | अज्ञेय का रहस्यवाद सृजनात्मक रहस्यवाद या नवरहस्यवाद कहलाता हैं| इसे रहस्यवाद का अद्भुत रूप भी कहा गया हैं | असाध्यवीणा कविता में सृजनात्मक रहस्यवाद कि पुष्टि संगीत के माध्यम से हुई हैं| कविता में कथा के अध्ययन में हमने जाना कि उस असाध्यवीणा को प्रियंवद बजाता हैं और प्रियंवद के एकाग्र चित्त, चिंतन और साधना से वीणा झंकृत हो उठती हैं | उस वीणा से जो संगीत सृजित होता हैं | उस सृजन से एकत्व कि अनुभूति प्रियंवद को होती हैं | यही एकत्व रहस्यवाद हैं |

अज्ञेय के सम्पूर्ण साहित्य सृजन में यदि प्रारंभिक काव्य रचना देखे तो उनमें अज्ञेय के विचार अनीश्वरवादी रहे हैं| लेकिन बाद कि कविताओं में रहस्यवाद का प्रभाव दिखाई देता हैं| उनकि प्रारंभिक रहस्यवाद कि अवधारणा रवींद्रनाथ टॅगोर के रहस्यवादी अवधारणा से मेल खाती हैं | जो मौलिक रहस्यवाद को अभिव्यक्त करते हैं | विद्वानों के अनुसार

असाध्यवीणा रहस्यवाद को चरमोत्कर्ष अभिव्यक्ति कहते हैं | जिसे सृजनात्मक या नवरहस्यवाद कहते हैं | रहस्यवाद के संबंध में अज्ञेय कहते हैं कि – मै भी रहस्यवाद के प्रवाह में हूँ, उस असीम शक्ति से जुडना चाहता हूँ, अभिभूत होना चाहता हूँ जो मेरे भीतर हैं|" इस प्रकार यदि अज्ञेय का रहस्यवाद किसी दर्शन से प्रभावित हैं तो वह बौद्ध दर्शन के शून्यवाद में परमतत्व कि खोज से जो बाहरी सुख साधनों को त्याज्य घोषित करता हैं | उसके अनुसार परमतत्त्व मानव के हृदय में ही विद्यमान हैं | उसकी उपलब्धि चिंतन, मनन और एकाग्रता से हो सकती हैं | और अज्ञेय कि असाध्यवीणा के कविता में बौद्ध दर्शन के शून्यवाद कि व्यापकता नजर आती हैं | अज्ञेय के रहस्यवाद में एक प्रकार कि वैचारिकता और तटस्थता का प्रस्फुटन हैं | संयम कि अभिव्यक्ति हैं | इस संबंध में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा हैं - "परिपक्वता के साथ कवि ने जिस सृजनात्मक रहस्यवाद कि प्रस्तावना कि वह रवि ठाकूर को भी स्पृहनीय होता |" चतुर्वेदीजी भी अज्ञेय का रहस्यवाद कवि रविन्द्र को प्रभावित करने कि आकर्षकता रखता हैं |

असाध्यवीणा में जब प्रियंवद द्वारा अथाह परिश्रम, चिंतन, मनन और साधना से वीणा बजती हैं | तब उस असीम ईश्वर और भक्त का भेद समाप्त हो जाता हैं | प्रियंवद कि साधना से असाध्यवीणा का साध्य हो जाना प्रियंवद साधक से साधन कि प्राप्ति, आत्मा से परमात्मा का मिलना यही रहस्यवाद हैं जिसे प्रियंवद द्वारा असाध्यवीणा कविता में कवि ने व्यक्त किया हैं |

मुझे स्मरण हैं,
मुझको मै भूल गया हूँ ,
सुनता हूँ मैं
पर मै मुझ से परे
शब्द में लीयमान |"

इन पंक्तियों में उसी प्रकार के एकत्व का अनुभव प्रियंवद कर रहे हैं, जो कबीर का निर्गुणवादी ईश्वर के साथ हैं | सूर का कृष्ण के साथ, तुलसी का उनके आराध्य राम के साथ हैं | नवरहस्यवाद कि अनुभूति को यदि असाध्यवीणा कविता के माध्यम से देखे तो वीणा के साध्य होने पर उसके संगीत में हर जन डूब गया हैं | लेकिन उससे बाहर निकलने का तरीका सबका अलग अलग हैं |

असाध्यवीणा का साध्य होना ही सृजन शक्ति का अवतरित होना हैं | वीणा के संगीत में स्वर में हर एक व्यक्ति मोहित हो गया | डूब गया लेकिन मुक्ति सबको अपने कर्म और विचारधारा के आधार पर हुई | इस प्रकार असाध्यवीणा में सृजनात्मक था | नव रहस्यवाद कि अभिव्यक्ति हुई हैं | यह आधुनिक काल कि सर्वोपरी धरोहर हैं |

८.४ असाध्यवीणा में काव्य शिल्प

प्रयोगवार और नई कविता कि प्रवृत्तीयों कि परिणीति अज्ञेय कि असाध्यवीणा के माध्यम से होती हैं | अज्ञेय कि कविताएँ काव्य शिल्प कि दृष्टि से परंपरागत काव्य विधानों से हटकर

नई काव्य शैली को काव्य में अंकित करते हैं | अज्ञेय के काव्य कि भाषा, बिम्ब, प्रतीक, छंद विधान और अलंकार का प्रयोग विशिष्टता से हुआ हैं | यदि हम असाध्यवीणा का परिपूर्ण अध्ययन करे तो अज्ञेय कि अन्य कविताओ कि भाँति यह कविता भी काव्यागत सौंदर्य से परिपक्व हैं और साहित्य शिखर पर अपना स्थान तय करती हैं |

८.४.१ भाषा :

अज्ञेय का भाषा पर विशेष अधिकार था और उन्हें कई भाषाओं का ज्ञान था उनके भटकंती स्वभाव और सृजनशील व्यक्तित्व के कारण जहाँ भी जाते वहाँ के भाषा, संस्कृती, प्रकृति से एक निष्ठ हो जाते यही स्वभाव उनके काव्य कि भाषानिष्ठता को प्रामाणिकता से निभाता हैं | अज्ञेय के बचपन से उन्हें घर में मिले संस्कार और संस्कृत ग्रंथो के नित्य पाठ के कारण तत्सम शब्द कि अधिकता उनके काव्य में हैं | असाध्यवीणा कविता का कथानक पौराणिक होने के कारण भाषायी दृष्टि से अज्ञेय ने तत्सम शब्दो का बहुलता प्रयोग किया हैं जैसे

ओ दिर्घकाय |
ओ पूरे झारखंण्ड के अग्रज,
तात, सखा, गुरु आक्षय,
त्राता महच्छाय

इस प्रकार उक्त पंक्तियो में दीर्घकाय अग्रज, तात, गुरु, सखा, आक्षय, त्राता, महच्छाय आदि शब्द हैं | असाध्यवीणा कविता कि सभी पंक्तियो में कथानुरूप भाषा को अज्ञेय ने शीर्ष स्थान दिया हैं |

तद्भव शब्द :

अज्ञेय कि साहित्य कला हमेशा कुछ नया लेकर उभरी हैं इसीलिए कविताओं में किसी एक प्रकार कि भाषा और शब्द रूप का प्रयोग करने कि बजाय काल और विषयानुरूप भाषायी विविधता और विभिन्न शब्दावली का प्रयोग किया हैं. अज्ञेय कोमलकान्त पदावली के प्रयोग में सिंह हस्त हैं जैसे साँस- (श्वास), अनकहे (कभी न कहने वाला), किलक (किलकारी), संभार (संभाल) अलिक (जाल बिछाने वाला), अलस (आलस), सिरिस (शिरिश), विद्युल्लता (आसमान में बिजली चमकना) आदि अनेक उदाहरण असाध्यवीणा कविता में जो हल्के-फुल्के शब्दार्थ के साथ कविता का सौंदर्य चार गुणा कर देते हैं |

उदाहरण :

'राजा जागे|
समाधिस्थ संगीतकर का हाथ उठा था –
काँपी ठी उंगलियाँ|
अलस अँगडाई लेकर मानो जाग उठी ठी वीणा :
किलक उठे थे स्वर शिशु
नीरव पद राखता जालिक मायावी |

क्रियात्मक पदों की भाषा :

अज्ञेय के साहित्य लेखन कि नयी शैली में क्रिया पद भी नये तरीके से प्रयोग हुये हैं | कविता को लयात्मक बनाये राखने के लिए शब्दों को तोडा मरोडा नही गया न ही शब्दार्थ के साथ

कवि ने समझौता किया हैं | उन्होने बोलचाल कि भाषा को काव्य भाषा बनाकर उसे आकर्षण भरे स्वर में प्रस्तुत किया हैं | उदाहरण –

"गा वीणा रखी हैं | तेरा अंग-अपंग |
किन्तु अंगी तू अक्षत आत्म भरित,
रस-विद् ,
तू गा :
मेरे अँधियारे अन्तस में आलोक जगा स्मृती का|
श्रुति का –
तू गा, तू गा, तू गा, तू गा |

८.४.२ प्रतीक योजना :

अज्ञेय को प्रतीत बहुत प्रिय थे, क्योंकि सुधारणा वाक्य या शब्द को प्रतीक के माध्यम से आकर्षित रूप दिया जा सकता हैं उसे सुंदर काव्य रचा जा सकता हैं, यह प्रयोग शील अज्ञेय जानते थे | असाध्यवीणा कविता में वीणा कि निर्मित किरीटी वृक्ष से हुई हैं लेकिन किरीटी वृक्ष का वर्णन करते हुए अज्ञेय ने इस वर्णन को संपूर्ण वन प्रांत और वहाँ कि प्रकृति, जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, पेड-पौंधे, नदी-तालाव, पर्वत, पर्वत, झरने, आदि सभी घटकों को प्रतीकमान बनाकर कविता को सुंदर और निरीह बना दिया हैं |

'जीवित वही किरीटी-तरू
जिस कि जड वासुकि के फण पर थी आधारित,
जिस के कन्धो पर बादल सोते थे
और कान में जिस के हिमगिरी कहते थे अपने रहस्य
संबोधित कर उस तरू को करता था
नीरव एकालाप प्रियंवद |

इस प्रकार कवि ने असाध्यवीणा के इतिहास को किरीटी वृक्ष से जोडकर उस वृक्ष का वीणा से प्रतीकात्मक संबंध स्थापित किया हैं, जो कविता को सशक्त और सटीक रूप प्रदान करता हैं |

८.४.३ बिम्ब – विधान :

काव्य में बिम्ब का प्रयोग अति प्राचीनकाल से आचार्यो ने मान्य किया हैं | पाश्चात्य विद्वानों ने भी बिम्ब संबंधी मान्यताओं को उचित ठहराया हैं | आचार्य शुक्ल, डॉ. नगेंद्र जैसे आधुनिक कालीन साहित्याचार्यो ने बिम्ब कि मौलिकता को साहित्य में अनिवार्य माना | डॉ. नगेंद्र ने अपनी पुस्तक 'काव्य बिम्ब में पाँच प्रकार के बिम्बो का उल्लेख किया हैं, - दृश्य, ध्वनि, स्पर्श, गन्ध, आस्वाद | असाध्य वीणा कविता में एन सभी बिम्बो का अधोरेखित प्रयोग कवि अज्ञेय ने किया हैं |

दृश्य बिम्ब :

वही काव्य श्रेष्ठ माना जाता हैं, जिसे पढकर या सुनकर हमारी आँखो के सामने वह सभी दृश्य रूप में चित्रित हो जाये | असाध्यवीणा पुरी कविता बिम्ब विधान से ओत-प्रोत हैं दृश्य बिम्ब कि प्रधानता संपूर्ण कविता कि अभिव्यक्ति हैं | यह अवतरण दृश्य बिम्ब का सुंदर उदाहरण हैं –

'लघु संकेत समझ राजा का
गण दौडे| लाये असाध्यवीणा,
साधक के आगे राख उस को, हट गये|
सभी कि उत्सुक आँखे
एक बार वीणा को लख, टिक गयी
प्रियंवद के चेहरे पर |'

स्पर्श बिम्ब :

स्पर्श बिम्ब का संबध त्वचा से होता हैं | इसमें अधिकांश कोमल वस्तूओं का बिम्ब सृजन संरचित होता हैं असाध्य वीणा कविता में वीणा परम परमात्मा रूप में अवतरित हुई हैं, साधक प्रियंवद वीणा के प्रति समर्पण भाव दिखाकर उसमें लीन होकर उसके तारो को छेडना चाहते हैं | कवि अज्ञेय कि असाध्यवीणा कविता में स्पर्श बिम्ब के अनेक उदाहरण हैं उनमें से एक हैं /-

छू सकू तुझे|
तेरी काया को छेद, बाँध कर राची गयी वीणा को
किस स्पर्श से
हाथ करे आघात
छीनने को तारों से
एक चाँद में वह संचित संगीत जिसे रचने में
स्वयं न जाने कितनो के स्पन्दित प्राण रच गये|

आस्वाद्य बिम्ब :

किसी वस्तू या स्थिती विशेष के चित्रण द्वारा आस्वाद्य बिम्ब कि रचना कवि करता हैं | असाध्य वीणा कविता में कवि अज्ञेय ने आस्वाद्य बिम्ब का प्रयोग इस प्रकार किया हैं |

"बटूली में बहुत दिनों के बाद अन्न कि सोंधी खुदबुदाई|

ध्वनि बिम्ब :

ध्वनि बिम्ब का प्रयोग कवि अज्ञेय ने प्रकृति के चित्रण को अधिक सुंदर और प्रभावशाली बनाने के लिये किया हैं | पक्षियों कि चह-चहाहट पानी का कल-कल गिरना आदि प्रकृति संबंधी वर्णन अलौकिक बन पडे हैं | वही असाध्य वीणा कविता में वीणा का स्वर बहु भाँति सुनाया गया हैं, उसमें किसी को नव वधु कि पायल कि ध्वनि, किसी को शिशु कि किलकारी किसी को उडती चिडिया कि चहक तो किसी को लोहे के हथोडे पर पडी चोट इस प्रकार असाध्यवीणा कविता में ध्वनि निम्न कि प्रधानता हैं, इस कविता में ध्वनि प्रकृति वर्णन को सँवारती हैं और सामान्य जीवन में हर एक व्यक्ति के कर्मानुसार संगीत का स्वर उसमें ढल जन ध्वनि का सर्वोत्तम उदाहरण हैं | जैसे

'बदली-कौंध- पत्तियो प्र वर्षा-बुँडो कि पट पट |
घनी रात में महुए का चूपचाप टपकना |
चौंके स्वग-शावक कि चिहुँक |
शिलाओं को डूलराते वन-झरने के
द्रुत लहरीले जल का कल-निनाद |

कुहरे में छन कर आती
पर्वती गाँव के उत्सव ढोलक कि थाप |’

गन्ध बिम्ब :

गन्ध बिम्ब का प्रयोग काव्य बहुत कम होता हैं लेकिन अज्ञेय प्रयोगवादी कवि ये उन्होने बिम्ब और प्रतीको से ही काव्य को सौंदर्यमान बनाया हैं | असाध्यवीणा कविता काव्य शिल्प कि दृष्टि से सर्वोच्च मानी जाती हैं | इस कविता में कुछ पंक्तियाँ गन्ध बिम्ब का स्पष्टीकरण देती हैं | जैसे –

‘पंख युक्त सायकसी हस-बलाका |
चीड-वनो में गन्ध-अन्ध उन्मद पतंग कि जहाँ-तहाँ टकराहट
जल-प्रपात का प्लुत एक स्वर |

इस प्रकार असाध्यवीणा कविता के सभी प्रकार के प्रयोगों से सौंदर्यशील बनी हूँ, इसी कारण यह कविता भावानुरूप और प्रभावशाली हैं |

छंद विधान :

अज्ञेय छंदो के ज्ञाता थे और बरबै छंद उनका पसंदीदा छंद था | छंद प्रयोग में भी अज्ञेय नये प्रवाह को लेकर आये हैं | असाध्यवीणा कविता में विषम मांत्रिक छंद प्रयुक्त हुआ हैं | असाध्यवीणा कविता में सोलह मात्रा बाला छंद हैं चौपाई में भी सोलह मात्राएँ होती हैं, लेकिन अज्ञेय ने असाध्यवीणा में चौपाई छंद का नहीं पद्धरि छंद का प्रयोग किया हैं | इस छंद में और चौपाई छंद में इतना ही अंतर होता हैं, कि चौपाई में लघु-गुरु आता हैं और पद्धरि छंद के अंत में गुरु-लघु | असाध्यवीणा में कवि ने लय को कही भी टूटने नहीं दिया हैं, आवश्यकता पढने पर विराम चिन्ह का प्रयोग कर असाध्यवीणा कविता को गद्य और पद्य दोनो रीति से सौंदर्य प्रदान किया हैं जैसे –

“मुझे स्मरण हैं:
हरी तलहटी में, छोटे पेडों कि ओढ ताल पर
बंधे समय वन-पशुओं कि नानाविध आतुर – तृप्त पुकारे
गर्जन – घुर्घुर, चीख, भूँक, हुक्का. चिचीयाहट |
कमल – कुमुद – पत्रों पर चोर-पैर द्रुत धावित
जल – पंछी कि चाप |”

इस प्रकार एन पंक्तियों में लयात्मकता लाने के लिये विराम चिन्ह कोमा का प्रयोग किया हैं, जिसमे अल्प ठहराव के साथ कविता क्रिया रूप में चालती रहे और शब्द अर्थ दोनो ही हैं हेतू को आकर्षक बनाकर प्रभाव पैदा कर सके |

८.५ सारांश

उक्त इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी अज्ञेय द्वारा रचित एक मात्र कविता असाध्यवीणा के भावबोध, असाध्यवीणा कविता में नवरहस्यवाद और असाध्यवीणा कविता में काव्य

शिल्पगत सौंदर्यता का अध्ययन करेंगे | इन मुद्दों के अध्ययन से विद्यार्थी असाध्यवीणा कविता के संदर्भ से जुड़े सभी प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी आसानी से दे सकेंगे |

८.६ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) असाध्यवीणा में भावबोध का वर्णन अपने शब्दों में किजिए |
२) असाध्यवीणा कविता में नवरहस्यवाद कि व्याप्ति हैं स्पष्ट किजिए |
३) असाध्यवीणा कविता में प्रतीक और बिम्ब योजना का कुशलता से वर्णन हुआ हैं विवरण किजिए |
४) असाध्यवीणा कविता कि भाषा और शब्दावली आधुनिकता का बोध कराती हैं समझाइए ?
५) असाध्यवीणा कविता के काव्य और शिल्पगत सौंदर्यता पर प्रकाश डालिए |८. ७ लघुत्तरी

८.७ प्रश्न

१) असाध्यवीणा कविता में राजा किसके विषय में कहता हैं कि वह वीणा साधने में विफल न होगा |

उत्तर - वज्रकिर्ति

२) असाध्यवीणा कविता में रानी ने वीणा के बजने पर प्रियंवद को क्या भेट दी |

उत्तर - अपने गले में पहनी किमती सतलड़ी माला

३) नवरहस्यवाद को कहते हैं |

उत्तर - सृजनात्मक रहस्यवाद

४) "एक बार वीणा को लख, टिक गयी प्रियंवद के चेहरे पर |' उक्त पंक्तियों में कौनसे बिम्ब कि अभिव्यक्ति हैं |

उत्तर - दृश्य बिम्ब

५) असाध्यवीणा कविता में कौनसा छंद प्रयुक्त हुआ हैं|

उत्तर - विषम मांत्रिक छंद

८.८ संदर्भ पुस्तके

१) अज्ञेय की कविता एक मूल्यांकन – डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर
२) अज्ञेय की काव्य तितीर्षा – डॉ. नंदकिशोर आचार्य
३) अज्ञेय की कविता परम्परा और प्रयोग – रमेश ऋषिकल्प
४) अज्ञेय, चिंतन और साहित्य – प्रेम धन

❖❖❖❖

९

प्रतिनिधी कविताएँ मुक्तिबोध

इकाई की रूपरेखा

९.० इकाई का उद्देश्य
९.१ प्रस्तावना
९.२ मुक्तिबोध – जीवन परिचय
९.३ ब्रम्ह राक्षस (कविता)
९.४ भूल-गलती (कविता)
९.५ अँधेरे में (कविता)
९.६ सारांश
९.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न
९.८ लघुत्तरी प्रश्न
९.९ सन्दर्भ पुस्तकें

९.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई का मूल उद्देश्य आधुनिक हिन्दी साहित्य के महत्त्वपूर्ण कवि मुक्तिबोध के जीवन परिचय, और पाठ्यक्रम में निहित कविताओं का अध्ययन करेंगे |

९.१ प्रस्तावना

ब्रम्हराक्षस, भूल-गलती और अँधेरे में कविता हिन्दी साहित्य के आधुनिक दौर की कविताओं में विशेष महत्वपूर्ण हैं | इनमें कवि की सामाजिक दृष्टि खुलकर हमारे समक्ष उपस्थित होती हैं |

९.२ मुक्तिबोध – जीवन परिचय

परिचय: मुक्तिबोध का जन्म १३ नवम्बर, १९१७ को ग्वालियर जिले के श्योपुर गाँव में हुआ था | उनके पिता माधव राव जी मुरैना में सब-इन्स्पेक्टर थे | उनके साथ मुक्तिबोध का बचपन विदिशा, अजमेर और सरदारपुर आदि क्षेत्रों में सम्पन्नता के बीच बीता | बचपन से ही मुक्तिबोध भावुक और अंतर्मुख प्रकृति के थे | अपने परिवार में उनके सबसे निकट उनके छोटे भाई शरतचंद मुक्तिबोध थे | शरतचंद स्वयं भी मराठी प्रगतिशील काव्यधारा के प्रमुख रचनाकार रहे हैं | इस महान रचनाकार का देहावसान मात्र ४६ वर्ष की अवस्था में ११ सितम्बर , १९६४ को हो गया |

मुक्तिबोध की प्रमुख रचनाएँ :

काव्यसंग्रह: चाँद का मुँह टेढा हैं, भूरी-भूरी ख़ाक धूल

आलोचनात्मक ग्रन्थ : नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, कामायनी एक पुनर्विचार, नये साहित्य का आत्मसंघर्ष, समीक्षा की समस्याएँ , एक साहित्यिक की डायरी

कहानी संग्रह :काठ का सपना , सतह से उठता आदमी

उपन्यास: विपात्र
इस प्रकार की अनेक अन्य रचनाएं भी हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि कर रही हैं | इसके बाद अपनी लम्बी कविताओं के लिए भी मुक्तिबोध आधुनिक हिन्दी साहित्य में चर्चा के केंद्र में रहे हैं |

मुक्तिबोध का रचना संसार व्यक्ति और परिवेश के बीच दुहरा तनाव लेकर प्रस्तुत हुआ हैं, भीतरी और बाहरी तनाव | वह मानव विरोधी हरकतों को समझता हुआ सामाजिक चेतना की सही भूमि तलाशता हैं और भय, सन्देश, उत्पीड़न तथा आशंकाओं के बीच जीते हुए समकालीन मनुष्य के विविध पक्षों का विश्लेषण करता हैं |

९.३ ब्रम्ह राक्षस (कविता)

'चाँद का मुँह टेढा हैं' काव्य संकलन में संकलित 'ब्रह्मराक्षस' मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कविताओं में से एक हैं | यह कविता सर्वप्रथम बनारस से प्रकाशित होनेवाली लघु पत्रिका 'कवि' के अप्रैल, 1957 के अंक में प्रकाशित हुई थी । अनुमानतः इसका रचनाकाल 1957 ही हैं, यद्यपि इसमें अन्तिम संशोधन मुक्तिबोध ने 1962 में किया । आलोचकों ने इस कविता को मुक्तिबोध के आत्मसंघर्ष माना हैं | वैसे भी मुक्तिबोध को आत्मसंघर्ष का कवि कहा गया हैं । इसमें संदेह नहीं कि उनमें आत्मसंघर्ष अत्यन्त प्रखर रूप में मिलता हैं, लेकिन ज्ञातव्य हैं कि यह संघर्ष सिर्फ उनका केवल अपना न होकर उस पूरे मध्यवर्ग का हैं, जिसके वे एक सदस्य थे । दूसरी बात यह कि उनके आत्मसंघर्ष के अनेक पहलू हैं । 'ब्रह्मराक्षस' कविता में आत्मसंघर्ष,व्यक्ति और समाज, आत्म और विश्व तथा भीतर और बाहर के बीच हैं |

यह कविता दो खंडों में विभाजित हैं । पहले खंड में कवि ने ब्रह्मराक्षस के असामान्य व्यवहार का चित्रण किया हैं, फिर दूसरे खंड में उसके आत्मसंघर्ष का । दोनों खंड अपने चित्रण की दृष्टि से बेजोड़ हैं और अपने भीतर अर्थ की कई-कई परतें छिपाए हुए हैं । मुक्तिबोध की कविता चिन्तन से गहरा सरोकार रखती हैं, इसलिए उसको समझने के लिए उनकी वैचारिक अवधारणाओं से परिचय आवश्यक हैं । यह सही हैं कि उनमें कठिनाई जितनी शाब्दिक स्तर पर हैं, उससे अधिक वैचारिक स्तर पर । उनकी सफलता इस बात में हैं कि वे ज्ञान को संवेदना में और संवेदना को ज्ञान में रूपान्तरित करने में एक साथ सफल होते हैं ।

जैसा कि कविता के शीर्षक से ही स्पष्ट हैं, इसका विषय एक ब्रह्मराक्षस हैं। ब्रह्मराक्षस का मतलब हैं ब्रह्मपिशाच। शास्त्र के अनुसार वह ब्राह्मण, जो मनुष्य-योनि में पापकर्म करता हैं, मरने पर प्रेत-योनि पाता हैं और ब्रह्मराक्षस या ब्रह्मपिशाच बन जाता हैं। इस कविता में ब्रह्मराक्षस का पाप यह था कि वह कर्म से विरत रहकर अपने विचार और कार्य में सामंजस्य स्थापित करना चाहता था। यह उसके मनुष्य-योनि में होने के समय की बात हैं। स्वभावतः वह मरने के बाद मोक्ष लाभ करने के बदले एक प्रेत हो गया।

कविता में ब्रह्मराक्षस के प्रेतोचित व्यवहार का वर्णन करने के पहले मुक्तिबोध ने उसके परिवेश का वर्णन किया हैं। शहर के बाहर, जहाँ अनेक मकानों के खंडहर हैं, एक पुरानी और परित्यक्त बावड़ी हैं। बावड़ी उस चौड़े कुएँ या छोटे तालाब को कहते हैं, जिस तक पहुँचने के लिए चारों तरफ से सीढ़ियाँ बनी होती हैं। इस बावड़ी का जल बहुत गहरा हैं। उसमें उसकी अनेक सीढ़ियाँ डूबी हुई हैं। जल को थाहा नहीं गया, लेकिन देखने से ही उसकी गहराई का आभास हो जाता हैं। ठीक वैसे ही, जैसे कोई बात समझ में न आ रही हो, लेकिन महसूस हो रहा हो कि उसमें कुछ गहरा मतलब हैं। बावड़ी के चारों ओर गूलर के पेड़ खड़े हैं, जिनकी डालें आपस में उलझी हुई हैं। उनकी डालों से उल्लुओं के भूरे और गोल घोंसले लटक रहे हैं। वे भी परित्यक्त हैं, यानी उनमें उल्लू नहीं रहते। कहने की आवश्यकता नहीं कि मन में भय उत्पन्न करनेवाली निर्जनता का यह बहुत सटीक चित्रण हैं। हवा में जंगल की हरी कच्ची गन्ध बसी हुई हैं। यह गन्ध अनजानी और व्यतीत किसी श्रेष्ठ वस्तु के होने का सन्देह मन में उत्पन्न कर देती हैं। वह वस्तु भूलती नहीं, हमेशा दिल में एक खटके-सी लगी रहती हैं बावड़ी की मुँडेरों पर टगर के सफेद फूल खिले हुए हैं, तारों-जैसे। इस दृश्य का मुक्तिबोध ने बहुत सुन्दर वर्णन किया हैं :

'बावड़ी की इन मुँडेरों पर
मनोहर हरीकुहनी टेक बैठी हैं टगर
ले पुष्प-तारे श्वेत।'

उसी के पास लाल कनेर के फूलों का एक गुच्छा लटक रहा हैं। यह जैसे खतरे के सिगनल का काम कर रहा हैं, क्योंकि उधर बावड़ी का मुँह खुला हुआ हैं और आसमान की ओर ताक रहा हैं।

इस परिवेश-वर्णन के बाद ब्रह्मराक्षस का वर्णन शुरू होता हैं। वह अभी बावड़ी के गहरे जल में घुसा हुआ हैं। उसमें डुबकियाँ भी लगाता हैं, जिससे उसके मुँह की आवाज की अनुगूंज सतह पर सुनाई पड़ती हैं, साथ-साथ पागलों-जैसे उसकी बड़बड़ाहट के शब्द भी। अनुमान होता हैं कि उसके शरीर पर बहुत गन्दगी जमी हैं, जिसे दूर करने के लिए वह नहाता हैं और पंजों से अपने शरीर के अंगों को लगातार रगड़ता रहता हैं। मैल फिर भी नहीं छूटती। यहाँ मुक्तिबोध ने कहा हैं कि ब्रह्मराक्षस 'पाप-छाया' से मुक्त होने के लिए निरन्तर स्नान करता हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने इस पाप को 'अस्तित्ववाद-व्यक्ति का अपराध-बोध' से जोड़ा हैं |' लेकिन इससे सहमत होना कोई आवश्यक नहीं हैं क्योंकि ब्रह्मराक्षस का पाप व्यक्तिगत नहीं हैं। उसकी समस्या एक सामाजिक समस्या हैं, पूरे शिक्षित मध्यवर्ग की। उसका पाप यह था कि आत्मकेन्द्रित रहकर यानी जनता से जुड़े बगैर उसने अपने को बदलना चाहा।

मुक्तिबोध धार्मिक नहीं थे। कविता में उनका अभिप्राय बिलकुल भिन्न हैं। इसलिए इसकी अस्तित्ववादी व्याख्या उचित नहीं होगी|

ब्रह्मराक्षस के व्यवहार का वर्णन आगे तक चलता हैं। चूँकि, वह एक बुद्धिजीवी का प्रेत हैं, इसलिए नहाते समय वह बेचैनी के साथ कोई अनोखा स्तोत्र और मन्त्र बुदबुदाता हैं। इतना ही नहीं, उसके मुँह से धारा प्रवाह शुद्ध संस्कृत में गालियाँ निकलती हैं। उसके माथे की लकीरों को देखकर लगता हैं कि वह लगातार आलोचनात्मक मुद्रा में हैं। मुक्तिबोध कहते हैं, **'प्राण में संवेदना हैंस्याह!!'** तात्पर्य यह कि ब्रह्मराक्षस के मन में भी कालिख जमी हैं। दिलचस्प यह हैं कि जल में डूबी बावड़ी की दीवारों पर जब सूर्य की किरण तिरछे गिरती हैं, तो उसे लगता हैं कि सूर्य ने उसकी श्रेष्ठता स्वीकार कर झुककर उसे नमस्ते किया हैं। यह चित्र देखने लायक हैं -

किन्तु गहरी बावड़ी
की भीतरी दीवार पर
तिरछी गिरी रवि-रश्मि
के उड़ते हुए परमाणु जब
तल तक पहुँचतेहैं कभी
तब ब्रह्मराक्षस समझता हैं, सूर्य ने
झुककर नमस्ते कर दिया।

इसी तरह बावड़ी की दीवार से जब कभी चाँदनी की किरण अपना रास्ता भूलकर टकराती हैं, तो उसे लगता हैं कि चाँदनी ने भी उसकी वन्दना की हैं और उसे ज्ञान-गुरु मान लिया हैं! यह ऊँचे आकाश का उसके आगे विनत होना था। इस बात को वह रोमांचित हो-होकर अनुभव करता था।

उपर्युक्त दृश्य से और उत्तेजित होकर अपनी महानता के प्रति आश्वस्त ब्रह्मराक्षस तमाम इतिहास, दर्शन और विज्ञान की नई व्याख्या करने लगता था, उस पुरानी बावड़ी के गहरे जल में नहाता हुआ। मुक्तिबोध ने इतिहास, दर्शन आदि का जो जिक्र किया हैं, उसमें सुमेरी और बैबिलौनी जन-कथाओं तथा वैदिक ऋचाओं से लेकर आज तक के सभी सूत्र, मन्त्र और सिद्धान्त आते हैं। इतिहासकारों, दार्शनिकों, विचारकों और गणितज्ञों में उन्होंने मार्क्स, एंगेल्स, रसेल, टॉयन्बी, हाइडेगर, स्पेंसर, सार्च और महात्मा गाँधी सबका उल्लेख किया हैं। इससे स्पष्ट हैं कि वह ब्रह्मराक्षस किसी मामूली ब्राह्मण का नहीं, बल्कि बहुत ही विद्वान् ब्राह्मण का प्रेत हैं। कवि ने ब्रह्मराक्षस को लिया ही इसलिए हैं कि ब्राह्मण परम्परा से बुद्धिजीवी होता रहा हैं। यह बुद्धिजीवी विद्वान् तो हैं ही, प्रगतिशील भी हैं, क्योंकि इसकी मुख्य समस्या का सम्बन्ध समाज के हित में अपने को बदलने से हैं।

ब्रह्मराक्षस बावड़ी के गहरे जल में डुबकियाँ लगा-लगाकर अत्यधिक उत्साह से विभिन्न दर्शनों और विचारों की अपव्याख्या करता हुआ जब स्नान करता हैं, तो जल आन्दोलित हो उठता हैं। उससे आपस में उलझे हुए शब्दों के भँवर बनते हैं, जिनमें प्रत्येक शब्द अपने प्रति-शब्द को भी काटता हुआ होता हैं। शब्दों का वह रूप अपने बिम्ब से ही जूझता हुआ विकृत आकार धारण कर लेता हैं। उस बावड़ी में उस समय ध्वनि अपनी प्रतिध्वनि से ही लड़ती दिखलाई पड़ती हैं।ब्रह्मराक्षस उत्साह में हैं, पर स्वभावतः मानसिक रूप से अतिशय

असामान्य अवस्था में। विक्षुब्ध बावड़ी का वर्णन किसी हद तक उसकी मनोदशा को भी व्यक्त करता हैं। यथा-

...ये गरजती, गूंजती, आन्दोलिता
गहराइयों से उठ रहीं ध्वनियाँ, अतः
उद्भ्रान्त शब्दों के नए आवर्त में
हर शब्द निज प्रतिशब्द को भी काटता,
वह रूप अपने बिम्ब से ही जूझ
विकृताकार-कृति
हैं बन रहा
ध्वनि लड़ रही अपनी प्रतिध्वनि से यहाँ।

मुक्तिबोध कविता को मार्मिक बनाते हुए कहते हैं कि उस ध्वनि को टगर के फूल, करौंदी के फूल और गूलर के पेड़ सभी सुनते हैं। कवि भी उन्हें सुनता हैं। वह ध्वनि वस्तुतः एक त्रासदी का प्रतीकात्मक आख्यान हैं, जो अभी बावड़ी में देखने को मिल रही हैं। क्या थी वह त्रासदी ? यह कि एक सत्यशोधक, जिसे मनुष्य-योनि के बाद प्रेत-योनि प्राप्त हुई, अपने उद्देश्य में बुरी तरह से विफल हुआ।

ब्रह्मराक्षस वस्तुतः सत्यशोधक था। सत्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य-योनि में उसने जो विकट आत्मसंघर्ष किया था, उसका बहुत ही गहन वर्णन कविता के दूसरे खंड में हैं। सर्वप्रथम इसमें मुक्तिबोध ने उसके व्यक्तित्व की कल्पना स्फटिक-निर्मित एक प्रासाद के रूप में की हैं, जिसमें ऐसी संकीर्ण सीढ़ियाँ बनी हुई थीं, जिन पर चढ़ना बहुत ही मुश्किल था। वे सीढ़ियाँ काली थीं और अँधेरे में डूबी हुई। उन्होंने जैसे यह स्पष्ट कर दिया हैं कि व्यक्तित्व वह कोमल। स्फटिक प्रासाद-सा', वैसे ही सीढ़ियों के बारे में यह बतला दिया हैं कि वे एक आभ्यन्तर निराले लोक की' सीढ़ियाँ थीं। सत्यशोधक उन पर चढ़ता था और लुढ़क जाता था। इस कारण उसके पैरों में मोच आ जाती थी और छाती पर अनेक जख्म बन जाते थे। यह उसका आत्मसंघर्ष हैं, जो उसके भीतर एक पूर्ण व्यक्तित्व की प्राप्ति के लिए चला करता था। पूर्ण व्यक्तित्व की प्राप्ति कैसे सम्भव थी ? यह तभी हो पाता, जब कि वह अपने व्यक्तित्व का पूर्णतया समाजवादी रूपान्तरण कर लेता। बुरे और अच्छे के बीच का संघर्ष जितना उग्र होता हैं, उससे अधिक उग्र अच्छे और उससे अधिक अच्छे के बीच का संघर्ष होता हैं। यहाँ संकेत से मुक्तिबोध ने बतला दिया हैं कि सत्यशोधक के भीतर सामन्तवादी और पूँजीवादी संस्कारों एवं मूल्यों के बीच नहीं, बल्कि पूँजीवादी और समाजवादी संस्कारों एवं मूल्यों के बीच संघर्ष की स्थिति थी। उसकी गलती यह थी कि वह पूँजीवाद से, अर्थात् व्यक्ति-चेतना से पूर्णतः पिंड छुड़ाकर एक शत-प्रतिशत समाजवादी व्यक्तित्व की प्राप्ति करना चाहता था। व्यक्ति-चेतना का पूर्णतः निषेध न तो अपेक्षित हैं, न सम्भव, इसलिए सत्यशोधक को अनिवार्यतः अपने उद्देश्य में सफलता थोड़ी और असफलता अधिक मिली। एक दूसरी बात यह थी कि वह जो भी हासिल करना चाहता था, वह कर्म और व्यवहार के क्षेत्र से दूर रहकर; अपने कमरे में बन्द, मात्र अपने चिन्तन के द्वारा। स्वभावतः उसे ज्यादातर विफलता ही हाथ लगी।

स्पष्ट हैं कि मुक्तिबोध हर तरह से पूर्ण समाजवादी व्यक्तित्व का लक्ष्य रखनेवाले कवि नहीं थे। उनके लिए अपने निजी व्यक्तित्व का बहुत महत्त्व था, जिसे निश्चय ही वे व्यक्तिवाद से

अलग करते थे। लेकिन यदि कोई व्यक्ति हर तरह से पूर्ण समाजवादी व्यक्तित्व को अपना लक्ष्य बनाए और उसके लिए मर्मान्तिक मानसिक पीड़ा उठाए, तो इसे वे एक बड़ी बात समझते थे। उनका कहना था कि नैतिकता के मानदंड गणित की तरह सटीक हों, आत्मचेतन और सूक्ष्म, यह सम्भव नहीं हैं, फिर भी यदि कोई उनके लिए प्रयत्न करता हैं और उसमें व्यथा पाता हैं, तो यह स्पृहणीय हैं। समाजवादी नैतिकता गणित के नियमों की तरह पूर्ण होती हैं, इशारा इस मान्यता की तरफ हैं। उस अतिरेक पर पहुंची हुई नैतिकता की उपलब्धि सदा से कठिन रही हैं। निम्नलिखित पंक्तियों काआशय यही हैं -

..अतिरेकवादी पूर्णता
की ये व्यथाएँ बहुत प्यारी हैं...
ज्यामितिक संगति-गणित
की दृष्टि से कृत
भव्य नैतिक मान
आत्मचेतन सूक्ष्म नैतिक भान-
...अतिरेकवादी पूर्णता की तुष्टि करना
कब रहा आसान
मानवी अन्तर्कथाएँ बहुत प्यारी हैं!!

इस आत्मसंघर्ष में पड़े हुए सत्यशोधक अर्थात् ब्रह्मराक्षस के दिन-रात, जब वह मनुष्य-योनि में था, बड़ी बेचैनी से कटते थे। दिन में जब सूर्य निकलता, तो उसे लगता कि चिन्ता की रक्तधारा प्रवाहित हो उठी हैं और रात में जब चन्द्रमा उदय होता, तो उसे महसूस होता कि उसकी किरणें उसके घावों और उद्विग्न भाल पर बँधी हुई सफेद पट्टियाँ हैं। पूरे आकाश पर फैले हुए तारे उसे गणित के दशमलव-बिन्दुओं की तरह चारों ओर छितराए नजर आते थे। उन्हीं के मैदान में वह मारा गया। अब उस मैदान में उसकी लाश पड़ी हैं। मुक्तिबोध के शब्दों में, **'वक्ष-बाँहें खुली फैली/ एक शोधक की।'** स्पष्टतः यहाँ वे सत्यशोधक के अत्यधिक तीखे आत्मसंघर्ष का वर्णन कर रहे हैं, जो उसके लिए जानलेवा साबित हुआ। 'शोधक' शब्द ध्यान देने लायक हैं, क्योंकि इससे यह संकेत मिलता हैं कि ब्रह्मराक्षस मुनष्य-योनि में अपने गलत चिन्तन और अकर्मण्यता के कारण अपनी मंजिल न पा सका, लेकिन वह अन्ततः एक नकारात्मक नहीं, बल्कि सकारात्मक चरित्र हैं। मुक्तिबोध उसकी सीमाओं से परिचित हैं, लेकिन उसके संघर्ष को सहानुभूति ही नहीं, आशंसा के भाव दे देखते हैं।

आगे पुनः वे प्रासाद की सुनसान सीढ़ियों का वर्णन करते हैं, जिन पर चढ़ना बहुत मुश्किल था और जो ब्रह्मराक्षस के भाग्य में ही बदा था। उसकी समस्या यह थी कि वह चिन्तन और कर्म में सामंजस्य स्थापित न कर सका था। यह कठिन कार्य सबके वश का नहीं। उसके लिए वही अभिशप्त था। जैसा कि कहा जा चुका हैं, उसके लिए उसने बहुत प्रयास किया, लेकिन उसे कोई रास्ता दिखलाने वाला न मिला, सो वह अपने उद्देश्य में चूकता रहा। मुक्तिबोध ने लिखा हैं :

'उस भाव-तर्क व कार्य-सामंजस्य-योजन-
शोध में/सब पंडितों, सब चिन्तकोंके पास
वह गुरु प्राप्त करने के लिए भटका!!'

तात्पर्य यह कि गुरु की खोज में वह लगातार भटकता रहा, लेकिन परिवर्तित यानी पूँजीवादी युग में उसे गुरु न मिला। पूँजीवादी युग में वह सम्भव भी नहीं था, क्योंकि उसमें किसी को

ज्ञान नहीं दिया जाता हैं, गुरु लोग अपनी कीर्ति का व्यवसाय करते हैं। उनका ध्यान अपने लाभ के लिए किए गए कार्यों पर रहता हैं, जिनसे वे धन प्राप्त कर सकें। इस धन में लिप्त मन सत्य का धोखा अर्थात् मरीचिका ही खड़ी कर सकता था। इस तरह सत्यशोधक की खोज पूरी न हुई। इस प्रसंग में मुक्तिबोध की कहानी 'ब्रह्मराक्षस का शिष्य' को भी याद किया जा सकता हैं, जिसमें एक व्यक्ति गुरु की ही तलाश करता हुआ ब्रह्मराक्षस से मिलता हैं, जो अन्त में उसे यह बतलाता हैं कि वह इस योनि को इसलिए प्राप्त हुआ कि उसके पास जो ज्ञान था, उसे लोक को अर्पित नहीं किया था, यानी उसे लेकर अपने तक ही सिमटा रहा था।

प्रस्तुत कविता का ब्रह्मराक्षस जब मनुष्य-योनि में था, तो आत्मनिष्ठ था, लेकिन उसकी आकांक्षा थी कि वह विश्वनिष्ठ बने। इस कारण उसके भीतर एक बे-बनाव अर्थात् अन्तःसंघर्ष की स्थिति बनी रहती थी। वह अपने को लघु समझता था और सार्वजनिकता को ही महान् मानकर उसके प्रति समर्पित न होने के कारण मन में हमेशा विषण्ण रहता था। इसके बाद मुक्तिबोध ने जो कुछ कहा हैं, वह बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, खास तौर से हिन्दी की उस प्रगतिशील काव्यधारा के प्रसंग में, जो व्यक्तित्व की लघुता को कोई महत्त्व न देकर उसे समाज के लिए न्यौछावर कर देना चाहती थी। मुक्तिबोध का कथन हैं -

मेरा उसी से उस दिनों होता मिलन यदि
तो व्यथा उसकी स्वयं जीकर
बताता मैं उसे उसका स्वयं का मूल्य
उसकी महत्ता!
व उस महत्ता का
हम सरीखों के लिए उपयोग,
उस आन्तरिकता का बताता मैं महत्त्व!!

मुक्तिबोध कहते हैं कि सत्यशोधक की परेशानी बहुत कुछ बेमतलब थी। वह अपने आपको हीन मानकर जो समाज के चरणों में अपने स्व को विसर्जित करना चाहता था, उसकी जरूरत नहीं थी। कारण यह कि समाज के साथ-साथ व्यक्ति की निजता का भी महत्त्व हैं। उसके अभाव में व्यक्ति संवेदनशील प्राणी न रहकर एक यन्त्र बन जाएगा। इस तरह मध्यवर्ग के जो बुद्धिजीवी अपने व्यक्तित्व से छुटकारा पाने में असमर्थ हैं, उनके लिए यह ज्ञातव्य हैं कि उनके स्व, उनके भीतरी जगत् और उनकी आन्तरिकता का भी महत्त्व हैं। उसे सुरक्षित रखते हुए समाज को समर्पित होना हैं, न कि उसे त्याग कर। ऐसी स्थिति में सत्यशोधक का भीतर और बाहर के संघर्ष में पड़कर समाप्त हो जाना एक विकट त्रासदी थी-

पिस गया वह भीतरी
औ' बाहरी दो कठिन पाटों बीच,
ऐसी ट्रैजेडी हैं नीच!!

ब्रह्मराक्षस बावड़ी में स्नान करता हुआ लगातार पागलपन-भरे प्रतीकों के माध्यम से अपने दुःखद अन्त की ही कहानी कहता रहता हैं कि किस तरह वह अपने कमरे में ही सारा सोच-विचार करता रहा और अन्ततः समाप्त हो गया। उसका समाप्त होना या मरना किसी सघन झाड़ी के अँधेरे और कँटीले कोटर में मरे हुए पक्षी की तरह लुप्त हो जाना था। मुक्तिबोध यहाँ पर दो बातें कहते हैं। एक तो यह कि 'वह ज्योति अनजानी सदा को खो गई' और दूसरी यह

कि **'यह क्यों हुआ!/ क्यों यह हुआ!!'** कहा जा चुका हैं कि सत्यशोधक एक सकारात्मक चरित्र हैं। इस कारण उसकी अन्तःसंघर्षजनित पीड़ा का भी उन्होंने उपहास नहीं किया हैं, जिसका प्रमाण यह हैं कि जहाँ उन्होंने उसे उसके निजी व्यक्तित्व का महत्त्व बतलाने वाली बात कही हैं, वहाँ भी कहा हैं कि **'व्यथा उसकी स्वयं जीकर'** अर्थात वे जो भी उसे बतलाते, उसकी तकलीफ का गहराई से एहसास करते हुए। इसी कारण वे उसे 'अनजानी ज्योति' कहकर याद करते हैं। 'अनजानी' इसलिए कि सत्यशोधक इस संसार में अलक्षित रह गया। इसके अलावा चिन्ता यह जानने की हैं कि वह अपने उद्देश्य में विफल क्यों रहा और उसका अन्त इतना त्रासद क्यों हुआ ?

अन्त में मुक्तिबोध ने बहुत मार्मिकता के साथ यह कहा हैं कि वे उस ब्रह्मराक्षस का शिष्य होना चाहते हैं, उसकी त्रासदी से द्रवित, जिसके कि वह जिस कार्य को अधूरा छोड़ गया हैं, उसे तर्क संगत परिणति तक पहुँचा सकें। उसकी वेदना का स्रोत उसका अधूरा कार्य या उद्देश्य ही हैं। उसी से वह हमेशा बेचैन बना रहता हैं और असामान्य व्यवहार करता हैं। निष्कर्ष यह कि मुक्तिबोध की आकांक्षा अपनी निजता को सुरक्षित रखते हुए कर्म-क्षेत्र में उतरकर अपने व्यक्तित्व के सामाजिक रूपान्तरण की हैं।

९.४ भूल-गलती (कविता)

'भूल-गलती' मुक्तिबोध की एक महत्त्वपूर्ण कविता हैं | यह उनकी आखिरी दौर की कविताओं में से एक हैं। यह 'कल्पना' के अप्रैल, 1964 के अंक में प्रकाशित हुई थी और 'चाँद का मुँह टेढ़ा हैं' काव्य संग्रह की पहली कविता हैं। 'भूल-गलती'-यह उसी प्रकार का शब्द हैं, जिस प्रकार के मुक्तिबोध द्वाराप्रयुक्त ‘खाक-धूल', 'लाभ-लोभ' आदि शब्द। यहाँ भूल-गलती' से कवि का आशय मध्यवर्गीय व्यक्ति की उस प्रवृत्ति से हैं, जिससे प्रेरित होकर वह व्यक्तिगत हित-सिद्धि के लिए सच्चाई और ईमानदारी को तिलांजलि देकर नाना प्रकार के समझौते करता हैं। कविता में एक जगह 'बख्तरबन्द समझौते' ये शब्द आए भी हैं। मुक्तिबोध ने इसमें मध्यवर्गीय व्यक्ति के आत्मसंघर्ष को बहुत ही नाटकीय बनाकर उपस्थित किया हैं। भूल-गलती को उन्होंने सुलतान का रूप प्रदान किया हैं और ईमान को एक विद्रोही का, जो कि बन्दी बनाकर बुरे हाल में सुलतान के सामने पेश किया जाता हैं। विद्वानों ने यह सवाल उठाया हैं कि सुलतान और उसके दरबार का रूपक इस कविता में क्यों ? उनके अनुसार उसके द्वारा मुक्तिबोध वर्तमान सत्ता की अमानवीयता और क्रूरता का चित्रण करना चाहते थे। वास्तविकता यह हैं कि इस कविता में उनका ध्यान राजनीतिक सत्ता पर कतई नहीं हैं। वे उक्त रूपक के द्वारा केवल यह दिखलाना चाहते हैं कि व्यक्तिगत स्वार्थ-भावना एक बहुत ही ताकतवर चीज होती हैं। उसके लिए न सच्चाई का कोई मतलब होता हैं, न किसी कोमल मानवीय भावना का। ऐसी शक्तिशाली और अमानवीय भावना को अपने जुल्मों के लिए इतिहास में प्रसिद्ध कोई सुलतान ही मूर्त कर सकता था।

मुक्तिबोध की खूबी हैं कि वे कविता में कोई रूपक या फैंटेसी खड़ी करते हैं, तो उसका अर्थ भी बतलाते चलते हैं। इस कविता के आरम्भ में ही वे कहते हैं -

भूल-गलती
आज बैठी हैं जिरहबख्तर पहनकर
तख्त पर दिल के
चमकते हैं खड़े हथियार उसके दूर तक,
आँखें चिलकती हैं नुकीले तेज पत्थर-सी;
खड़ी हैं सिर झुकाए
सब कतारें
बेजुबाँ बेबस सलाम में,
अनगिनत खम्भों व मेहराबों-थमे
दरबारे-आम में।

सुलतान कौन हैं ? इससे साफ बात और क्या होगी कि वह हमारी ही यानी मध्यवर्गीय व्यक्तियों की ही स्वार्थ-भावना हैं, जो सुरक्षा कवच धारण कर हमारे दिल के तख्त पर आसीन हैं ! यह सुलतान बाजाप्ता सुलतान हैं, बहुत ही ताकतवर, बहुत ही आतंककारी। उसकी आँखों में घायल कर देनेवाले तेज नुकीले पत्थरों-सी चमक हैं और उसके दरबार में शस्त्र धारण किए हुए सैनिक दूर तक खड़े हैं। आगे इन सैनिकों का अर्थ भी कवि ने स्पष्ट कर दिया हैं : **'कतारों मेंखड़े खुदगर्ज बा-हथियार/ बख्तरबन्द समझौते' ।** दरबार में जितने भी लोग हैं, सभी पंक्तिबद्ध, अपने पाँवों पर, मूक, विवश और बन्दगी में नतमस्तक। यह दरबारे-आम हैं, जो अनेक खम्भों और मेहराबों पर टिका हुआ हैं। ईमानदारी और सच्चाई के रास्ते से हटाकर व्यक्तिगत लाभ-लोभ में समझौते के लिए प्रेरित करनेवाली मध्यवर्गीय व्यक्ति के भीतर स्थित स्वार्थ-भावना का यह रोब कविता में देखते ही बनता हैं !

असल में यह कविता भी आत्मसंघर्ष की कविता हैं। इस कारण इसमें केवल खुदगर्जी का आतंक नहीं हैं, न सिर्फ समझौता परस्ती की शर्मनाक स्थिति का वर्णन। मध्यवर्गीय व्यक्ति आत्मसंघर्ष में पड़ा हैं। उसके भीतर ईमानदारी की भावना भी हैं, जो खुदगर्ज होने और समझौता करने से इनकार करती हैं। स्वभावतः इसके चलते उसे दंडित होना पड़ता हैं। भूल-गलती रूपी सुलतान से बगावत करने के जुर्म में उसे गिरफ्तार किया जाता हैं, उस पर निर्ममता पूर्ण प्रहार करके उसे जख्मी बना दिया जाता हैं। लेकिन उसके बाद भी वह सुलतान की अधीनता स्वीकार करने को तैयार नहीं। वह सुलतान के सामने खड़ा हैं, लेकिन जरा भी अदब नहीं दिखलाता। उसके चेहरे पर उसके भीतर का बेचैनी से भरा विद्रोहपूर्ण भाव काँप-काँप उठता हैं। और तो और, वह सुलतान की निगाहों में अपनी निगाहें डालता हैं, उनसे बेखौफ और खामोश नीली लपटें फेंकता हुआ। जाहिर हैं कि इस विद्रोह-भावना का साथ वे भावनाएँ नहीं देंगी, जो व्यक्ति को सुख-सुविधा और पद-प्रतिष्ठा की ओर ले जानेवाली हैं। यह सब वर्णन मुक्तिबोध ने कविता के दूसरे बन्द में किया हैं-

सामने
बेचैन घावों की अजब तिरछी लकीरों से कटा
चेहरा
कि जिस पर काँप
दिल की भाफ उठती हैं....
पहने हथकड़ी वह एक ऊँचा कद,

समूचे जिस्म पर लत्तर,
झलकते लाल लम्बे दाग
बहते खून के।
वह कैद कर लाया गया ईमान...
सुलतानी निगाहों में निगाहें डालता,
बेखौफ नीली बिजलियों को फेंकता
खामोश!!
सब खामोश
मनसबदार,
शायर और सूफी,
अलगजाली, इब्ने सिन्ना, अलबरूनी,
आलिमो फाजिल, सिपहसालार, सब सरदार
हैं खामोश!!

यहाँ भी मुक्तिबोध ने बतला दिया हैं कि जिस बागी को हथकड़ियाँ पहनाकर दरबार में हाजिर किया गया हैं, वह कोई व्यक्ति नहीं, बल्कि एक भावना हैं-**'वह कैद कर लाया गया ईमान'।** जैसे पहले बन्द में आतंककारी सुलतान और उसके दरबार का वर्णन बहुत सशक्त हैं, वैसे ही इस बन्द में ईमानरूपी विद्रोही का। **'दिल की भाफ'** - विवश आक्रोश से भरे भाव के लिए बहुत ही सटीक अभिव्यक्ति हैं। इस वर्णन में एक भव्यता हैं, क्योंकि यह एक विद्रोही का वर्णन हैं। अधिकारी, कवि, सन्त, दार्शनिक, ज्योतिषी, यात्री, विद्वान्, सेनापति और सरदार ये सभी मन की सुविधा भोगी और समझौतावादी वृत्तियाँ हैं, जो विद्रोह-भावना का साथ नहीं देतीं; जब वह सिर उठाती हैं, संघर्ष में क्षत-विक्षत हो जाती हैं, वे चुप रह जाती हैं। मुक्तिबोध ने जब सुलतान और उसके दरबार का चित्र खींचा हैं, तो उसी के अनुरूप मध्ययुग के अलग जाली, इनेसिन्ना और अलबरूनी-जैसे दार्शनिक, ज्योतिषी और यात्री का भी संकेत गर्भित उल्लेख किया हैं। इस दृष्टि से कविता का यह अंश 'अँधेरे में' के 'सब चुप, साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक् चिन्तक, शिल्पकार, नर्तक चुप हैं' वाले अंश से तुलनीय नहीं हो सकता, क्योंकि वह वर्णन यथार्थ हैं, प्रतीकात्मक नहीं। यहाँ पुनः यह कहने की जरूरत नहीं होनी चाहिए कि यह दो भावनाओं के बीच का संघर्ष हैं, जो मध्यवर्गीय व्यक्ति के मन के भीतर चल रहा हैं और मुक्तिबोध ने उसे अधिकाधिक मूर्त बनाने के लिए इस कविता में नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया हैं। चूंकि प्रश्न मध्यवर्गीय व्यक्ति का हैं, इसलिए यह संघर्ष परिवेश निरपेक्ष कोई आध्यात्मिक संघर्ष नहीं। इस कारण इसका सम्बन्ध सिर्फ भीतर से नहीं, बाहर से भी हैं।

ईमान विद्रोह करने पर इसलिए उतारू हो गया हैं कि उसे सुख-सुविधाओं के लिए कोई शर्मनाक शर्त स्वीकार नहीं। वह सिर ऊँचा किए हुए हठ पूर्वक वैसी हर शर्त को अस्वीकार करता हैं। वह स्वतन्त्र हैं, किसी और का उस पर नियन्त्रण नहीं। ईमानदारी से जीवन बिताने की इच्छा रखने वाला उत्साही व्यक्ति ऐसा ही हो सकता हैं, समझौते से दूर, अपने मूल्यों पर अडिग, अपना मालिक आप। यहाँ मुक्तिबोध ने जो खास बात कही हैं, वह यह कि केवल ईमानदारी से भूल-गलतीया स्वार्थ-भावना को पराजित नहीं किया जा सकता। ईमानदारी का उत्साह या जोश देखकर यदि कोई व्यक्ति सोचता हैं कि भूल-गलती रूपी सुलतान की सल्तनत अब खत्म होनेवाली हैं, उसका कवच अब उसकी रक्षा नहीं कर

सकेगा, वह रेत का ढेर-भर बचा हैं और उसके आतंक में अब जोर नहीं, तो उसका ऐसा सोचना गलत हैं। इसका प्रमाण पूरा वर्तमान काल हैं, जो कि उससे त्रस्त हैं। भूल-गलती की रक्षा करनेवाली हमारी कमजोरियाँ हैं, जिन्हें खत्म करने के लिए ईमानदारी के अलावा कोई और चीज भी चाहिए। हमारी कमजोरियाँ-हमारी शिथिलता और ढिलाई-हमारी खुदगर्जी को बहुत खूँखार बना देती हैं। यहाँ अँधेरे में' की ये पंक्तियाँ भी स्मरणीय हैं- ...**भयानक खड्डे के अँधेरे में आहत और क्षत-विक्षत, मैं पड़ा हुआ हूँ; /शक्ति ही नहीं हैं कि उठ सकूँ जरा भी/ (यह भीतो सही हैं कि/ कमजोरियों से ही मोह हैं मुझको)**। खुदगर्जी न सच्चाई की आँखें निकालने से हिचकती हैं, न कोमल मानवीय भावनाओं का गला घोंटने से। वह हमें घेरकर हमारी सभी उच्च भावनाओं को नष्ट कर हमें बेबुनियाद बना डालती हैं, जैसे हमारा सिर और पैर दोनों काट डाले हों। हम सभी इस खुदगर्जी के ऐश्वर्य के बन्दी हैं, उसके शाही महल के कैदी। कविता के तीसरे बन्द में मुक्तिबोध ने यही कहा हैं -

नामंजूर
हठ इनकार का सिर तान...खुद-मुखतार।
कोई सोचता उस वक्त-
छाए जा रहे हैं सल्तनत पर घने साए स्याह,
सुलतानी जिहरबख्तर बना हैं सिर्फ मिट्टी का,
वो-रेत का-सा ढेर-शाहंशाह,
सब बस्तियाँ दिल की उजाड़े डालता,
करता, हमें वह घेर,
बेबुनियाद, बेसिर-पैर...
हम सब कैद हैं, उसके चमकते ताम-झाम में,
शाही मुकाम में!!

स्पष्टतः यहाँ 'भूलों का सम्बन्ध अपनी अन्तरात्मा और अपनी जिन्दगी से हैं। आकस्मिक नहीं कि इससे पहले इस कविता में 'अपराध' शब्द भी आया हैं-**'अचानक जाने किस चेतना में डूब/ उर में समाए हुए अपने तलातल/ टटोलता हूँ... क्या कहीं मेरा अपराध?/ मेरा अपराध?'** आगे इसमें समझौता भी हैं-**'वहाँ किसी पाताली थाह में समझौते...और/ साझे हैं, ठीक उन्हीं से कि/ जिनसे हैं विरक्ति/ जिनके प्रति रहा आया/ भीतरी विरोधों का जोर'।** 'भूल-गलती' का सुलतान इस कविता में आकर दस्यु हो गया हैं और उसने व्यापक अर्थ ग्रहण कर लिया हैं, जैसे इसके आत्मसंघर्ष ने।

मुक्तिबोध के सामने यह स्पष्ट था कि स्वार्थ-भावना को खाली ईमानदारी से परास्त नहीं किया जा सकता। उनके सामने समस्या थी कि तब वह कैसे सम्भव हैं ? कविता में आगे उन्होंने कहा हैं कि सुलतान के दरबार में दरबारियों अथवा कैदियों में से अचानक कोई निकल भागता हैं, जैसे मुँह से एक अजीब सी कराह निकल जाए और व्यक्ति से अलग यानी आजाद हो जाए ! कविता एकदरबारी अथवा कैदी की ही जुबानी हैं। वह कहता हैं कि उसके निकल भागने से जो हलचल हुई, तो वह भी सचेत हो गया। पंक्तिबद्ध खड़े स्वार्थी, सशस्त्र और सुरक्षा कवचधारी समझौतों के पुतलों को वहम हुआ कि कोई और बात हुई हैं, कैदी नहीं भागा। दरबार में जो दोहरे चरित्र के अनुभवों से सम्पन्न, घुटे और सधे हुए दढ़ियल सेनाध्यक्ष थे, उन्होंने समझ लिया कि कोई कैदी भागा हैं। वह सुलतान के लिए संकट का कारण बन सकता हैं, यह सोचकर वे सहम उठे, लेकिन कुछकर नहीं सके। यह सुलतान के

एक कैदी के भीतर, यानी स्वार्थ-भावना से वशीभूत व्यक्ति के भीतर संकल्प-शक्ति का जागना हैं। यदि व्यक्ति यह संकल्प कर ले कि वह ईमानदारी का आचरण करेगा, तो वह अपनी स्वार्थ-भावना को पराजित करने में सफल होगा। संकल्प के जाग्रत् होने का मतलब ही हैं स्वार्थ-भावना या भूल-गलती की कैद से छूटना। सुलतान के दरबार से कैदी के भागने का यही तात्पर्य हैं | यहाँ उनका कहना हैं कि -

इतने में, हमीं में से
अजीब कराह-सा कोई निकल भागा,
भरे दरबारे-आम में मैं भी
सँभल जागा!!
कतारों में खड़े खुदगर्ज बा-हथियार
बख्तरबन्द समझौते
वहम कर, रह गए
दिल में अलग जबड़ा, अलग दाढ़ी लिए,
दुमुँहेपने के सौ तजुर्षों की बुजुर्गी से भरे,
दढ़ियल सिपहसालार संजीदा
सहमकर रह गए!!

'हमीं में से' का सम्बन्ध पिछले बन्द की उक्ति 'हम सब कैद हैं' से हैं।**'भरे दरबारे-आम में मैं भी/ सँभल जागा'** से इस बात की पुष्टि होती हैं कि कविता जिसकी जुबानी हैं, वह भी कैदियों में से एक हैं। दढ़ियल सेनाध्यक्ष का मुक्तिबोध ने जो वर्णन किया हैं, वह इतना सशक्त और संश्लिष्ट हैं कि उसे उस तरह गद्य में ला सकना सम्भव नहीं हैं। ऐसे ही स्थलों पर उनकी काव्य-भाषा और साधारण हिन्दी गद्य के बीच के फासले का पता चलता हैं।

जो कैदी भागा था, वह शाही बुर्ज के दूसरी तरफ निकल गया और गोल टीलों तथा घने पेड़ों वाली घाटियों में खो गया। मुक्तिबोध कहते हैं, ऐसा लगता हैं कि वह अनाम और अज्ञात दरोंवाले इलाकों में सेना संगठित कर रहा हैं। यह काम चूँ कि गैरकानूनी हैं, इसलिए वह घाटियों और वादियों में छिपकर ही किया जा सकता हैं; रोशनी में नहीं, अँधेरे में। स्मरणीय हैं कि कैदी के कैद से छूटकर भागने का मतलब हैं ईमानदारी बरतने के लिए मन में संकल्प-शक्ति का जगना। उसके अनुसार सेना संगठित करने का मतलब हुआ संकल्प-शक्ति को दृढ़ बनाना, उसे आवश्यक साज-सामान से लैस करना। यह करना जरूरी हैं, वरना संकल्प कमजोर हुआ, तो स्वार्थ-भावना उसे भी नष्ट कर देगी।'

इस काम के लिए कोई प्रणाली पहले से तय नहीं, इसलिए सेना-संगठन का काम अनाम और अज्ञात दरोंवाले इलाके में ही हो सकता हैं। चूँकि यह कार्य सही हैं, भूल-गलती की सत्ता को खत्म करने के लिए, इसलिए यह उस अँधेरे में नहीं हो सकता, जो हमारा परिचित हैं और सत् का नहीं, असत् का प्रतीक हैं। इस कारण मुक्तिबोध ने जो अँधेरा खड़ा किया हैं, वह सच्चाई का 'स्वर्णिम अन्धकार' हैं ! सच्चाई के प्रकाश को अन्धकार में बदलने में उन्हें काफी कठिनाई हुई हैं, फिरभी यह काम उन्होंने सफलतापूर्वक किया हैं। उनकी जटिल संवेदना और अभिव्यक्ति दोनों की सूचना उनकी इस पंक्ति से मिलती हैं, जो रूपक का अर्थ भी खोलती हैं-'**सचाई के सुनहले तेज अक्सों के धुंधलके में'** । वह कैदी संकल्प-शक्ति के

सैन्य-बल के द्वारा क्या करेगा ? वह भूल-गलती रूपी सुलतान को शिकस्त देकर हमारी हार का प्रतिशोध लेगा।

अन्त में मुक्तिबोध ने कहा हैं-**'संकल्प-धर्मा चेतना का रक्तप्लावित स्वर, / हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर प्रकट होकर विकट हो जायगा!!'** वह कैदी, जिसकी जुबानी यह कविता हैं, कहता हैं कि जो कैदी अपनी सेना के द्वारा सुलतान पर आक्रमण करेगा, वह संकल्पधर्म चेतना का रक्तप्लावित स्वर हैं, जो तैयारी पूरी होते ही प्रकट होकर विकट रूप धारण कर लेगा।

विद्वानों का ध्यान इस तरफ भी गया हैं कि पूरी कविता जहाँ अरबी-फारसी के शब्दों में लिखी गई हैं, उसकी अन्तिम तीन पंक्तियों में कवि ने संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया हैं। ऐसा इसलिए हैं कि पूरी कविता में जहाँ सुलतान, उसके दरबार और उससे बगावत करनेवाले का वर्णन हैं, वहाँ अन्तिम तीन पंक्तियों में दृढ़ संकल्प-भाव का। जब कवि को संकल्प-भाव का वर्णन करना होता हैं, तो वह अपनी स्वाभाविक और विषय के उपयुक्त भाषा का सहारा लेता हैं। यथा -

लेकिन, उधर उस ओर,
कोई, बुर्ज के उस तरफ जा पहुँचा
अँधेरी घाटियों के गोल टीलों, घने पेड़ों में
कहीं पर खो गया,
महसूस होता हैं कि वह बेनाम
बेमालूम दरों के इलाके में
(सचाई के सुनहले तेज अक्सों के धुंधलके में)
मुहैया कर रहा लश्कर;
हमारी हार का बदला चुकाने आयगा
संकल्प-धर्मा चेतना का रक्तप्लावित स्वर,
हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर
प्रकट होकर विकट हो जायगा!!

इस प्रकार यह कहा जा सकता हैं कि मध्यवर्गीय व्यक्तियों की स्वार्थ-भावना और समझौता परस्ती उनकी जीवनगत परिस्थितियों की देन हैं। ऐसी स्थिति में वे उनसे तभी मुक्त हो सकते हैं, जबकि उनकी परिस्थितियाँ बदलें। ऐसा माननेवाले लोग व्यक्ति की संकल्प-भावना को एक मनोगत वस्तु मानकर उसे विशेष महत्त्व देंगे। लेकिन मुक्तिबोध व्यक्ति के व्यक्तित्व या चरित्र-निर्माण में उसके निजी प्रयासों को भी महत्त्व देते हैं | इसी कारण दूसरे प्रगतिशील कवियों की कविता जहाँ आत्मसंघर्ष से शून्य हैं, वहाँ मुक्तिबोध में तीखा आत्मसंघर्ष हैं। वे मध्यवर्ग से आने वाने कवि थे और बेहतर समाज के निर्माण में मध्यवर्ग की महत्त्वपूर्ण भूमिका मानते थे, इसलिए मध्यवर्ग और मध्यवर्गीय व्यक्ति का आत्मसंघर्ष उनकी कविता का महत्त्वपूर्ण विषय हैं। दूसरी बात यह कि जैसे उनकी अन्य कविताएँ आशा और आस्था के स्वर के साथ समाप्त होती हैं, यह कविता भी इस विश्वास के साथ समाप्त हुई हैं कि व्यक्ति में दृढ़ संकल्प-भाव हो, तो वह स्वार्थ-भावना और समझौता परस्ती से मुक्त होकर ईमानदारी के रास्ते पर चल सकता हैं। यहाँ यह भी स्पष्टतः एक रूपकात्मक कविता हैं, जिसमें दरबार से एक कैदी का निकल भागना, उसके द्वारा पहाड़ी इलाके में जाकर सेना

संगठित करना और तैयारी पूरी हो जाने के बाद सुलतान पर आक्रमण की योजना बनाना सब रूपक हैं।

९.५ अँधेरे में (कविता)

'अंधरे में' कविता 'चाँद का मुँह टेढा हैं' संकलन की अन्तिम और सशक्त रचना हैं | डॉ. नामवरसिंह ने इसे 'नई कविता की चरम उपलब्धि' और 'कवि-कर्म की चरम परिणति' कहा हैं। अशोक वाजपेयी ने इसे 'पिछले बीस वर्ष की कविता की सम्भवतः श्रेष्ठतम उपलब्धि माना हैं।' यह रचना फैन्टेसी पर आधारित संस्पेंस, तिलस्म, सन्देह, आशंका, भयावनेपन, दुश्चिन्ता और दु:स्वप्नों की लम्बी कविता हैं। गहन अन्धकार की पीठिका पर विकृत भयावह चित्रों द्वारा यह कविता किसी मृत्यु-दलकी शोभा यात्रा का नग्न यथार्थ प्रस्तुत करती हुई सैनिक शासन और अमानवी हिंसाओं के बीच जनक्रान्ति का सूत्रपात करती हैं। वातावरण रहस्यमय, आतंकपूर्ण किन्तु मूर्त हैं। वस्तुतः यह रचना 'खोई हुई परम अभिव्यक्ति की खोज' हैं।

कविता में दो पात्र हैं-काव्य नायक 'मैं' और उसका प्रतिरूप 'वह'। कवि के शब्दों में **'वह रहस्यमय व्यक्ति अब तक न पाई गई मेरी अभिव्यक्ति हैं।'** यह परम अभिव्यक्ति क्या हैं? कवि के शब्दों में ही -

पूर्ण अवस्था वह
निज सम्भावनाओं, निहित प्रभावों, प्रतिभाओं की,
मेरे परिपूर्ण का आविर्भाव,
हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव वह,
आत्मा की प्रतिभा।

पहले 'वह' तिलस्मी खोह में गिरफ्तार कोई 'एक' हैं बाद में यह अनजानी-अनपहचानी आकृति 'रक्तालोक स्नात पुरुष' के रूप में प्रकट होती हैं। यह रहस्यमय पुरुष हमेशा प्रतीकों में प्रयुक्त हुआ हैं और काव्य नायक को कठिन कार्यों का आदेश देता हैं -

पार करो पर्वत-सन्धि के गह्वर,
रस्सी के पुल पर चलकर
दूर उस शिखर-कगार पर स्वयं ही पहुँचो।

पूरी कविता गहरे द्वन्द्व में 'जगत समीक्षा' करती हुई जान पड़ती हैं और काव्यनायक की आत्मा में भीषण सच्चित्-वेदना दहलाने वाली हैं। यह पूर्णतम परम अभिव्यक्ति अर्थात् रहस्य पुरुष काव्य नायक को विवेक, भविष्य का नक्शा और जगत-समीक्षा की शक्ति प्रदान हैं। फैन्टेसी 'प्रोसेशन' के रूप में एक नया मोड लेती हैं। सुनसान मध्यरात्रि के अँधेरे में कोलतार सड़क **'भरी हुई खिंची हुई काली जिह्वा'** जैसी प्रतीत होती हैं, यहाँ मुक्तिबोध वातावरण के भयावनेपन के अनुरूप ही बिम्ब उपस्थित करते हैं। कवि स्वप्न में किसी मृत्यु-दल की शोभा-यात्रा देखता हैं। जुलूस भयावना और विचित्र हैं जिसमें सैनिक तानाशाही का चित्रण भी हैं और स्वार्थी तत्वों के यथार्थ नंगे चित्र मौजूद हैं। काले घोड़े, मिलिट्री-ड्रेस, ब्रिगेडियर, जनरल, मार्शल सेनाध्यक्ष, सम्पादक, कवि, आलोचक,

उद्योगपति, मन्त्री, कुख्यात हत्यारा, डोमा जी, उस्ताद आदि सभी उसमें शामिल हैं, जैसे **'भीतर का राक्षसी स्वार्थ अब साफ उभर आया हैं, छिपे हुए उद्देश्य यहाँ निखर आए हैं'** काव्य नायक कवि ने उन सबकी अमानवीयता, पैशाचिकता, स्वार्थबद्धता छिपे तरीकों से देख ली हैं अत: उसे सजा देने के लिए पकड़ा जाता हैं — 'अँधेरे में उसने देख लिया हमको, व जान गया वह सब, मार डालो, उसको खत्म करो एकदम।' कवि को महसूस हुआ कि ये भयानक स्वार्थी तत्व दफ्तरों, केन्द्रों, घरों आदि में साजिश करते रहते हैं **'हाय,हमको, हाय!! मैंने उन्हें देख लिया नंगा, उसकी मुझे और सजा मिलेगी।'** सच्चाई जान लेने पर सजा मिलती ही हैं, आज के जमाने में।

पुनः फैण्टेसी प्रारम्भ होती हैं और नायक स्वप्न में 'जनक्रान्ति के दमन निमित्त 'मार्शल-लॉ देखता हैं और बरगद के नीचे उपेक्षितों, वंचितों, गरीबों के लुटे-पिटे डेरे। उसी समय किसी पागल का एकाएक आत्म उद्बोधन सुनाता हैं जो सैनिक प्रशासन की प्रतिक्रिया में कहता हैं। वस्तुतः यह पागल कवि का अन्तर्मुखी व्यक्तित्व हैं या वह रहस्य-पुरुष ही हैं जो कई प्रतीकों में स्वयं को और व्यवस्था को कौंचता हैं। उसके व्यंग्य-मिश्रित आलाप 'फैन्टेसी गत कविता के अन्दर कविता' बन गए हैं। ये 'करुण रसाल हृदय के स्वर' हैं जिनमें उत्पीड़न का कटु यथार्थ, सामाजिक प्रवंचन, बुद्धिजीवी के बिके लिजलिजे व्यक्तित्व, व्यक्ति की जड़ निष्क्रियता और निजी स्वार्थबद्धता को पूरी ताकत के साथ कचोटने वाला व्यंग्य उभरा हैं-

ओ मेरे आदर्शवादी मन
ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन,
अब तक क्या किया?
जीवन क्या जिया!!
उदरम्भरि बन अनात्म बन गए,
भूतों की शादी में कनात से तन गए,
किसी व्यभिचारी के बन गए बिस्तर
बताओ तो किस-किस के लिए तुम दौड़ गए,
करुणा के दृश्यों से हाय! मुँह मोड़ गए
बन गए पत्थर, /बहुत-बहुत ज्यादा लिया,
दिया बहुत-बहुत कम,
मर गया देश, अरे जीवित रह गए तुम!!

इस आलोचन और चिन्तन के बाद नायक महसूस करता हैं कि उसकी जड़ता, निष्क्रियता ही मानों इन सब बातों के लिए जिम्मेदार हैं। अतः इस बाहरी और भीतरी दुनिया के गहरे द्वन्द्व ने कवि की नींद हराम कर दी। वह तलाशता हैं उस जन-संसार को जहाँ मानवीयता की सुगन्ध महक रही हो। उसके भीतर 'मणिमय तेजस्क्रिय जीवनानुभव' पुनःसजग और प्रबल हो जाते हैं और वह निष्कर्ष निकालता हैं कि 'जूझना ही हैं।' जब किस तरफ हो तुम ? प्रश्न का उत्तर व्यक्ति को मिल जाए तब उसमें निश्चित ही सक्रियता आ जाती हैं।

फैन्टेसी का विस्तार होता हैं, वह तिलक की मूर्ति देखता हैं फिर गान्धी की। उसे यह सुनने को मिलता हैं कि चिल्लाने से कोई मसीहा नहीं बन जाता और 'जनता के गुणों से ही सम्भव भावी का उद्भव।' अतः नायक जनवादी चेतना से अनुप्राणित हो उठता हैं। 'भावी का उद्भव' फैन्टेसी से शिशु के रूप में मूर्त हो उठता हैं जो जनता के उभरते संघर्षों का प्रतीक बन

जाता हैं-**'जिसको न मैं इस जीवन में कर पाया वह कर रहा हैं।'** वह शिशु सूरजमुखी फूल गुच्छ स्वर्ण पुष्प के रूप में बदल जाता हैं और बाद में वजनदार बन्दूक के रूप में यानि सक्रिय जनवादी सशक्त क्रान्ति में परिणित हो जाता हैं।

जनसंघर्ष में एक कलाकार की मृत्यु होती हैं जो बन्धनों से मुक्ति का गायक था, जीवनानुभवों से सबमें हलचल पैदा करता था, शुचितर विश्व के मानवीय हदयों के सपने देखता था - उसका यों वध हुआ, मर गया एक युग, मर गया एक जीवनादर्श।' अत: नायक साथियों की तलाश कर संगठित जनक्रान्ति करना चाहता हैं - **'नए-नए सहचर, सकर्मकसत्-चित्-वेदना भास्करा।'** नायक को जीने में उतरते हुए सत्ता ने धर दबोचा, उसका स्क्रीनिंग किया गया, मस्तिष्क में व्याप्त ऊर्जा, सपने, विद्रोह, आस्था की जाँच की गई। सारी यातनाओं के बावजूद भी काव्य-नायक अपना लक्ष्य नहीं त्यागता और बाद में उसे अपने सहचर मित्र मिल जाते हैं **'हम कहाँ नहीं हैं, सभी जगह हम।'** वह अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने को तैयार हो जाता हैं, शब्दों में ही नहीं कर्म में ही जिससे कि वह अरुण-कमल' को पा सके। महज बौद्धिक जुगाली से काम नहीं होता इसलिए -

अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे।
तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब/ पहुँचना होगा दुर्गम
पहाड़ों के उस पार/ तब कहीं देखने मिलेंगी बातें।
जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता/ अरुण कमल एक।

फलस्वरूप वृद्ध-बालक-युवा गण सबमें क्रान्ति की आग लग जाती हैं, सिद्धान्तों की सक्रिय परिणति के समाचार पर्चोंके माध्यम से मिलते हैं। कवि बहुत सीधी और सपाट टिप्पणी में अपना सामाजिक आशय व्यक्त कर देता हैं -

कविता में कहने की आदत नहीं, पर कह दूँ
वर्तमान समाज चल नहीं सकता/
पूँजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता,
स्वातन्त्र्य व्यक्ति का वादी
छल नहीं सकता मुक्ति के मन को/ जन को।

मुक्तिबोध व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के नाम पर पनपने वाले व्यावसायीकरण और शोषण के सख्त विरोधी हैं। कविता का नायक देखता हैं कि इस जनक्रान्ति में कवि साहित्यकार, चिन्तक, नर्तक आदि सब चुप हैं क्योंकि **'बौद्धिक वर्ग हैं क्रीत दास, किराए के विचारों का उद्भास।'** सत्ता द्वारा क्रान्ति का दमन किया जाता हैं **'कहीं आग लग गई, कहीं गोली चल गई|'** इस पंक्ति की पुनरावृत्ति खौफनाक दमन का गहरा संकेत देती हैं। दादा का सोंटा, कक्का की लाठी, बच्चे की पेंपें और स्लेट पट्टी भी संघर्ष में काम आती हैं। जब **'आत्मा के चक्केपर'** संकल्प शक्ति के लोहे का मजबूत ज्वलंत टायर चढ़ाया जाता हैं तब क्रान्ति की लहर फैलती हैं और ऐतिहासिक संघर्षों का ज्ञान और श्रमिकों का सन्ताप **'युवकों में व्यक्तित्वांतर'** लाता हैं। कवि की स्नेह-वेदना क्रान्ति-प्रेमिका से मिलती हैं।

गैलरी में खड़े काव्य नायक को वह रहस्यमय पुरुष (परम अभिव्यक्ति) दिखलाई देता हैं जो सड़कों पर जन-यूथ में खो जाता हैं। वह सर्वहारा की मुक्ति से जुड़ा जन-क्रान्ति का अग्रदूत

रहस्यमय पुरुष फटेहाल गलियों में घूमता हैं जिसे खोजने के लिए कवि हर गली, हर सड़क, हर चेहरे को देखता हैं क्योंकि उस परम अभिव्यक्ति का अपार फैलाव हैं -

इसीलिए मैं हर गली में/ और हर सड़क पर
झाँक-झाँक देखता हूँ हर एक चेहरा,
प्रत्येक गतिविधि/ प्रत्येक चरित्र
व हर एक आत्मा का इतिहास
हर एक देश व राजनीतिक परिस्थिति
प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत आदर्श
विवेक-प्रक्रिया, क्रियागत परिणति!!
खोजता हूँ पठार-पहाड़-समुन्दर
जहाँ मिल सके मुझे/मेरी वह खोई हुई
परम अभिव्यक्ति अनिवार। आत्मा-सम्भवा।

इसी खोज में कविता की समाप्ति होती हैं। अन्त में पूरी जनक्रान्ति की प्रक्रिया को तीन बातों में स्पष्ट किया गया हैं-पहले हृदय में 'मानवीय स्वानुभूत आदर्श जन्म लेते हैं फिर 'विवेक प्रक्रिया' द्वारा रास्ता तय किया जाता हैं और बाद में क्रान्ति के रूप में 'क्रियागत परिणति' होती हैं। यह रचना आधुनिक जन इतिहास का स्थायी दस्तावेज मानी गई हैं। कविता में 'अस्मिता की खोज' नहीं, दर असल व्यक्तित्वांतर प्रधान हैं। मुक्तिबोध की यह श्रेष्ठतम सर्जना हैं।

एक बात बहुत उल्लेखनीय हैं - मुक्तिबोध ने अपनी अधिकांश रचनाओं में परिवर्तन का माहौल और क्रान्ति का सूत्रपात कराते हुए आस्थामय समापन किया हैं लेकिन कहीं भी 'सर्वहारा का अधिनायकत्व' घोषित नहीं हैं। 'अँधेरे में परम अभिव्यक्ति की खोज में कविता का समापन हुआ हैं, 'भूल गलती' में यह विश्वास व्यक्त हुआ हैं कि 'संकल्पधर्मा चेतना का रक्त प्लावित स्वर हार का बदला चुकाने आएगा।' इसका कारण यह हैं कि परिवर्तन और क्रान्ति-प्रक्रिया की तात्कालिकता समझकर मुक्तिबोध एक माहौल पैदा करते हुए स्पष्ट वैचारिकता और लक्ष्य निर्धारित करते हैं, सिद्धि की घोषणा नहीं करते क्योंकि वह तो अनिवार्य परिणाम हैं ही। समसामयिकता तो प्रक्रिया की तलाश और वस्तुस्थिति के सारे पक्षों को यथार्थ की खुरदरी जमीन पर मानवीयता के साथ प्रस्तुत कर देना हैं। इस दायित्व को मुक्तिबोध ने भरसक निभाया हैं और इस दिशा में वे बेमिसाल हैं। उनका प्रभाव ही आगे चलकर धूमिल एवं अन्य कवियों पर भी दिखलाई देता हैं। इसलिए मुक्तिबोध को समकालीन काव्य को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला कवि कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी|

९.६ सारांश

इस इकाई में हमने मुक्तिबोध के जीवन परिचय को जाना| साथ ही पाठ्यक्रम में सम्मिलित तीनों कविताओं का सविस्तर अध्ययन किया हैं| विद्यार्थी इकाई में शामिल सभी कविताओं से जुड़े प्रश्नों को हल कर सकेंगे|

९.७ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) ब्रम्हराक्षस कविता की संवेदना प्रकाश डालिए |
२) भूल-गलती कविता की भावधारा को स्पष्ट किजिए |
३) अंधेरे में कविता की संवेदना पर प्रकाश डालिए |

९.८ लघुत्तरीय प्रश्न

१) मुक्तिबोध का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?
उत्तर – १३ नवम्बर सन १९१७ में मध्यप्रदेश मर हुआ था |

२) मुक्तिबोध विशेष रूप से किस विचार फ=धारा के कवी माने गए ?
उत्तर – प्रगतिवादी विचारधारा

३) अंधेरे में कविता मुक्तिबोध के किस काव्य संग्रह में संकलित हैं |
उत्तर – चाँद का मुँह टेढा हैं

४) भूल-गलती कविता सर्वप्रथम किस पत्रिका में प्रकाशित हुई थी ?
उत्तर – 'कल्पना' पत्रिका में

५) 'अंधेरे में' कविता किस आलोचकों ने नई कविता चरम उपलब्धि कहा हैं ?
उत्तर – नामवर सिंह

९.९ संदर्भ पुस्तके

१) मुक्तिबोध और उनकी कविता – डॉ. बृजबाला सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण – 2004
२) मुक्तिबोध – निर्मल शर्मा, त्रयी प्रकाशन, रतलाम(म.प्र.),
३) तारसप्तकसे गद्य कविता (मुक्तिबोध-शमशेर-रघुवीर) रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष – 1997
४) समकालीनहिन्दी कविता – अज्ञेय और मुक्तिबोध-शशि शर्मा, वाणी प्रकाशन, वर्ष 1995
५) मुक्तिबोध की कविताएँ –बिम्ब प्रतिबिम्ब, नंदकिशोर नवल, प्रकाशनसंस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2006
६) गजानन माधव मुक्तिबोधकीप्रतिनिधि कविताएँ – टीका, राजेश वर्मा एवं सुरेश अग्रवाल, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संकरण- 2010
७) अज्ञेय से अरुण कमल – भाग १, डॉ. संतोष कुमार तिवारी, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली, वर्ष- 2005

❖❖❖❖

१०

मुक्तिबोध की काव्य भाषा
और
मुक्तिबोध के काव्य में फैंटेसी

इकाई की रूपरेखा

१०.० इकाई का उद्देश्य
१०.१ प्रस्तावना
१०.२ मुक्तिबोध की काव्य भाषा
१०.३ मुक्तिबोध के काव्य में फैंटेसी
१०.४ सारांश
१०.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न
१०.६ लघुत्तरी प्रश्न
१०.७ संदर्भ पुस्तकें

१०.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई का मूल उद्देश्य आधुनिक हिन्दी साहित्य के महत्वपूर्ण कवि मुक्तिबोध की काव्य भाषा और उनके काव्य में फैंटेसी का अध्ययन करना हैं |

१०.१ प्रस्तावना

मुक्तिबोध की भाषा भावों की सबल अभिव्यक्ति करने में पूर्णत: सक्षम रही हैं | यहाँ हम काव्य में विद्यमान फैंटेसी के अतिरिक्त मुक्तिबोध द्वारा प्रयुक्त भाषा व शैली दोनो मुद्दों पर विचार किया जायगा |

१०.२ मुक्तिबोध की काव्य भाषा

मुक्तिबोध की काव्यभाषा विचारों की प्रखरता को सबल अभिव्यक्ति दे सकी हैं, परम्परा के मोह को त्याग कर मौलिकता के साथ | चाहे मानसिक तनाव और अंतर्संघर्ष हो या युगीन पाशविकता और व्यवस्था की क्रूरता, कवि की काव्य भाषा आतंक, गति विस्फोट और ऊर्जा से संपृक्त होकर एक-एक पार्ट को उधेड़ कर सामने रख देती हैं | आलोचकों के अनुसार कवि होने के लिए अर्थवान शब्द का साधक होना आवश्यक हैं । इस दृष्टि से मुक्तिबोध कवि हैं क्योंकि उनके प्राण अर्थ-खोजी हैं, उनकी मुख्य चिंता अर्थ-प्राप्ति की रही हैं, उनकी साधना सार्थक अर्थ की प्राप्ति की रही हैं । उनकी यह साधना 'तार-सप्तक' से

आरम्भ होती हैं और 'चाँद का मुँह टेढ़ा हैं' में पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त होती हैं। उनकी काव्य-भाषा निरन्तर तद्भव शब्दावली के प्रयोग की ओर बढ़ती रही हैं। 'तार-सप्तक' की कविताओं में छायावादी पदावली, चित्रमयता एवं रहस्यवादिता का स्वर मिलता हैं -

घनी रात, बादल रिम-झिम हैं, दिशा मूक, निस्तब्ध बनान्तर।
व्यापक अन्धकार में सिकुड़ी सोई नर की बस्ती, भयंकर।

तत्सम शब्दों का प्रयोग छायावादी काव्य-शैली की विशेषता रही हैं। मुक्तिबोध की आरम्भिक रचनाओं में यह विशेषता स्पष्ट दृष्टिगत होती हैं। इसके विपरीत 'चाँद का मुँह टेढ़ा हैं' में तद्भवशब्दों का प्रयोग बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता हैं।

मुक्तिबोध की काव्य-भाषा की सबसे बड़ी विशेषता हैं विषय और भाव के अनुरूप शब्दावली का प्रयोग। लोक शब्दावली का प्रयोग जहाँ ग्रामीण अंचल से जुड़ा हैं, वहाँ तत्सम शब्द अधिकतर शिष्ट, आभिजात्य और नागरिक भावधारा से जुड़े होते हैं। मुक्तिबोध जनतंत्री भावधारा के कवि हैं, अतः उन्होंने तद्भव शब्दों के माध्यम से ही महनीय के स्थान पर सामान्य अकिंचन की प्रतिष्ठा की हैं। सामान्य जन की क्रान्ति का यह चित्र देखिए -

दादा का सोंटा भी करता हैं दाँव-पेंच / नाचता हैं हवा में
गगन में नाच रही कक्का की लाठी।

लत्तर, कनटोप, कन्दील, सियाह, हुलसी, अकुलायी, संवलायी आदि अनेक शब्द उनकी काव्य-भाषा को जन-जीवन से जोड़ देते हैं। धूल-धक्कड़, गिरस्तिन, दल्लिद्दर, हेठा, फफोला आदि भी ऐसे ही शब्द हैं। वहीं नगरीय संवेदना का चित्रण करते समय उनकी भाषा का तेवर बदल जाता हैं, उनका शब्द-चयन ऐसा होता हैं कि प्रसंग और कथ्य सहज ही सकार हो उठता हैं। नगर के आभिजात्य मुहल्ले में फैली चांदनी का यह चित्र देखिए -

नंगी-सी नारियों के / उघरे हुए अंगों के
विभिन्न पोज़ों में / लेटी थी चाँदनी।

तथाकथित संभ्रान्त वर्ग के जीवन के चित्रों को उभारने के लिए वह अंग्रेजी के उन्हीं शब्दों को चुनते हैं जो प्रचलित हैं, जैसे-गैस-लाट, ड्रैस, मार्शल, कप, फोटो,प्रेम, फ्यूज बल्ब आदि। वांछित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए वह अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग भी करते हैं -

भूल गलती / आज बैठी हैं जिरहबस्तर पर
सब कृतारें / बेजुबाँ वेवस सलाम में
अनगिनत खम्भों व मेहराबों-थमे / दरबारे आम में।

अपने कथ्य को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए उन्होंने विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली से भी सहायता ली हैं-चुम्बकीय शक्ति, गुरुत्व-आकर्षण, इलेक्ट्रान, मैगनेट आदि ऐसे ही शब्द हैं। इनकी काव्य-भाषा में हठयोग के रहस्यवादी शब्द भी मिलते हैं -

तब धरती की महानाड़ियाँ / इड़ा-पिंगला फड़क रही थीं
और सुषमा के अभ्यन्तर / उन अंगारी प्राण-पयों पर
जीवन-संयम की कुण्डलिनी / पृथ्वी के भीतर की ज्वालामयी कमलिनी की
विवेकमय पंखुरियों पर / हम जा लेटे।

वस्तुतः मुक्तिबोध का इरादा अपनी कविता को रहस्यवादी बनाना नहीं था जपितु हठयोगी अध्यात्म-बोध का अर्थ-संदर्भ देकर अपनी बात को प्रभावशाली बनाना था। अपनी काव्यानुभूति को सटीक एवं सशक्त बनाने के लिए उन्होंने जो भी शब्द उपयुक्त समझा, उसी को ग्रहण कर लिया। यही कारण हैं कि तत्सम, तद्भव, अंग्रेजी, अरबी-फारसी के अतिरिक्त

उन्होंने मराठी के भी शब्दों-नक्षे, गजर, पूर, हकाल दिया आदि का प्रयोग किया हैं | मराठी की रूप-रचना को अपनाकर हिन्दी को नये शब्द-प्रयोग दिये हैं जैसे विषारी, कुहरीले, रकताल, धुमैला, रोगीला आदि । जब उन्हें कोई उपयुक्त विशेषण नहीं मिलता तो वह या तो नया विशेषण गढ़ लेते हैं या अन्य विशेष्य का विशेषण जोड़ देते हैं जिससे वस्तुतः वह अपनी अनुभूति को बड़े यथार्थ और सशक्त रूप में प्रकट कर सके हैं, जैसे भुसभुसा उजाला, फुसफुसाता षड्यंत्र, किरनीली मूर्तियाँ, ऐय्यारी, चाँदनी,सँवलाई किरण, चहचहाती सड़कों की साड़ियाँ, सर्द अन्धेरा आदि । तुच्छता, क्षुद्रता आदि का संकेत देने के लिए उन्होंने 'भदेस' का भी प्रयोग किया हैं -

लार टपकाती आत्मा की कुतिया / स्वार्थ-सफलता के पहाड़ी ढाल पर
चढ़ती हैं हाँफती / राह का हर कोई कुत्ता छेड़ता हैं।

उनकी काव्य-भाषा की एक अन्य विशेषता हैं विशिष्ट और सामान्य को एक साथ विभिन्न शब्दों को चित्रित करना । इससे उनकी भाषा में प्रखरता आ गई हैं और वह दोनों प्रकार की संवेदनाओं को संप्रेषित करने में सफल हैं -

मैं कनफटा हूँ हेटा हूँ / शैव्रलेट-डाज के नीच मैं लेटा हूँ
तेलिया-लिवास में पुरजे सुधारता हूँ / तुम्हारी आज्ञाएँ ढोता हूँ।

मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग ने भी उनकी काव्य-भाषा को समृद्ध बनाया हैं । मुहावरे भाषा-सौन्दर्य के साथ अर्थ को भी गम्भीर बनाते हैं और अपने-आप में काव्य की इकाई-से लगते हैं **-जब तारे सिर्फ साथ देते, पर नहीं हाय देते पल भर ।**

तत्सम शब्दों का प्रयोग कम शब्दों में अर्थ-छटा उपस्थित करता हैं-

"पाउँ मैं नए-नए सहचर / सकर्मक सत्-चित-वेदना-भास्कर ।

यहाँ अन्तिम पंक्ति में प्रयुक्त तत्सम शब्दावली सहचरों की विशेषताओं को थोड़े शब्दों में ही प्रकटकर देती हैं - ऐसे मित्र जो प्रत्यक्ष वास्तविकता (त्रासदी) की पीड़ा भोगकर सूर्य के समान प्रज्वलनशील हो । इसके विपरीत ‘सभ्यता भिरुचिवश', 'व्यक्तित्वांतरित', 'तडिल्लता' जैसे समासयुक्त तत्सम शब्द खटकते हैं, उनकी काव्यभाषा के गौरव को कलुषित करते हैं । पर कुल मिलाकर उनकी काव्य भाषा संवेदनों को संप्रेषित करने में पूर्ण समर्थ हैं क्योंकि वह उनकी भंगिमाओं और बहुविध प्रकृति के अनुरूप बदलती चलती हैं । डॉ. राजनारायण मौर्य के शब्दों में “वह कभी संस्कृतनिष्ठ सामासिक पदावली की अलंकृत वीथिका से गुजरती हैं । कभी अरबी-फारसी तथा उर्दू के नाज़ुक लचीले को थामकर चलती हैं । कभी अंग्रेजी की इलेक्ट्रिक ट्रेन पर बैठकर जल्दी से खटाक-खटाक निकल जाती हैं ।"

मुक्तिबोध काव्य-भाषा में चित्रांकन की अद्भुत क्षमता हैं । शब्द के बाद शब्द आकर चित्र में रंग भरते जाते हैं और भाव की इकाई जैसे ही पूरी होती हैं चित्र भी सजीव हो जाता हैं । प्रत्येक चित्र में चेतना झाँकती हैं और भाव दुलराता हैं । मनोदशा का एक चित्र देखिए -

गहरा गड़ गया और धंस गया इतना / कि ऊपर प्राण भीतर घुस आया
लगी हैं झनझनाती आग / लाखों बर्रकाँटों में अचानक काट खाया हैं।

उनकी शब्द-योजना भावावेश के प्रवाह में इस प्रकार विन्यस्त हैं कि मनोगत अर्थमूर्ति शब्दों की अर्थ-ध्वनि-मूर्ति में न केवल रूपान्तरित हो गई हैं अपितु उसके संवेदनात्मक लक्ष्य भी उसमें झलक उठे हैं -

किन्तु वे उद्यान कहाँ हैं / अंधेरे में पता नहीं चलता / मात्र सुगन्ध हैं सब ओर
पर, उस महक-लहर में / कोई छिपी वेदना, कोई गुप्त चिन्ता / छटपटा रही हैं।

मुक्तिबोध शब्दों द्वारा वातावरण तैयार करने में अद्वितीय हैं। पाठक कविता पढ़ते समय अपने परिवेश को 'भूल कविता' के वातावरण में प्रवेश कर जाता हैं। कवि साधारण शब्दों द्वारा ही रहस्य, रोमांच, जिज्ञासा, आतंक आदि का ऐसा वातावरण निर्मित कर देता हैं कि पाठक उसमें डूब जाता हैं -

तिलस्मी खोह का शिला-द्वार / खुलता
घुसती हैं लाल-लाल मशाल अजीब-सी, / अंतराल-विवर के तम में
लाल-लाल कुहरा / कुहरे में, सामने रक्तालोक-स्नात पुरुष एक
रहस्य साक्षात !!

मुक्तिबोध शब्दों के शिल्पी हैं। शब्दों के पारखी जौहरी हैं। कुशल शिल्पी के समान वह शब्दों की आत्मा परखते हैं, काट-छांट कर उनका प्रयोग करते हैं और आवश्यकतानुसार उन्हें तराश देते हैं। इसके लिए वह व्याकरण के शासन को भी लाँघ जाते हैं और कहीं-कहीं अपने ढंग से व्याकरण का निर्माण करते हैं। उनकी भाषा में कहीं अस्वाभाविकता नहीं हैं। उनके शब्द ध्वन्यात्मक होने के साथ-साथ अर्थ-गांभीर्य की दृष्टि से भी उपयुक्त हैं। इसीलिए उन्हें भाषा-प्रभु कहा गया हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी को मुक्तिबोध की भाषा में चिल्लाहट सुनाई दी थी, "मुक्तिबोध की काव्य-भाषा में लय और संगीत की अपेक्षा चिल्लाहट का अधिक प्रत्यय मिलता हैं।" उनकायह कथन ठीक भी हैं क्योंकि मुक्तिबोध का काव्य संगीत का निषेध करता हैं, पर प्रश्न हैं, क्यों निषेध करता हैं ? उनकी भाषा में कोमल स्त्रैणतान होकर दारुण पौरुष हैं; वह पराजय की नहीं पराक्रम की भाषा हैं जो उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही हैं, उनके कथ्य की प्रतिध्वनि हैं। जिस सामाजिक अव्यवस्था और जीवन की कठोर वास्तविकता को उन्होंने अपनी रचनाओं में उकेरा हैं उसके लिए ऐसी ही पौरुषपूर्ण, अनगढ़ और चिल्लाहट-भरी भाषा की आवश्यकता थी।

मुक्तिबोध की कविता संगीत का निषेध करती हैं, अतः उनके छन्द में यतिगति का निर्वाहप्रायः नहीं हुआ हैं। उन्होंने अपनी लम्बी कविताएँ प्रायः मुक्त छन्द में लिखी हैं। 'तार-सप्तक' की उनकी कविताओं में छन्दोबद्धता पाई जाती हैं, पर अन्त तक आकर उनकी कविता छंद विहीन हो गई हैं,उसमें गद्यात्मकता आ गई हैं। वस्तुतः मुक्तिबोध ने अपने छन्द-निर्माण का कार्य भाषा की नाटकीयता से लिया हैं। उनकी कविताएं संगीतात्मकन होकर नाट्यात्मक हैं।

काव्य-भाषा कवि के अंतर्जगत् और युग की नई चेतना से संबद्ध होती हैं। नई चेतना और अपनी भावभूमि को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करने के लिए कवि को भाषा की परंपराओं को प्रचलित प्रयोगों को, व्याकरण के नियमों को तोड़ना पड़ता हैं, नए प्रयोग करने पड़ते हैं। मुक्तिबोध की चेतना, उनकी भावभूमि, उनकी जीवन दृष्टि नई हैं, वह विद्रोही कवि हैं इसीलिए उनकी भाषा भी परंपरा को तोड़नेवाली, लीक से हटकर चलनेवाली प्रयोगशील भाषा हैं।

मुक्तिबोध कहीं-कहीं अर्थ को गंभीर बनाने के लिए समानार्थक दो शब्दों जैसे- काली-अथाह, संवलाया-कलियासा-का प्रयोग करते हैं। ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग मुक्तिबोध की

विशेषता हैं -सटरपटर,धड़ाम, खट्, खटाक, खट्, छपछप, फुसफुसाते, सरसर आदि ऐसे ही शब्द हैं।

व्यंग्य करने में भी वह नहीं चूकते। आज की पूंजीवादी, महानगरीय सभ्यता का पर्दाफाश करने के लिए उन्होंने व्यंग्यपूर्ण भाषा का प्रयोग किया हैं -

गहन मृतालाएं इस नगर की / हर रात जुलूस में चलती / परन्तु दिन में बैठती हैं मिलकर करती हुई षड्यंत्र / विभिन्न दफ्तरों, कार्यालयों, केन्द्रों में, घरों में।

अंत में यह कहना समीचीन होगा कि मुक्तिबोध का भाषा पर पूर्ण अधिकार हैं। सचमुच वे शब्दों के शिल्पी और जौहरी हैं | उनकी काव्य भाषा उन्हें लम्बी कविताओं का समर्थ कवि बनाने में सहायक हैं | यह उनकी रचनाओं को महाकाव्यात्मक और नाटकीयता से संपन्न बनाती हैं |

यहाँ हम मुक्तिबोध की प्रमुख कविता 'ब्रह्म राक्षस' का विश्लेषण करेंगे

१०.३ मुक्तिबोध के काव्य में फैंटेसी

फैंटेसी द्वारा जिए और भोगे हुए जीवन की वास्तविकताओं को, बौद्धिक निष्कर्षों को, अर्थात जीवनज्ञान को, वास्तविक जीवनचित्र में उपस्थित कल्पना के रंगों में प्रस्तुत किया जाता हैं| इसके द्वारा रचनाकार वास्तविकता के प्रदीर्घ चित्रण से बच जाता हैं और सार रूप में जीवन की पुनर्रचना करता हैं |

मुक्तिबोध मूलतः फैन्टेसी के कवि हैं। उन्होंने स्वयं कहा हैं कि फैटेन्सी सृजन-प्रक्रिया की एक महत्त्वपूर्ण इकाई हैं, "कला का पहला क्षण हैं, जीवन का उत्कृष्ट तीव्र अनुभव-क्षण | दूसरा क्षण हैं इस अनुभव का अपने कसकते-दुःखते हुए मूलों से पृथक् हो जाना और एक ऐसी फैन्टेसी हैं जिसका रूप धारण कर लेना मानो वह फैन्टेसी अपनी आँखों के सामने ही खड़ी हो। तीसरा और अन्तिम क्षण हैं इस फैन्टेसी के शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया का आरम्भ | ----- वह अनुभव से प्रसूत हैं इसलिए वह उससे स्वतन्त्र हैं।"

मुक्तिबोध फैन्टेसी के माध्यम से अपने परिवेश की भयानकता तथा मनुष्य की दर्दनाक हालत को व्यक्त करते हैं। फैन्टेसी का निर्माण करते समय वह विभिन्न रहस्यमय शब्दों को अपनाते हैं जिससे कविता में आद्यांत रहस्यात्मक वातावरण बन जाता हैं और उसके मूल में रहते हैं -आतंक,भय, असुरक्षा, उत्पीड़न, की अनुभूति। फैन्टेसी अतार्किक घटनाओं का अवाध प्रवाह लिये होती हैं अतः उनकी लम्बी कविताओं की बुनावट फैन्टेसी के तारों से हुई हैं।

मुक्तिबोध की कला फैन्टेसी की कला हैं। बाहरी कटु यथार्थ के सम्पर्क में आने पर कवि के मन में जो प्रतिक्रिया हुई उसमें कल्पना का योग देकर वह ऐसे चित्र खड़े कर देते हैं जिसमें अद्भुत और विलक्षण का रोमांचक योग होता हैं; वह भयानक रहस्यमयता से भरपूर, दिल दहला देने वाली फैन्टेसी की सृष्टि करते हैं और उसमें अपने विचारों की लड़ियाँ पिरोते

चलते हैं। जितना प्रखर उनका यथार्थ-बोध होता हैं उतनी ही सशक्त फैन्टेसी की रचना होती हैं। इन फैन्टेसियों में पाठक के मनोजगत् को उद्वेलित करने की असाधारण शक्ति हैं। विश्व-सम्पृक्ति अन्तर्वर्ती संवेदनशीलता में ढलकर भयानक स्वप्न-संसृति में परिणत हो गयी हैं।

'लकड़ी का बना रावण', 'ब्रह्मराक्षस' और 'अंधेरे में उनकी सफल फैंटेसी रचना का ज्वलंतप्रमाण हैं। लकड़ी का बना रावण' में वह पूँजीवादी सभ्यता के प्रतिनिधि अहंग्रस्त व्यक्तित्व की खोखली, निस्सार महानता का विश्लेषण करते हैं। पूंजीवाद का प्रतिनिधि सामान्य जन को जनतन्त्री वानर कहता हैं। रावण की विडंबना थी कि वह परम विद्वान, योद्धा, राजनीति कुशल और सत्तावान था, पर असभ्य, जंगली वानरों की सेना से परास्त हुआ। इसी प्रकार पूँजीवादी सभ्यता का विनाश जनतन्त्री वानरों के हाथों होगा-यह कवि इस फैन्टेसी द्वारा बताना चाहता हैं -

हाय, हाय / उग्रतर हो रहा चेहरों का समुदाय
जड़ खड़ा हूँ / अब गिरा, तब गिरा / इसी पल कि उस पल।

'ब्रह्मराक्षस' में स्वप्न-कथा द्वारा बताया गया हैं कि अतीत के संचित ज्ञानकोष, अनुभव और विद्वत्ता की सार्थकता इस बात में हैं कि वह नयी पीढ़ी या भविष्य के प्रति समर्पित हो जाय। ऐसा न होने पर वह ब्रह्मराक्षस की तरह भटकता रहेगा। ज्ञान की अभिव्यक्ति ही मुक्ति हैं। 'अँधेरे में' कविता अँधेरे से आरम्भ होती हैं, पर कविता का अन्त होता हैं 'गैलरी में फैले सुनहले रविछोर' से। तिलस्मी खोह में निर्वासित रक्तालोक स्नात पुरुष जगत की गलियों में विचरण करता हैं, समष्टि होकर जन-जन में घुल जाता हैं। रक्तालोक-स्नात पुरुष कवि की अभिव्यक्ति हैं जो केवल कवि की न रहकर सब की बन जाती हैं - 'स्व' का 'पर' में अन्तर्भाव हो गया हैं। इस स्वप्न-कथा द्वारा मुक्तिबोध यह बताना चाहते हैं कि कवि-अभिव्यक्ति की सार्थकता इसी में हैं कि वह सबकी अनुभूति की अभिव्यक्ति हो सके। काव्य का सत्य भी यही हैं।

मुक्तिबोध ने अनेक भयानक फैन्टेसियों की रचना की हैं क्योंकि वह समाज के भयानक, आतंकपूर्ण, हिंसा से आक्रान्त, पूँजीवाद द्वारा शोषित जनसमूह और उसकी पीड़ा का चित्र अंकित करना चाहते हैं। उनकी फैन्टेसियाँ प्याज के छिलकों की तरह पर्त-दर-पर्त खुलती जाती हैं, दृश्य फिल्मी रील की तरह बदलते जाते हैं और यथार्थ के सजीव चित्र पाठक के सामने उद्घाटित होते चलते हैं। पाठक तीखे, मर्म तक चुभने वाले, तेज धार से युक्त कटु सत्य का साक्षात्कार करता हैं और वह निर्णय नहीं कर पाता कि जिस कटु यथार्थ को उसने अभी-अभी देखा हैं वह फैन्टेसी था या जीवन्त प्रत्यक्ष।

मुक्तिबोध की फैन्टेसी सामान्य कल्पना-जीवी फैन्टेसी से विशिष्ट होती हैं क्योंकि वह उसे प्रखर यथार्थ-बोध और गहन जीवनानुभूति से जोड़ देते हैं। उनकी स्वप्न-कथा में संवेदनात्मक ज्ञान और ज्ञानात्मक संवेदनाएँ रहती हैं। फैंटेसी के प्रयोग के कारण मुक्तिबोध यथार्थ चित्रण की दीर्घता से बच जाते हैं ; उनके वर्णनों में मितव्ययता और सघनता अपने-आप आ जाती हैं। भाषा फैंटेसी को काटती-छाँटती हैं और फैंटेसी भाषा को सम्पन्न और समृद्ध बनाती चलती हैं, शब्द को नये चित्र प्रदान करती हैं, शब्दों और मुहावरों में नयी अर्थ वत्ता नयी अर्थ-क्षमता, नयी अभिव्यक्ति भर देती हैं। फैन्टेसी को कदाचित् इसीलिए उन्होंने

काव्य की आत्मा कहा हैं। इससे तथ्य के विस्तार की सुविधा होती हैं। रावण, ब्रह्मराक्षस, लाक्षागृह आदि की पौराणिक कथाओं और प्रतीकों का आधुनिक जीवन की समस्याओं के भाष्य के लिए प्रयोग इसका उदाहरण हैं। भयानक वास्तव का चित्रण और सामना करने में उन्होंने फैंटेसी से जो काम लिया हैं वह उनके फैंटेसी-प्रयोग की सफलता का परिचायक हैं। मुक्तिबोध के लिए फैंटेसी अभिव्यंजना का माध्यम मात्र नहीं हैं बल्कि उनके मन की सहज वृत्ति हैं। यथार्थ को स्वप्न-चित्रों में बदले बिना वह मानों उसे समझ ही नहीं सकते। फैंटेसी के प्रयोग द्वारा वह' कभी व्यंग्य-उपहास करते हैं -

उनमें कई प्रकाण्ड आलोचक, विचारक जगमगाते कविगण
मन्त्री भी, उद्योगपति और विद्वान
यहाँ तक कि शहर का हत्यारा कुख्यात / डोमा जी उस्ताद।

तो कभी करुण भावों की सृष्टि करते हैं.

पकड़ कर कॉलर गला दबाया गया। / चाटे से कनपटी टूटी कि अचानक
त्वचा उखड़ गयी गाल की पूरी। / कान में भर गयी
भयानक अनहद-नाद की भनभन।

मुक्तिबोध के काव्य-शिल्प की विशेषता यह हैं कि उन्होंने लक्षण-व्यंजना, रूपक-उपमा, प्रतीक-बिम्ब आदि के बने-बनाये शास्त्रीय ढांचे को बदल कर उन्हें फैंटेसी के माध्यम से एक नयी तरतीब और तहजीब प्रदान की हैं | वस्तुतः यह बुर्जुआ शिल्प का जनवादी शिल्प में रूपान्तरण हैं। इसीलिए कहा जा सकता हैं कि भाववादी शिल्प को अपनाने के बावजूद मुक्तिबोध एक यथार्थवादी समाजवादी कलाकार हैं।

१०.४ सारांश

आलोचकों ने कवि होने के लिए उसकी भाषा का अर्थवान होना आवश्यक माना हैं और मुक्तिबोध की काव्य साधना सार्थक अर्थ प्राप्ति की ही रही हैं | फैंटेसी की यदि बात करे तो मुक्तिबोध मूलत: फैंटेसी के कवि माने जाते हैं | उन्होने फैंटेसी को काव्य प्रक्रिया में सृजन की प्रमुख इकाई माना हैं | इस इकाई में हमने मुक्तिबोध की काव्य भाषा और उनके काव्य में फैंटेसी का वृहत अध्ययन किया हैं | इन मुद्दों को विद्यार्थी भलिभाँति समझ सके होंगे |

१०.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) मुक्तिबोध की काव्य भाषा पर टिप्पणी लिखिए |
२) मुक्तिबोध फैंटेसी के कवि हैं | इस कथन पर प्रकाश डालिए |
३) मुक्तिबोध के काव्य में फैंटेसी की प्रमुखता हैं | स्पष्ट किजीए |
४) मुक्तिबोध की काव्य भाषा समाज में संघर्षशील व्यक्ति को साअर्थ प्रदान करती हैं | उदाहरण द्वारा समझाइए |

१०.६ लघुत्तरीय प्रश्न

१) मुक्तिबोध की कविताओं में प्रयुक्त शब्दों में कौन सी काव्य शैली की प्रधानता मिलती हैं?

उत्तर – छायावादी काव्यशैली

२) मुक्तीबोध की कविताओं में प्रयुक्त – गैस – लाट , ड्रेस, मार्शल आदि शब्द कौन सी भाषा के हैं ?

उत्तर – अंग्रेजी भाषा

३) चुम्बकीय शक्ति, गुरुत्व-आकर्षण, इलेक्ट्रॉन, मॅगनेट आदि शब्द मुक्तिबोध ने कहाँ से लिए हैं ?

उत्तर - विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली

४) मुक्तिबोध फैंटेसी के मध्यम से क्या व्यक्त करते हैं ?

उत्तर – अपने परिवेश की भयानकता तथा मनुष्य की दर्दनाक हालत |

१०.७ संदर्भ पुस्तके

१) मुक्तिबोध और उनकी कविता – डॉ. बृजबाला सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण – 2004

२) मुक्तिबोध – निर्मल शर्मा, त्रयी प्रकाशन, रतलाम(म.प्र.),

३) तारसप्तकसे गद्य कविता (मुक्तिबोध-शमशेर-रघुवीर) रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष – 1997

४) समकालीनहिन्दी कविता – अज्ञेय और मुक्तिबोध-शशि शर्मा, वाणी प्रकाशन, वर्ष 1995

५) मुक्तिबोध की कविताएँ –बिम्ब प्रतिबिम्ब, नंदकिशोर नवल, प्रकाशनसंस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2006

६) गजानन माधव मुक्तिबोधकीप्रतिनिधि कविताएँ – टीका, राजेश वर्मा एवं सुरेश अग्रवाल, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संकरण- 2010

७) अज्ञेय से अरुण कमल – भाग १, डॉ. संतोष कुमार तिवारी, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली, वर्ष- 2005

❖❖❖❖

११

मुक्तिबोध के काव्य में बिम्ब योजना और प्रतीक विधान

इकाई की रूपरेखा

११.० इकाई का उद्देश्य
११.१ प्रस्तावना
११.२ मुक्तिबोध के काव्य में बिम्ब योजना
११.३ मुक्तिबोध के काव्य प्रतीक विधान
११.४ सारांश
११.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न
११.६ लघुत्तरीय प्रश्न
११.७ संदर्भ पुस्तके

११.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई का मूल उद्देश्य मुक्तिबोध के काव्य में बिम्ब योजना और प्रतीक विधान से विद्यार्थीयों को अवगत करता हैं |

११.१ प्रस्तावना

मुक्तिबोध के काव्य में बिम्ब और प्रतीक विशेष महत्त्व रखते हैं | इस इकाई में बिम्ब और प्रतीक का किस प्रकार प्रयोग मुक्तिबोध के काव्य में हुआ हैं इस पर विस्तृत चर्चा करेंगे |

११.२ मुक्तिबोध के काव्य में बिम्ब योजना

बिम्ब शब्द अँग्रेजी के 'इमेज' का हिन्दी रूपांतर हैं | इसका अर्थ हैं-मूर्त रूप प्रदान करना | काव्य में बिम्ब को वह शब्द चित्र माना जाता हैं जो कल्पना द्वारा ऐन्द्रीय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता हैं | किसी भी कवि की भाषा प्रधानतः बिम्बों की भाषा होती हैं; वह अपने 'अनुभूत प्रभाव' को बिम्बों के माध्यम से दृश्य और ऐन्द्रिय बनाकर प्रस्तुत करता हैं जिससे पाठक कवि की संवेदना को सहज ही ग्रहण कर लेता हैं। मुक्तिबोध का काव्य बिम्ब-योजना की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध हैं। आरम्भ में उनके बिम्बों में छायावादी बिम्ब-सर्जना का प्रभाव दृष्टिगत होता हैं। मुक्तिबोध की 'आत्मा के मित्र मेरे' कविता में साँझ और उषा को अप्सरा मानकर उन्हें नव यौवना नारी के मूर्त बिम्ब द्वारा मूर्तित किया गया हैं –

अप्सराएँ साँझ-प्रातः मृदु हवा की लहर पर से सिन्धु पर रख अरुण तलुए
उतर आती, कान्तिमय नव हास लेकर।

आगे चलकर उन्होंने अधिकांश बिम्बों को दैनंदिन जीवन की वस्तुओं, दृश्यों और घटनाओं से लिया हैं। नई कविता की तरह उनके बिम्ब गढ़े हुए नहीं हैं; वे अनगढ़ हैं - न उन पर पालिश हैं और न वे खराद पर चढ़ाये गये हैं। प्रकृति से जो बिम्ब चुने गये हैं उनमें भी अनगढ़, रूक्ष, सुनसान प्रकृति को ही अधिक महत्त्व दिया गया हैं। मानव-हृदय की जटिलता को एक प्राकृतिक गुहा के बिम्ब द्वारा रूपायित किया गया हैं -

भूमि की सतहों के बहुत नीचे / अँधियारी एकान्त / प्राकृत गुहा एक।
विस्तृत खोह के साँवले तल में तिमिर को भेदकर चमकते हैं पत्थर।

उनके काव्य में प्रयुक्त तालाब, बूढा बरगद, बावड़ी, खण्डहर, घण्टाघर, चौराहा, गलियाँ आदि आर्केटाइपल बिम्ब बनकर अनेक अर्थों वाले प्रतीकों और मिथकों में खुलते चले गये हैं। आदिम जीवन से चुने गये उपकरण-बरगद की घनी शाखाओं की गठियल मेहराब और परित्यक्त सूनी बावड़ी,भूत-प्रेत ब्रह्मराक्षस आदि के बिम्बों के साथ मिलकर आदिम वन्य जीवन के भयपूर्ण वातावरण कोसाकार कर देते हैं। "ब्रह्मराक्षस का बिम्ब इतिहास की अन्वीक्षा-वृत्ति का प्रेत हैं या इतिहास की दमित अन्वेषण-एषणा या दमित अन्वीक्षा हैं जो इतिहास-मन की बावड़ी के गहरे अवचेतन या अन्य अचेतन में कैद रहने के लिए अभिशप्त हैं।" सैनिक शासन से सम्बद्ध बिम्ब भी आतंक सृष्टि में सहायक हुए हैं -

गगन में करफ्यू हैं | धरती पर चुपचाप जहरीली छिः पू: हैं।
पीपल के खाली पड़े घोंसलों में पक्षियों के पैठे हैं खाली हुए कारतूस।

उनके काव्य में एक ओर विज्ञान और गणित से बिम्ब ग्रहण किये गये हैं तो दूसरी ओर साहित्य, व्याकरण और भाषा-विज्ञान से। रेडियो-एक्टिव मणियाँ, नीले इलेक्ट्रॉन, प्रक्षेपणास्त्र,समीकरणों के गणित की सीढियाँ यदि प्रथम क्षेत्र से अपनाये हैं तो निम्नांकित पंक्तियों में प्रयुक्त बिम्ब दूसरे क्षेत्र से लिया गया हैं -

किसी काले डैश की घनी काली पट्टी ही/ आँखों में बंध गई
किसी खड़ी पाई की सूली में / टांग दिया गया।

मुक्तिबोध के काव्य में सर्वाधिक बिम्ब दृश्य-बिम्ब हैं। उनकी रंग-चेतना अधिक विकसित हैं, अतः उनके काव्य में काले और साँवले के अतिरिक्त भूरे, खाकी, पीले, लाल, नीले, धूवाले, मटमैले, गोरे, गेरुए, मोतिया, चम्पई, गुलाबी और सुनहले रंगों के बिम्ब मिलते हैं। सुनसान साँवले चौराहे, वीरान गेरुआ घण्टाघर, कत्थई गुम्बद, पीले घड़ी-चेहरे उनके काव्य में सहज ही देखे जा सकते हैं। उनकी चाँदनी संवलाई हुई हैं जिसके ओठ तक काले पड़ गये हैं। उनके काव्य में वातावरण की रहस्यमयता और भयानक रोमाँचकता को मूर्त करने के लिए बिम्बों की सृष्टि की गई हैं | ये बिम्ब अत्यन्त सटीक और सफल हैं। चाँद की किरणें जासूस हैं, भयानक काली लवादा ओढ़े, स्थाह परदे से ढका चेहरा, ठण्डे स्पर्श वाला अनजाना व्यक्ति भय और सनसनाहट को स्पष्ट रूपायितकर देता हैं। मुक्तिबोध की विम्ब सृष्टि में बीभत्स और विराट बिम्ब भी मिलते हैं -

फिर भी, यशस्काय दिक्काल सम्राट / तुम कुछ नहीं हो, फिर भी हो सब कुछ !
ओ नट-नायक, सारे जगत पर रोब तुम्हारा हैं।

मुक्तिबोध का बिम्ब-संसार दृश्यों, ध्वनियों, गतियों, स्पर्शों और गन्धों का संसार हैं। 'ब्रह्मराक्षस' कविता में ब्रह्मराक्षस की स्नान-प्रक्रिया ध्वनि-बिम्बों द्वारा मूर्त हो गई हैं -

ब्रह्मराक्षस / घिस रहा हैं देह / हाथके पंजे बराबर / बाँह-छाती-मुँह छपाछप।

मुक्तिबोध में संश्लिष्ट बिम्ब-निर्माण की शक्ति अद्भुत हैं। अंधेरे में चमकती हुई मणियों से निःसृत प्रकाश की कल्पना बहते हुए जल से कर तथा खोह की बेडौल भीतों पर चमकने

वाली प्रकाश-किरणों की झिलमिल को दर्शा कर पाठक के मन में एक विवृत बिम्ब की सृष्टि की गई हैं -

झरता हैं जिनपर प्रबल प्रपात एक / प्राकृत जल वह आवेग भरा हैं,
युतिमान मणियों की अग्नियों पर से / फिसल-फिसल कर बहती लहरें।

उनके बिम्ब बड़े शक्तिशाली हैं, अतः प्रत्येक चित्र को अर्थपूर्ण और चित्रमय बना देते हैं। प्रत्येक बिम्ब कथ्य को अधिक स्पष्ट और सुदृढ़ बना देता हैं। उनको शिल्प-शक्ति के पीछे प्रखर बिम्ब-योजना का योगदान निश्चय ही महत्वपूर्ण हैं। बिंबों की नवीनता और मौलिकता उनकी एक अन्य उपलब्धि हैं। उनके बिम्ब ठोस विचारों से प्रेरित और अर्थपूर्ण होते हैं ; वे अपने आप में पूर्ण न होकर किसी अगले बिम्ब से जुड़कर अर्थ को और भी गहन बना देते हैं। उनके बिम्बों में प्रतीकार्थ भी होता हैं ; उनके अधिकांश बिम्ब केवल दृश्यांकन के लिए प्रयुक्त न होकर प्रतीकार्थ को समेटे हुए हैं, अतः जीवन के गतिमान सत्य को पाठक के सामने प्रस्तुत करते हैं। अतः मुक्तिबोध का बिम्ब-विधान केवल कविता का अलंकरण नहीं हैं, वह सृजन के स्तर पर हैं, सूक्ष्म, जटिल सवेदनों को संप्रेषित करने के लिए प्रयुक्त हुआ हैं, कवि की आन्तरिक विवशता का परिणाम हैं। 'चाँद का मुंह टेढ़ा हैं' में चाँद के मुँह का टेढ़ापन प्रतीक बनकर आया हैं। इस चाँद की चाँदनी में षड्यन्त्र हैं, राजनीतिक हलचल हैं, पोस्टर बाज़ी हैं। भैरव विद्रोह का प्रतीक हैं तो बरगद इतिहास-बोध का संकेत देता हैं। सारांश यह कि मुक्तिबोध के काव्य-बिम्बों में विविधता, भौतिकता और नवीनता तो हैं ही साथ ही वे कवि की काव्य-प्रक्रिया का अभिन्न अंग हैं, उसकी अन्तरंग उपज हैं, से थोपे गये नहीं हैं।

आद्य बिम्ब-अचेतन मानस में सोचने और अनुभव करने के कुछ ढंग ऐसे हैं जिन्हें हम प्रागैतिहासिक पूर्वजों से आनुवंशिक रूप में आया हुआ मानते हैं। ये आद्यरूप देशकाल - निरपेक्ष होते हैं। आद्यरूपों की अभिव्यक्ति स्वप्न-बिम्बों आदि के माध्यम से व्यक्त होते हैं, इसीलिए कहा गया हैं कि आद्यरूपस्वतः अव्यक्त होते हुए भी आद्यबिम्बों द्वारा दृश्य हो सकता हैं। कवि के हृदय में पूर्वसंचित सौन्दर्यानुभवों की राशियाँ आद्यरूपों को ध्वनित करती हैं और विभिन्न बिम्बों के रूप में अभिव्यक्त होती हैं। मुक्तिबोध के काव्य में समुद्र, बावड़ी, जल आदि के बिम्ब अनेकश: प्रयुक्त हुए हैं। वे सब अचेतन के द्योतक आद्यबिम्ब हैं। अचेतन-ग्रस्त अहं को ब्रह्मराक्षस और उसकी द्वन्द्वात्मक स्थिति का चित्रण बावड़ी की सीढ़ियाँ चढ़ने और उतरने की क्रिया द्वारा किया गया हैं। 'अंधेरे में' कविता में जलोद्भूत श्वेत आकृति चेतन व्यक्तित्व को हतप्रभ कर देती हैं क्योंकि अहं के लिए अचेतन सामग्री प्रायः क्षोभक होती हैं। चेतन अहं अचेतन की अंधी गहराइयों से नये-नये रचनात्मक विचारों और प्रत्ययों के कमल प्राप्त करता हैं -

संवलाये कमल जो खोहों के जल में / भूमि के पाताल-तल में
सुझाव-संदेश भेजते रहते।

मुक्तिबोध के काव्य में रात्रि एवं अंधेरा व्यक्तिगत अचेतन के द्योतक हैं -

उठने दो अंधेरे में ध्वनियों के बुलबुले।

युग के अनुसार, गुहा, वापी आदि खोखली संरचनाएँ अवचेतन की प्रतीक हैं। गुहा वह स्थल हैं जहाँ व्यक्ति व्यक्तित्वान्तर के लिए बन्द होता हैं, अतः उसे अचेतन के सृजनात्मक पक्ष का प्रतीक भी कहा जा सकता हैं। अचेतन पूर्णतया स्वायत्त हैं, वह सचेतन प्रयास से नहीं, अनायास खुलता हैं। मुक्तिबोध के काव्य में भी "तिलिस्सी खोह का शिला-द्वार खुलता हैं

धड़ से" और उसके खुलते ही 'रक्तालोक-स्नात पुरुष' के दर्शन होते हैं जो आत्मा की प्रतिमा हैं। 'अंधेरे में' का नायक खड्डे के अंधेरे में पड़े रहकर प्रगति-क्रान्ति की संभावनाओं को टालना चाहता हैं, पर 'तम-शून्य' की द्युति-आकृति उसे बरबस प्रगत्युन्मुख करती हैं।

जल की तलहटी में डूबा या गुफा में छिपा चमकीला मणि-रत्न एक आद्यबिम्ब हैं। मुक्तिबोध व्यक्तित्वान्तरण के लिए अचेतन में निर्वासित श्रेयस्कर गुणों-ज्ञानात्मक संवेदन या संवेदनात्मक ज्ञान को आवश्यक मानते हैं और उसको मणि के बिम्ब द्वारा प्रस्तुत किया गया हैं।

जल की तलहटी में डूबा या गुफा में छिपा चमकीला मणि-रत्न एक आद्यबिम्ब हैं। मुक्तिबोध व्यक्तित्वांतरण के लिए अचेतन में निर्वासित श्रेयस्कर गुणों-ज्ञानात्मक संवेदन या संवेदनात्मक ज्ञान को आवश्यक मानते हैं और उसको मणि के बिम्ब द्वारा प्रस्तुत किया गया हैं।

वृक्ष बहुप्रयुक्त मातृ-बिम्ब हैं। अनेक पुराकथाओं में मानव वृक्षों से जन्म लेते हैं। मुक्तिबोध ने उसे अचेतन का प्रतीक बताया हैं। 'अंधेरे में' बरगद के नीचे सिर-फिरा जन अचेतन में बैठी आत्मा का प्रतीक हैं, आध्यात्मिक उद्विग्नता का बिम्ब हैं। 'मेरे सहचर मित्र' में अक्षयवट चित्त की धारणात्मक शक्ति का प्रतीक हैं। प्रतिगति के क्षणों में वही मानवीय अनुभवों को धारण करता हैं।

इस प्रकार मुक्तिबोध के काव्य में समुद्र, बावड़ी, तालाब, रात्रि, अंधकार, गुहा, घाटी, खड्ड, धरती, वृक्ष, दर्पण आदि अचेतन के प्रसिद्ध आद्यबिम्ब हैं। उसके द्वारा लेखक ने मानवीय व्यक्तित्व के उस अंधकारमय पक्ष की अभिव्यक्ति की हैं जिसकी यात्रा किये बिना कोई भी कारयित्री प्रतिभा सफल नहीं हो सकती।

मुक्तिबोध के काव्य में भी छाया, माया, आप्तपुरुष आदि आद्यबिम्बों का प्रयोग हुआ हैं। उन्होंने व्यक्तित्व के दमित, हीनपक्ष का चित्रण करने के लिए दस्यु, डाकू, काला स्याह चेहरा के बिम्ब प्रस्तुत किये हैं जो छाया के ही नाना रूप हैं। 'अंधेरे में' मार खाया चेहरा, स्लेट-पट्टी पर खींची गई भूत जैसी आकृति व्यक्तित्व के हीन पक्ष का चित्रण करती हैं, तो शृंगाल, श्वान, मार्जार, रीछ, गिद्ध, घुग्घू, सर्प आदिमानव की पाश्विक वृत्तियों को बिम्ब-रूप में प्रस्तुत करते हैं -

कुत्तों की दूर-दूर अलग-अलग आवाज़ / टकराती रहती सियारों की ध्वनि से।

अचेतन की सृजनात्मक शक्ति भी अद्भुत हैं; वह सामाजिक सांस्कृतिक निर्माण की, आदर्शों की, स्वतन्त्रता, क्रांति की प्रेरणा देती हैं। मुक्तिबोध ने कहीं उसे 'माँ' कहा हैं और कहीं प्रणयिनी -

अज्ञात प्रणयिनी कौन थी, कौन थी?
क्या कोई प्रेमिका सचमुच मिलेगी ?
हाय ! यह वेदना स्नेहकी गहरी / जाग गयी क्योंकर ?

आप्तपुरुष एक ओर ज्ञान, अन्तर्दृष्टि, प्रज्ञा और दूसरी ओर शुभ संकल्प एवं सहयोग जैसे नैतिक गुणों का प्रतिनिधित्व करता हैं। मुक्तिबोध के काव्य में पक्षी, महापुरुष-तिलक, गांधी

आदि, आप्तपुरुष से सम्बद्ध आद्यबिम्ब हैं जो कहीं कोई रहस्य बताते हैं, कहीं कर्म की प्रेरणा देते हैं और कहीं आत्मज शिशु सौंपते हैं। आप्तपुरुष के ये बिम्ब प्रायः उसे उज्ज्वल पक्ष का ही प्रतिनिधित्व करते हैं।

मनोविज्ञान में व्यक्तित्व की पूर्णता को आत्म कहा गया हैं। आत्म की यह अनुभूति मनुष्य को अहंग्रस्त चेतना से मुक्त कर व्यापकतर और गम्भीरतर चेतना को जन्म देती हैं। इसके लिए विराट् पुरुष के बिम्ब की योजना की गई हैं। 'अंधेरे में' कविता में अनेक बार प्रकट होने वाले पुरुष को 'परिपूर्ण का आविर्भाव' एवं 'आत्मा की प्रतिमा' कहा गया हैं। वह नायक का परम उत्कर्ष और गुरु हैं। अन्य कविताओं में आत्म के लिए पवन, सूर्य, आत्मदीप, कमल, शिशु आदि के बिम्ब प्रस्तुत हुए हैं। शिशु भावी व्यक्तित्वान्तर् का, चेतन-अचेतन के समन्वय का द्योतक हैं। उसका रुदन प्रतिपालन-दायित्व की माँग का प्रतीक हैं।

मुक्तिबोध की विशेषता हैं कि मार्क्सवादी और अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित होते हुए भी उन्होंने भारतीय बिम्बों का प्रयोग किया हैं, उसका पुनस्सृजन किया हैं।

११.३ मुक्तिबोध के काव्य प्रतीक विधान

मुक्तिबोध के काव्य में प्रतीक काव्य-शिल्प का उपादान मात्र नहीं हैं। उन्होंने अपनी संवेदना को व्यक्त करने के लिए प्रतीक-प्रयोग को आवश्यक समझकर उनका प्रयोग किया हैं। आज की युग-चेतना अधिक जटिल, संकुल और उलझी हुई हैं। अपने युगीन यथार्थ और अन्तश्चेतना के यथार्थ को साकार करने के लिए प्रतीकों का प्रयोग अत्यावश्यक हो गया हैं, अतः अपनी जटिल और सूक्ष्म अनुभूति को व्यक्त करने के लिए ही मुक्तिबोध ने प्रतीकों का आश्रय लिया हैं। इसीलिए जिन प्रतीकों का प्रयोग उनके काव्य में हुआ हैं वे वर्तमान परिवेश से लिए गए हैं।

मूलतः प्रतीक दो प्रकार के होते हैं -परम्परागत और नवीन या वैयक्तिक प्रतीक। मुक्तिबोध ने अपने अमूर्त भावों को व्यक्त करने के लिए नये प्रतीकों का प्रयोग किया हैं अथवा परम्परागत प्रतीकों को अर्थ किया हैं। इतिहास, पुराण अथवा अपनी संचित स्मृति से प्रतीकों को ग्रहण कर उन्होंने उन्हें आधुनिक सन्दर्भ प्रदान किया हैं। एकलव्य, अर्जुन आदि के पौराणिक प्रतीक नये संदर्भ में प्रयुक्त हुए हैं -

> **में एकलव्य जिसने निरखा / ज्ञान के दरवाजे की दरार से ही**
> **भीतर का महा-मनोमन्थन-शाली मनोज / प्राणाकर्षक प्रकाश देखा।**

अक्षयवट, तक्षक, पन्नादाई शिवाजी आदि पौराणिक-ऐतिहासिक प्रसंगों का प्रतीकात्मक प्रयोग नये सन्दर्भ में किया गया हैं। 'लकड़ी का बना' रावण' अहंग्रस्त, खोखले, निस्सार व्यक्तित्व का प्रतीक हैं जो अपने अहंकार के कारण स्वयं को महान समझता हैं, पर जो किसी भी क्षण धराशायी हो सकता हैं। नये प्रतीकों का प्रयोग उनकी प्रसिद्ध कविता 'अंधेरे में' सर्वाधिक हुआ हैं। यहाँ अंधेरा सामाजिक अव्यवस्था को भी व्यंजित करता हैं और कवि के मनोजगत् में छाई अमूर्त निबिड़ता को भी। रक्तालोक-स्नात पुरुष निरन्तर संघर्ष करने वाले संस्कृति-पुरुष का प्रतीक हैं जो मध्यमवर्ग का आदर्शवादी और दृढ़ चरित्र हैं तथा

जीवन की सुविधाओं से समझौता नहीं करता । शिशु ऐतिहासिक दायित्व का प्रतीक हैं, सूरजमुखी के गुच्छे दायित्व-बोध की प्रसन्नता के प्रतीक हैं तो रायफल कर्मण्यता की प्रतीक हैं। अरुण कमल एक ओर कवि की पूर्ण संभावनाओं का प्रतीक हैं तो दूसरी ओर नयी अर्थवत्ता से युक्त भाषा के आदर्श रूप की ओर संकेत करता हैं –

मैं वह कमल तोड़ लाया हूँ। भीतर से इसलिए गीला हूँ / पंक से आवृत्त ।

यहाँ कमल जीवन की कटुताओं से संघर्ष करने के उपरान्त प्राप्त होने वाले ज्ञानमय विवेक या जीवन-सत्य का प्रतीक हैं । अवचेतन मन की गहनता एवं निबिड़ता को व्यक्त करने के लिए उन्होंने' चम्बल की घाटी' को प्रतीक बनाया हैं -

अजी यह चम्बल घाटी हैं, जिसमें / पहाड़ों की बियावान
अजीब उठान और धंसान निचाइयाँ
पठार व दर्रे/ और गहरी हैं पथरीली गलियाँ।

ब्रह्मराक्षस अतीत की बौद्धिक चेतना का प्रतीक हैं जो भविष्य के प्रति समर्पित न होने के कारण 'तम विविर में मरे पक्षी सा' विदा होता हैं। वह हमारे पौराणिक अचेतन और अतृप्त मन का भी प्रतीक हैं जो समाज के अश्वत्थ वृक्ष पर बैठा हुआ हैं । वह कवि का भोगा हुआ आत्म हैं जो उपचेतन की संकुलता में कैद हैं । वह अन्वीक्षा का प्रतीक या प्रेत हैं जो क्रुद्ध और अभिशप्त हैं और जिसका संशोधन इतिहास-मन की बावड़ी में हो रहा हैं-भय, सन्देह, खतरे और अभिशाप के वातावरण में । उसकी संवेदना स्याह हैं क्योंकि उसे शाप लगा हुआ हैं । ओरांग जोटांग हमारी नैसर्गिक अविकसित दुर्दमनीय पाशवी वृत्तियों का प्रतीक हैं जो व्यक्ति के अवचेतन की अन्धकारमयी आवों में छिपी रहती हैं । सभ्यता का जामा पहने हुए आज के मानव का भी वह प्रतीक हो सकता हैं क्योंकि जघन्य कार्य और मानवता को नष्ट करने वाले हिंस्र अस्त्र उसके नाखून हैं और झूठे अहं से दूसरों का शोषण करने वाला कार्य उसकी पूँछ हैं । अतः ओरांग-ओटांग आज के मानवकी बर्बरता और हिंसा का प्रतिरूप हैं । सभ्यता पर संस्कृति की विजय तभी होगी जब दिमागी गुहान्धकार के इस ओरांग-ओटांग को विवेक से सन्दूक में बन्द कर दिया जायेगा । माँ ऐसे व्यक्ति-मन का प्रतीक हैं जो परम्परा के जीवन्त अंशों को पहचानता हैं । इसीलिए वह जंगल में बिखरी सूखी टहनियों, डण्ठलों को जो मूल्यवान ज्ञान के प्रतीक हैं, उनको बटोरती हैं । बरगद इतिहास-बोध का प्रतीक हैं तो भैरों विद्रोही चेतना का और ढहा हुआ मकान परम्परागत रूढ़ मूल्यों के ध्वस्त हो जाने का प्रतीक हैं ।

मुक्तिबोध के काव्य में ऐसे प्रतीकों का भी प्रयोग हुआ हैं जिनका सम्बन्ध योग साधना से हैं, किन्तु उनका अर्थ-सन्दर्भ मनुष्य की अवचेतन मनोभूमि से जुड़ा हैं । अतः इनके प्रयोग से कविताएँ रहस्यात्मक भले ही बन गई हैं, वे रहस्यवादी नहीं हैं । तिलस्मी खोह, अन्धेरे कमरे, बावड़ी आदि की प्रतीक-योजना उनकी कविता को कुछ दुरूह और जटिल अवश्य बना देती हैं फिर भी उनके प्रतीक सार्थक हैं, कथ्य को प्रेषणीय बनाने में सहायक हैं और उनके माध्यम से कवि की अनुभूतियों को शिल्प के नए आयाम मिले हैं ।

मुक्तिबोध की प्रतीक-योजना की एक अन्य विशेषता यह हैं कि एक ही प्रतीक कई स्थानों पर प्रयुक्त हुआ हैं, पर भिन्न-भिन्न अर्थों में । अतः उनमें एकरसता या अर्थ का दोहराव नहीं आ पाया हैं । कहीं उन्होंने स्वतन्त्र एवं लघु प्रतीकों का प्रयोग किया हैं तो कहीं विस्तृत आयाम वाले प्रतीकों का जिनका अर्थ-सन्दर्भ सम्पूर्ण कविता में समाया हुआ हैं । यहाँ रत्नमणि और

कमल यदि स्वतन्त्र सन्दर्भ से युक्त हैं, तो ब्रह्मराक्षस, ओरांग-ओटांग, रक्तालोक-स्नात-पुरुष का प्रतीक-सन्दर्भ पूरी कविता में छाया हुआ हैं। अपने प्रतीकों द्वारा एक ओर मुक्तिबोध अपने कथ्य को स्पष्ट बनाने में सफल हुए हैं और दूसरी ओर उनके कारण उनका काव्य-शिल्प अधिक पैना और धारदार हो गया हैं। उनके प्रतीकों में अदृश्य, अज्ञेय, अमूर्त और अनन्त को व्यक्त करने की अद्भुत शक्ति हैं।

११.४ सारांश

मुक्तिबोध के काव्य में दृश्य बिम्ब की अधिकता हैं और आद्य बिम्ब को भी विस्तृत रूप से वर्णित किया गया हैं | प्रतीक योजना की यदि बात करें तो एक ही प्रतीक कई स्थानों पर प्रयोग करने की क्ला मुक्तिबोध को ज्ञात थी | और इन सभी मुद्दों का उक्त अध्याय में विस्तृत वर्णन हुआ हैं जिसके अध्ययन से विद्यार्थी इकाई के सभी मुद्दों को समझ गये होंगे |

११.५ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) मुक्तिबोध के काव्य में बिम्ब सृष्टी की विशेषताएँ बताइये ?
२) मुक्तिबोध के काव्य में प्रतीक विधान पर अपने विचार व्यक्त कीजिए |

११.६ लघुत्तरी प्रश्न

१) बिम्ब शब्द अँग्रेजी के कौन से शब्द का रूपान्तर हैं ?
उत्तर – 'इमेज'

२) मुक्तिबोध का बिम्ब विधान कैसा था ?
उत्तर – अनगढ़, पॉलिश न किए हुए |

३) मुक्तिबोध के काव्य में सर्वाधिक कौन से बिम्ब की प्रयुक्ति हैं ?
उत्तर – दृश्य बिम्ब

४) मुक्तिबोध ने प्रतीक योजना का प्रयोग क्यों आवश्यक माना ?
उत्तर – अपनी संवेदना को व्यक्त करने के लिए

५) ब्रम्हराक्षस कविता में अतीत ____________प्रतीक हैं |
उत्तर – बौद्धिक चेतना का

११.७ संदर्भ पुस्तके

१) मुक्तिबोध और उनकी कविता – डॉ. बृजबाला सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण – 2004
२) मुक्तिबोध – निर्मल शर्मा, त्रयी प्रकाशन, रतलाम(म.प्र.),
३) तारसप्तकसे गद्य कविता (मुक्तिबोध-शमशेर-रघुवीर) रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष – 1997
४) समकालीनहिन्दी कविता – अज्ञेय और मुक्तिबोध-शशि शर्मा, वाणी प्रकाशन, वर्ष 1995
५) मुक्तिबोध की कविताएँ –बिम्ब प्रतिबिम्ब, नंदकिशोर नवल, प्रकाशनसंस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2006
६) गजानन माधव मुक्तिबोधकीप्रतिनिधि कविताएँ – टीका, राजेश वर्मा एवं सुरेश अग्रवाल, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संकरण- 2010
७) अज्ञेय से अरुण कमल – भाग १, डॉ. संतोष कुमार तिवारी, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली, वर्ष- 2005

❖❖❖❖

१२

मुक्तिबोध के काव्य में मूल संवेदना

इकाई की रूपरेखा

१२.० इकाई का उद्देश्य

१२.१ प्रस्तावना

१२.२ मुक्तिबोध का काव्य : मूल संवेदना

१२.३ सारांश

१२.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१२.५ लघुत्तरी प्रश्न

१२.६ संदर्भ पुस्तके

१२.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई का मूल उद्देश्य मुक्तिबोध के काव्य की मूल संवेदना को जानना हैं |

१२.१ प्रस्तावना

मुक्तिबोध का काव्य जन हिताय का काव्य हैं, साथ ही पीड़ा, द्विधा, मनुष्य की आशा एवं निरुपाय की और यह काव्य संकेत करता हैं इन्हीं सब मुद्दों की सविस्तर चर्चा हम इस अध्याय में करेंगे |

१२.२ मुक्तिबोध का काव्य : मूल संवेदना

दृढ़ और स्वाभिमानी व्यक्तित्व के धनी, तन-मन-धन से कला के प्रति समर्पित मुक्तिबोध का काव्य नयी कविता की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हैं। मुक्तिबोध आजीवन नयी दृष्टि, नये युग के अनुभव और काव्य की विलक्षण अनुभूतियाँ खोजते रहे। उनका सम्पूर्ण काव्य उनके जीवन को प्रतिबिम्बित करता हैं। उसमें एक तरफ मध्यप्रदेश के पठारी जंगलों के कवि का सहज बोध हैं तो वहीं ऐतिहासिक खण्डहरों के वियाबानों में रमने वाले मन की निर्भय पुकार भी हैं।

अपनी काव्य-प्रेरणा के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं लिखा हैं, "मेरे बाल-मन की पहली भूख सौन्दर्य और दूसरी विश्व-मानव का सुख-दुःख,इन दोनों का संघर्ष मेरे साहित्यिक जीवन की पहली उलझन थी।" मालवा के प्राकृतिक सौन्दर्य, सामान्य जन के सुख-दुःख, तालस्ताय की लोक-मंगल-भावना, बर्ग शॉ की स्वतन्त्र क्रियमाण जीवन-शक्ति तथा मार्क्सवाद ने उनकी काव्य-चेतना को प्रभावित किया। उनकी काव्य-संवेदना पर अस्तित्ववाद का भी प्रभाव

दृष्टिगत होता हैं । अस्तित्ववादी प्रत्येक क्षण को महत्त्वपूर्ण मानता हैं; उसके सामने चुनाव की समस्या होती हैं ; वह मानता हैं कि मनुष्य को उसकी इच्छा के विरुद्ध इस संसार में धकेल दिया गया हैं, पर जन्म लेने के बाद उसका कार्य हैं कि वह अपने जीवन से अर्थ और प्रयोजन का निर्णय स्वयं करे । मुक्तिबोध भी द्विधाग्रस्त हैं, एक पैर रखते हैं कि सौ राहें फूटती हैं । वह अपने को किसी शक्तिद्वारा नियोजित पाते हैं -

यन्त्रबद्ध गतियों का ग्रह-पथ त्यागने में असमर्थ

अयास, अबोध निरा सच मैं।

स्वयं को असहाय, सामर्थ्यहीन स्थिति में बताकर मुक्तिबोध मनुष्य की आशा एवं निरूपाय स्थिति की ओर ही संकेत कर रहे हैं ।

मुक्तिबोध की काव्य-चेतना का मूलाधार हैं मानवीय संवेदना । वे जीवन-पर्यन्त एक ही समस्या को लेकर चिन्तित थे -

मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में

सभी मानव

सुखी, सुन्दर व शोषण-मुक्त कब होंगे।।

उनकी काव्य संवेदना ड्राइंग रूम-संस्कृति की संवेदना नहीं थी । उनका नाता छोटे से छोटे एवं नगण्य मनुष्य से था ; उसके छोटे से छोटा दुःख भी उनके हृदय को कचोटता था और वह उसकी पीड़ा को स्वर देने के लिए अधीर हो उठते थे । उनकी कविताओं में पहली बार निम्न मध्य वर्ग के जीवन का समग्र चित्रण हुआ हैं । इस वर्ग के व्यक्ति के आदर्श और यथार्थ में होनेवाला संघर्ष उनकी कविता का केन्द्रीय विषय हैं । उसके साथ उनकी पूरी सहानुभूति हैं -

विशाल श्रमशीलता की जीवन्त

मूर्तियों के चेहरों पर

झुलसी हुई आत्मा की अनगिन लकीरें।

मुझे जकड़ लेती हैं अपने में, अपना सा जानकर ।

मुक्तिबोध का काव्य सामान्य जनता की वेदना का काव्य हैं ।उनकी वेदना बड़ी व्यापक और साथ ही गहरी हैं । व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों की वैज्ञानिक व्याख्या और उसकी काव्यमय अभिव्यक्ति ही उनकी कविताओं का अन्तर्मन हैं और चूँकि उन्होंने केवल स्वानुभूत का चित्रण किया हैं, अतः वैयक्तिक अनुभवों की प्रामाणिकता उनकी काव्य-संवदेना को प्रखर बना देती हैं । मुक्तिबोध के काव्य को 'मानवता का दस्तावेज' कहा गया हैं। मानवता अमर हैं और मानवता की धारा को आगे बढ़ाते रहना ही वह सृजनशीलता मानते हैं। इसके लिए आवश्यकता हैं कि वह पुरातन को नष्ट करने के लिए मरण-गीत गाएँ और जन-जनमें नई ज्योति, नई आशा जगाएँ -

हम घुटनों पर नाश देवता

बैठ तुझे करते हैं बन्दन

मेरे सिर पर एक पैर रख

नाप तीन जग तू असीम बन।

मुक्तिबोध का काव्य आज के सामान्य मानव की असहायता, घुटन, छटपटाहट को उपस्थित कर उसकी मुक्ति का मार्ग खोजता हैं, वह निर्बल मानव को नव आशा से ज्योतित देखना चाहता हैं। लेकिन, इसके लिए मुक्तिबोध श्रम को, मेहनत को, निरंतर प्रयास और अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता को आवश्यक मानते हैं | इसके लिए मनुष्य को को कर्मठ बनना होगा, श्रम का व्रत लेना होगा इसलिए वे श्रम हारा को सर्जन की शक्ति ग्रहण करने और संघर्ष की प्रेरणा देते हैं। उनका विश्वास हैं कि -

प्रत्येक पत्थर में

चमकता हीरा हैं।

हर एक छाती में आत्मा अधीरा हैं

प्रत्येक सुस्मित में विमल सदानीरा हैं

प्रत्येक वाणीमें

महाकाव्य पीड़ा हैं।

मुक्तिबोध अग्निधर्मी चेतना के कवि हैं, अतः उनके काव्य में तनाव, प्रतिक्रिया एवं विद्रोह के तत्त्व सहज ही दिखाई देते हैं। उनके भाई शरच्चन्द्र ने उन्हें 'True rebel' कहा हैं। मुक्तिबोध का प्रसिद्ध काव्य संग्रह 'चाँद का मुंह टेढ़ा हैं' शोषण और यातना से अभिशप्त हमारे स्वातन्त्र्योत्तर-युग का सुलगता काव्य-संग्रह हैं। उससे पूर्व भी 'तार-सप्तक' में वह पूंजीवादी समाज के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए लिख चुके थे कि -

तेरी रेशमी वह शब्द संस्कृति अन्ध

देती क्रोध मुझको, खूब जलता क्रोध

तुमको देख मितली उमड़ आती शीघ्र।

इस संस्कृति के नाश के लिए ही कवि नाश-देवता का आह्वान करता हैं।

अंधेरे में कविता में उन्होंने उच्च वर्ग से जुड़े विद्वानों, कवियों, आलोच कों को 'रक्तपायी वर्ग से नाभिनाल बद्ध' कहा हैं, बौद्धिक वर्ग को उनका क्रीतदास कहा हैं। 'भूल गलती' में इसी अवसरवादी, सुविधा भोगी वर्ग को बड़े सशक्त शब्दों में बेनकाब किया हैं -

आलिमो फाज़िल सिपहसालार, सब सरदार

हैं खामोश!

'भूल गलती' सामाजिक और व्यक्ति की आन्तरिक कुव्यवस्था का प्रतीक हैं। इस व्यवस्था में, यांत्रिक सभ्यता में सुविधा भोगी ही पनप सकते हैं। इस अवसरवादिता को पहचानने के कारण ही वह तथाकथित महानुभावों, अनुभव-समृद्ध विद्वानों को शहर के गुण्डे डोमाजी और संगीनधारी सैनिकों के साथ खड़ा कर देते हैं। ये सभी राक्षसी स्वार्थ के पुतले हैं, अतः उन्हें 'भूत-पिशाच-काय' कहा गया हैं। उनका विश्वास हैं कि जब-जब शोषण पर आधारित पूंजीवादी व्यवस्था पनपती हैं, सभ्यता मर जाती हैं -

शोषण की अतिमात्रा

स्वार्थों की सुख-यात्रा

सम्पन्न हुई.

आत्मा से अर्थ गया

मर गयी सभ्यता।

आधुनिक सभ्यता की विसंगति और विद्रूपताओं से परिचित मुक्तिबोध ने उन पर करारा व्यंग्य किया हैं। चाँद और चाँदनी के माध्यम से उन्होंने मूल कथ्य को खूब उभारा हैं। इनके द्वारा उन्होंने आज के कुरूप, कठोर, निर्मम जमाने का चित्र प्रस्तुत किया हैं। उनकी चाँदनी गौरवर्णा कुन्द-वन्दना न होकर शोहदे आवारा मछुओं सी मछलियाँ फँसाती हैं। इस चाँदनी की रोशनी ऐयारी हैं जिसमें करफ्यू लगा हैं, सन्नाटा हैं, फुसफुसाते षड़यंत्र होते हैं। इस चित्रण में सन् १९५३ के घिनौने, गन्दे, भय और त्रास से भरपूर परिवेश को साकार कर दिया गया हैं। राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले शोषण-भ्रष्टाचार को 'बारह बजे रात के' में व्यक्त किया गया हैं। यहाँ चाँद आसमानी तख्त पर सोने की गिन्नी-सा चेहरा लिए बैठा हैं और यूरोपीय सभ्यता के भव्य भवनों का ठाठ मुस्करा कर देखता हैं। यह चाँद अंग्रेज साम्राज्यवादियों का प्रतीक हैं जो अपने बढ़ते साम्राज्य और ऐश्वर्य को देख मुस्करा रहा हैं। उसे इस व्यवस्था की कृत्रिमता और खोखली आडम्बर-प्रियता से घोर घृणा हैं -

खूबसूरत दमकते रेस्तुरों में

कैप्टन से गरबीले

बैजों से, बटनों से खेलते हैं सुकुमार

रंगे हुए नाखून

पेंटों के बटन चमकते-से लगते हैं

कामुक प्रकाश में।

साम्राज्य विस्तार के लिए किये गये षड्यन्त्रों और रक्तपाल की पोल खोलते हुए वह लिखते हैं -

खून की लकीरों से

देश-विदेशों की नई-नई

खूनी लाल-खूनी लाल

सरहदें-सीमाएँ बनाते ही जाते हैं।

नगर के लोगों का कृत्रिम रहन-सहन और उनकी बनावटी सभ्यता कवि की आँखों से छिपी नहीं हैं -

पावडर के सफेद अथवा गुलाबी

छिये बड़े-बड़े चेचक के दाग मुझे दीखते हैं

सभ्यता के चेहरे पर।

'काव्य :एक सांस्कृतिक प्रक्रिया' नामक निबन्ध में मुक्तिबोध ने जिस विषमता-ग्रस्त समाज और उसके नैतिक हास की बात कही थी, उसका चित्रण उन्होंने अपनी कविताओं में निर्भीक होकर दृढ़ता पूर्वक किया हैं -

उदरम्भरि बन अनात्म बन गये

भूतों की शादी में कनात-से तन गये

किसी व्यभिचारी के बन गए बिस्तर।

लो हित-पिता को घर से निकाल दिया

जन-मन-करुणा-सी माँ को हकाल दिया

स्वार्थोंके टेरियार कुत्तों को पाल लिया।

पुरातनता और नवीनता के बीच पिसी मानवता की व्यथा को उन्होंने 'ब्रह्म-राक्षस' कविता में वाणी दी हैं-

पीस गया वह भीतरी

और बाहरी दो कठिन पाटों बीच

ऐसी ट्रेजेडी हैं नीच !

और आज के तथाकथित सभ्य मानव को उन्होंने ओरांग ओटांग कहा हैं क्योंकि उसके जघन्य कार्य और हिंस्र अस्त्र इस जंगली असभ्य के नाखूनों से कम नहीं हैं।

जहाँ मुक्तिबोध के नगर चित्रों में कवि की उनके प्रति घोर वितृष्णा दृष्टिगत होती हैं, वहाँ वह ग्रामीण सहज जीवन को अपनी सहानुभूति प्रदान करते हैं। वहाँ उन्हें नगर रंगीन मायाओं का प्रदीप्त पुंज लगता हैं, वहाँ ग्रामीण वातावरण के चित्रण में कवि के मन का सहज उल्लास और उस वातावरण के प्रति उसका स्नेह स्पष्ट झलकता हैं -

दूर-दूर मुफलिसी के टूटे-फूटे परों में

सुनहले चिराग बल उठतेहैं

आधी-अंधेरी शाम

ललाई में निलाई से नहाकर

पूरी झुक जाती हैं।

'तार-सप्तक' के कवियों में अकेलेपन का भाव सर्वाधिक मुक्तिबोध में हैं -

प्राण की हैं बुरी हालत

और जर्जर देह; यह हैं बुरी हालत।

इस अकेलेपन के भाव का कारण अस्तित्ववादी दर्शन न होकर उनके जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियाँ थीं जिनसे संघर्ष करते-करते वह टूटते चले गये। नयी कविता जिस 'लघु मानव' और 'क्षण की महत्ता' की बात करती हैं, मुक्तिबोध के काव्य में उन दोनों की प्रतिष्ठा हैं। जब मानव को अपनी तुच्छता का अहसास हो जाता हैं तब वह क्षण के महत्त्व को स्वीकार करने लगता हैं। वह जीवन की सार्थकता अधिक समय तक जीने में न मानकर सार्थक जीवन जीने में मानते हैं, अतः आवश्यक हैं कि व्यक्ति प्रत्येक क्षण को उसकी संपूर्णता में जीने का प्रयास करें। वह अहं को अपूर्ण मानते हैं। इसी अपूर्णता के कारण व्यक्ति न पूरी तरह घृणा कर पाता जय और न प्रेम; न किसी पर क्रोध कर सकता हैं और न किसी के प्रति ग्लानि प्रकट कर सकता हैं। 'नूतन अहं' करीता में मुक्तिबोध ने व्यक्ति की इसी मुद्रता को व्यक्त किया हैं। इस अहं भाव की तुच्छता बताते हुए वह लिखते हैं -

अहं भाव उत्तुंग हुआ हैं तेरे मन में

जैसेघूरे पर उड्डा हैं

घृष्ट कुकुरमुत्ता उन्मत्त।

यद्यपि मुक्तिबोध आधुनिक युग में अध्यात्म को व्यर्थ बताते हैं -

लोग-बाग

अनाकार ब्रह्म के सीमाहीन शून्य के

बुलबुलों में यात्रा करते हुए गोल-गोत

खोजते हैं जाने क्या ?

पर जीवन में सौहार्द्र के महत्त्व, परस्पर विश्वास, अटूट आस्था को रेखांकित करते हैं और जड़ता के प्रति साहसपूर्ण विदोह करते हैं। कूप मण्डूक बने रहने से केवल सतही सत्य पाया जा सकता हैं, ऐसा उनका विश्वास हैं।

मुक्तिबोध के काव्य में बलिदान की भावना को उबुद्ध, उद्दीप्त और परिपक्व करनेवाली सामग्री भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। न्याय-चेतना और करुणा की सदवृत्तियाँ त्याग-भावना को उद्बुद्ध करती हैं। न्याय चेतना स्वार्थ से हटाती हैं और करुणा परोपकार में प्रवृत्त करती हैं। मुक्तिबोध कल्याणमयी करुणा को व्यक्तित्वन्तरकारी शक्ति मानते हैं। इसीलिए तो उनके युवकों में वेदना-जलपीकर व्यक्तित्वान्तर होता हैं और वे विभिन्न क्षेत्र से संघर्ष करते हैं -

बेदना-नदियों का जल पीकर

मेरे युवकों में व्यक्त्विान्तर

विभिन्न क्षेत्रों में कई तरह से करते हैं संगर।

मुक्तिबोध का काव्य जीवन के प्रति अटूट आस्था का काव्य हैं । शोषणमुक्त समाज, सांस्कृतिक मूल्यों और मानवता में उनकी अटूट आस्था थी । उनका दृढ़ विश्वास हैं कि अंधेरे से युक्त जंगलों में से नदी पार करने पर जीवन का अक्षयवट अवश्य मिलेगा और जीवन श्रम-गरिमा का स्तन्यपी कर विकास करेगा। अतः वह कलाकार के सम्बन्ध में कहते हैं कि "कलाकार को पुरुषार्थी होना चाहिए वह जमीन में गड़कर भी सदा प्रयत्न और पुरुषार्थ करता रहेगा।" उनके वाक्य में समर्पण का स्वर भी बड़ा प्रबल हैं -

आत्मा मेरी

उस ज्वलन की भूमि में तू स्वयं बिघ ले।

उनमें दृढ़-संकल्प की आस्था हैं, अतः उनका मन विपरीत परिस्थितियों में भी नहीं टूटता और न कोई समझौता करता हैं। वह उस सामान्य जन के प्रति आस्थावान हैं जिसके उच्च भाल पर विश्व का भार हैं और जिसके अन्तर में निस्सीम प्यार हैं। इसीलिए वह कवि का आह्वान करते हुए कहते हैं -

तुम कवि हो, वे फैल चले मृदु गीत निवल मानव के घर-घर

ज्योतित हो मुख नव आशा से, जीवन की गति जोवन का स्वर।

परम्परागत आदर्शों ,आस्था व विश्वासों के मलवे से नयी संस्कृति का निर्माण करने का उद्बोधन भी उनकी इसी अदम्य आस्था और समर्पण-भावना का परिचायक हैं -

कोशिश करो

कोशिश करो

जीने की

जमीन में गड़कर भी।

और मुक्तिबोध को शत प्रतिशत विश्वास हैं कि कवि के प्रयत्न विफल नहीं होंगे -

बेकार नहीं जायेगा

ज़मीन में गड़े हुए देहों की खाक से

शरीर की मिट्टी से, धूल से

खिलेंगे गुलाबी फूल।

शर्त केवल यह हैं कि केवल बड़ी विद्वत्तापूर्ण बातों से कुछ होने वाला नहीं हैं , अब केवल बौद्धिक जुगाली से काम नहीं चलेगा, अपने कर्म में विश्वास करना होगा, कर्मशिलाओं से स्वप्नों की मूर्ति बनानी होगी। मेहनत करने वाले को कोई बहुत देर तक नहीं रोक सकता। इस कर्मनिष्ठा जन्य क्रान्ति के लिए उपादानों की आवश्यकता हैं, उनका चित्रण कवि ने विस्तार से किया हैं। मार्क्सवादी क्रान्ति हिंसात्मक होती हैं। अतः कवि नाश-देवता की

वन्दना करता हैं और मानता हैं कि 'बिना संहार' के सर्जन असंभव हैं। इस उग्र क्रान्ति की निन्दा वह नहीं सह सकते -

लावा कहकर निंदा करके, कोई उसको रोक न सकते

वह भवितव्य अटल हैं, उसको अंधियारे में झोंक न सकते।

क्रान्ति के लिए त्याग करना होगा, सुविधाएं त्यागकर ख़तरे उठाने होंगे, संगठित होना पड़ेगा, संगठन के लिए आवश्यक हैं कि क्रान्तिकारी यश लिप्सा से दूर रहे, अपने आप को एक आयुध, मात्र साधन समझे। कवि का विश्वास हैं कि युग का अंधियारा छटेगा, तमस् की अर्गलाएँ टूटेंगी और क्रान्ति होगी। युग के त्रास और उत्पीड़न को पूरी वास्तविकता और भयावहता के साथ भोगने और पचाने के बाद ही युग की अन्तश्चेतना जाग्रत होगी।

मुक्तिबोध का काव्य सामाजिकता के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत करता हैं। उसमें पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, शोषण और अन्याय का विरोध हैं, नागरिक सभ्यता और उसकी कृत्रिमता के प्रतिवितृष्णा हैं, ग्रामीण की सहजता के प्रति सहानुभूति हैं, वर्तमान से विदोह कर नवीन के निर्माण का उद्बोधन हैं। स्पष्ट हैं कि वह समाज की पीड़ा की उपेक्षा नहीं कर सके, पर साथ ही उनके काव्य में उनके अपने मन की गहराइयों में होने वाली हलचल और अनुभूति-तरंगों की भी झाँकी मिलती हैं।

इस बात को स्वीकार करते हुए वे स्वयं कहते हैं - "मानसिक द्वन्द्व मेरे व्यक्तित्व में बद्धमूल हैं। मेरी ये कविताएँ अपना पथ ढूँढ़नेवाले बेचैन मन की ही अभिव्यक्ति हैं।" उनकी यह द्वन्द्वपूर्ण मनःस्थिति और द्विधा ही उनकी आत्मग्रस्तता का मूल कारण हैं। मुक्तिबोध का मन अंधेरे में घिरा रहता हैं और प्रकाश की खोज में भटकता हैं। सन् १९४७ के बाद उन पर फ्रायड और युंग के मनोविश्लेषण-शास्त्र का प्रभाव दिखाई देता हैं| जिसके फलस्वरूप उनकी अन्तर्मुख दशाएँ और भी गहन होती चली गई। उपचेतन का संसार अन्धकारमय होता हैं, अतः उनके काव्य में अन्धे कुएँ, बावड़ी, समुद्र की तलहटी, पठारों के गड्ढे आदि हमें मिलते हैं| डॉ. रामविलास शर्मा ने इस आत्मग्रस्तता के दो रूप माने हैं - रहस्यवाद और अस्तित्ववाद। हठयोग की शब्दावली का प्रयोग, ज्ञानमणि और अरुण कमल की चर्चा उनकी दृष्टि में मुक्तिबोध के रहस्यवादी होने का प्रमाण हैं तो 'ब्रह्मराक्षस' का अपराध-भावना, पाप सम्बन्धी चेतना से जुड़कर अस्तित्ववादी प्रभाव का संकेत देती हैं। पर क्या मुक्तिबोध सचमुच रहस्यवादी हैं ? यदि रहस्यवाद अन्तः स्फुरित अनुभूति द्वारा परमतत्त्व का साक्षात्कार करने की प्रवृत्ति हैं तो मुक्तिबोध निश्चय ही रहस्यवादी नहीं हैं। वह तो ईश्वर में विश्वास तक नहीं करते थे। रहस्यवादी यथार्थ जगत् को सत्य नहीं मानता, अतः उसे त्यागता हैं, पर मुक्तिबोध के काव्य मे तत्कालीन समाज का समग्र चित्रण हैं। अध्यात्म-साधना द्वारा नहीं विदोह एवं पीड़ा की आग से निकलकर मानव को सुखी बनाने की लालसा भी उन्हें रहस्यवादी होने से मना करती हैं। उनके काव्य में रहस्यलोक का वातावरण तो हैं पर वह रहस्यवादी नहीं हैं। मुक्तिबोध पर अस्तित्ववाद एवं मार्क्सवाद का प्रभाव तो था, पर उन्हें अस्तित्ववादी या केवल मार्क्सवादी कहना असंगत हैं।

वास्तव में मुक्तिबोध वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं की अभिव्यंजना करने वाले कवि हैं। उनकी काव्य-संवेदना के मूल में 'व्यक्ति न होकर 'मानव' हैं ऐसा मानव जो संघर्षरत हैं, जो

सामाजिकता से जुड़ा हैं और इसीलिए संघर्ष द्वारा समाज को सुखी और सुन्दर देखना चाहता हैं। वस्तुतः उनकी काव्य-संवेदना के निर्माण में एक ओर उनके युग की विषम परिस्थितियाँ थीं तो दूसरी ओर व्यक्तित्व का अन्तः संघर्ष था। उनका आत्मबोध बाह्य जगत् के यथार्थ बोध से जुड़ा हुआ था। अतः उनके काव्य में जो संघर्ष चित्रित हैं वह अकेले, एकान्त प्रिय, समाज से कटे व्यक्ति का संघर्ष न होकर पूरी जागरूक पीढ़ी का संघर्ष हैं जो अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए सजग हैं, प्रयत्नशील हैं और आस्थावान हैं। वह जिन्दगी की दलदल और कीचड़ में धंस कर विवेक के ज्वलंत सरसिज को तोड़ लाने वाला कवि हैं जिसकी हथेली पर विवेक की जलती हुई आग रखी हैं। ऐसा आस्थावान्, मानवतावादी, जन की शक्ति में विश्वास रखनेवाला, नव-निर्माण की आकांक्षा का दीप संजोने वाला कवि आत्मग्रस्त नहीं हो सकता। वह निश्चय ही मानववादी हैं और उसका काव्य यथार्थोन्मुख व्यक्तिवाद का काव्य हैं।

१२.३ सारांश

मुक्तिबोध प्रतिक्रियाओं की अभिव्यंजना करने वाले कवि हैं | उनकी काव्य संवेदना का मूल में व्यक्ति नहीं वरन मानव हैं जो हमे सामाजिकता से जोड़ता हैं | इस प्रकार मुक्तिबोध की काव्य मूल संवेदना का अध्ययन इस इकाई में किया गया हैं |

१२.४ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) मुक्तिबोध के काव्य की मूल संवेदना पर प्रकाश डालिए |

२) मुक्तिबोध के काव्य में मानव का यथार्थ वादी रूप दृष्टिगोचर होता हैं, इस भाव को स्पष्ट कीजिए |

१२.५ लघुत्तरी प्रश्न

१) मुक्तिबोध का काव्य आज के सामान्य मानव की घुटन, छटपटाहट को उपस्थित कर कौन सा मार्ग खोजता हैं |

उत्तर – मुक्ती का मार्ग

२) मुक्तिबोध के काव्य की मूल संवेदना हैं |

उत्तर – सामान्य जनता की वेदना

३) मुक्तिबोध की काव्य चेतना का मूलाधार हैं |

उत्तर – मानवीय संवेदना

४) 'तार सप्तक' के कवियों में अकेलेपन का भाव सर्वाधिक कौन से कवि में हैं |

उत्तर – मुक्तिबोध

१२.६ संदर्भ पुस्तके

१) मुक्तिबोध और उनकी कविता – डॉ. बृजबाला सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण – 2004

२) मुक्तिबोध – निर्मल शर्मा, त्रयी प्रकाशन, रतलाम(म.प्र.),

३) तारसप्तकसे गद्य कविता (मुक्तिबोध-शमशेर-रघुवीर) रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष – 1997

४) समकालीनहिन्दी कविता – अज्ञेय और मुक्तिबोध-शशि शर्मा, वाणी प्रकाशन, वर्ष 1995

५) मुक्तिबोध की कविताएँ –बिम्ब प्रतिबिम्ब, नंदकिशोर नवल, प्रकाशनसंस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2006

६) गजानन माधव मुक्तिबोधकीप्रतिनिधि कविताएँ – टीका, राजेश वर्मा एवं सुरेश अग्रवाल, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, संकरण- 2010

७) अज्ञेय से अरुण कमल – भाग १, डॉ. संतोष कुमार तिवारी, भारतीय ग्रन्थ निकेतन, नई दिल्ली, वर्ष- 2005

❖❖❖❖